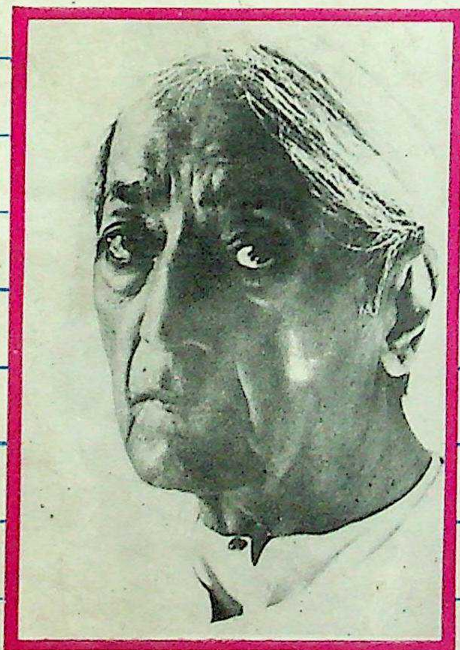
संस्कृति का प्रश्न



जे० कृष्णमूर्ति

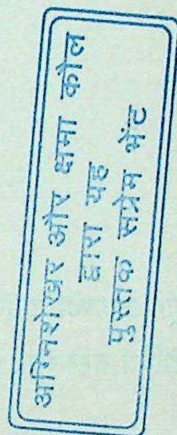
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया

संस्कृति का प्रश्न



लेखक

जे. कृष्णमूर्ति





अनुवादक

श्री सुंदरलाल मल्हारा





कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया

संस्कृति का प्रश्न

प्रकाशक :

कृष्णमूर्ति फ़ाउण्डेशन इंडिया

राजघाट शिक्षा संस्थान

राजघाट फ़ोर्ट, वाराणसी–२२१००१

* * *

द्वितीय संशोधित संस्करण : अक्तूबर १९८४

मूल्य : रु. २५–००

* * *

मुद्रक :

जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०

गोलघर, वाराणसी–२२१००१

अ नु क्र म

१. शिक्षा

यदि आपने कभी अपने आपसे यह पूछा हो कि शिक्षा का अर्थ क्या है तो यह मेरे लिए सचमुच आश्चर्य की बात होगी। आप विद्यालय क्यों जाते हैं ? आप विविध विषय क्यों पढ़ते हैं ? क्यों आप परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते हैं, और ऊँचा स्थान प्राप्त करने के लिए दूसरों के साथ स्पर्धा करते हैं ? आखिर क्या अर्थ है इस तथाकथित शिक्षा का ? यह सब कुछ क्या है ? यह सचमुच अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है—केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं अपितु माता-पिता के लिए, शिक्षकों के लिए और उन समस्त व्यक्तियों के लिए जो इस वसुधा से प्रेम करते हैं। शिक्षित होने के लिए हम संघर्ष क्यों करते हैं ? हम कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लें, किसी उद्योग में लग जाएँ, क्या शिक्षा का बस इतना ही कार्य है अथवा शिक्षा का कार्य है कि वह हमें बचपन से ही जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने में सहायता करे ? कुछ उद्योग करना और अपनी जीविका कमाना जरूरी है; लेकिन क्या यही सब कुछ है ? क्या हम केवल इसीलिए शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं ? निस्सन्देह केवल उद्योग या कोई व्यवसाय ही जीवन नहीं है। जीवन बड़ा अद्भुत है, यह असीम और अगाध है, यह अनन्त रहस्यों को लिए हुए है, यह एक विशाल साम्राज्य है जहाँ हम मानव कर्म करते हैं और यदि हम अपने आपको केवल आजीविका के लिए तैयार करते हैं तो हम जीवन का पूरा लक्ष्य ही खो देते हैं। कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेने और गणित, रसायनशास्त्र अथवा अन्य किसी विषय में प्रवीणता प्राप्त कर लेने की अपेक्षा जीवन को समझना कहीं ज्यादा कठिन है।

अतः हम चाहे शिक्षक हों या शिक्षार्थी, हमें अपने आपसे क्या यह पूछना आवश्यक नहीं है कि हम क्यों शिक्षित कर रहे हैं अथवा शिक्षित हो रहे हैं ? जीवन कितना विलक्षण है ! ये पक्षी, ये फूल, ये वैभवशाली वृक्ष, यह आसमान, ये सितारे, ये सरिताएँ, ये मत्स्य, यह सब हमारा जीवन है ! जीवन दीन है, जीवन अमीर भी ! जीवन समुदायों, जातियों और देशों का पारस्परिक सतत संघर्ष है, जीवन ध्यान है, जीवन धर्म भी ! जीवन गूढ़ है, जीवन मन की प्रच्छन्न वस्तुएँ हैं—ईर्ष्याएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ, वासनाएँ, भय, सफलताएँ, चिंताएँ। केवल इतना ही नहीं अपितु इससे कहीं ज्यादा जीवन है ! लेकिन बहुधा हम अपने आपको जीवन के केवल एक छोटे से कोने को समझने के लिए ही तैयार करते हैं। हम कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेते हैं, कोई उद्योग ढूंढ़ लेते हैं, हम विवाह कर लेते हैं, बच्चे पैदा कर लेते हैं और इस प्रकार

अधिकाधिक यन्त्रवत् बन जाते हैं। हम सदैव जीवन से भयाकुल, चिंतित और भयभीत बने रहते हैं। अतएव शिक्षा का कार्य है कि वह सम्पूर्ण जीवन की प्रक्रिया को समझने में हमारी सहायता करे; न कि हमें केवल कुछ व्यवसाय या ऊँची नौकरी के योग्य बनाए।

क्या होगा हम सबके साथ जब हम प्रौढ़ हो जाएँगे? क्या आपने कभी सोचा भी है कि आप बड़े होने पर क्या करनेवाले हैं? ज्यादा से ज्यादा सम्भावना तो यही है कि आप बड़े होने पर विवाह करेंगे और इसके पहले कि आप यह ज्ञात कर सकें कि आप कहाँ हैं, आप माता या पिता बन जाएँगे। तब आप किसी व्यवसाय अथवा रसोईघर से बँध जायेंगे और वहीं आप क्रमशः क्षीण होते रहेंगे! क्या इसी प्रकार का होनेवाला है आपका जीवन? क्या आपने स्वयं से यह कभी पूछा भी है? क्या आपको यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए? मानो आप एक सुसम्पन्न परिवार के हैं, आपकी प्रतिष्ठा पहले से ही सुरक्षित है, आपके पिता आपको आरामदायक कार्य दे देंगे, आप बड़ी शान से विवाह कर लेंगे फिर भी तो आप क्षीण होंगे, नष्ट होंगे! क्या आप यह देख रहे हैं?

निश्चित रूप से शिक्षा व्यर्थ साबित होगी, यदि वह आपको, इस विशाल और विस्तीर्ण जीवन को, इसके समस्त रहस्यों को, इसकी अद्भुत रमणीयताओं को, इसके दुखों और हर्षों को समझने में सहायता न करे! भले ही आप ढेरों उपाधियाँ प्राप्त कर लें और अपने नाम के आगे इनकी कतार लगा लें, चाहे बहुत ऊँचा व्यवसाय प्राप्त कर लें; लेकिन यह सब कुछ पा लेने के बाद क्या होगा? यदि आपका मन ही इस पाने की प्रक्रिया में कुण्ठित, चिंतित और रुक्ष बन जाए तो फिर क्या अर्थ होगा इसे पानेका? इसलिए आपको किशोरावस्था से ही खोजना होगा कि यह जीवन क्या है? और शिक्षा का क्या यह प्रमुख कार्य नहीं कि वह आप में उस मेधा (Intelligence) का उद्घाटन करे जिससे आप इन समस्त समस्याओं का हल खोज सकें। क्या आप यह जानते हैं कि यह मेधा क्या है? निस्संदेह यह मेधा वह शक्ति है जिससे आप भय और सिद्धान्तों की अनुपस्थिति में स्वतन्त्रता के साथ सोचते हैं ताकि आप अपने लिए सत्य की, वास्तविकता की खोज कर सकें। यदि आप भयभीत हैं तो फिर आप कभी मेधावी नहीं हो सकेंगे। किसी भी प्रकार की महत्त्वाकांक्षा—फिर चाहे वह आध्यात्मिक हो या सांसारिक—चिन्ता और भय को जन्म देती है; अतः यह ऐसे मन को निर्माण करने में सहायता नहीं कर सकती जो सुस्पष्ट हो, सरल हो, सीधा हो और दूसरे शब्दों में मेधावी हो।

आप जानते हैं कि बचपन से ही आपको एक ऐसे वातावरण में रहना अत्यन्त आवश्यक है जो स्वतन्त्रतापूर्ण हो। हममें से अधिकांश व्यक्ति ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों-त्यों ज्यादा भयभीत होते जाते हैं; हम जीवन से भयभीत रहते हैं, नौकरी के

छूटने से, परम्पराओं से और इस बात से भयभीत रहते हैं कि पड़ोसी, पत्नी या पति क्या कहेंगे, हम मृत्यु से भयभीत रहते हैं ! हममें से अधिकांश व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में भयभीत हैं और जहाँ भय है वहाँ मेधा (Intelligence) नहीं है। क्या यह सम्भव नहीं है कि हम बचपन से ही एक ऐसे वातावरण में रहें जहाँ भय न हो, जहाँ स्वतन्त्रता हो— मन चाहे कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं, अपितु एक ऐसी स्वतन्त्रता जहाँ आप जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया समझ सकें। हमने जीवन को कितना कुरूप बना दिया है; सचमुच जीवन के इस ऐश्वर्यकी, इसकी अनन्त गहराई और इसके अद्भुत सौन्दर्य की धन्यता तो तभी महसूस कर सकेंगे जब आप प्रत्येक वस्तु के खिलाफ विद्रोह करेंगे— संगठित धर्म के खिलाफ, परम्परा के खिलाफ और इस सड़े हुए समाज के खिलाफ ताकि आप एक मानव की भाँति अपने लिए सत्य की खोज कर सकें। अनुकरण करना शिक्षा नहीं है, शिक्षा है खोज। क्या यह सत्य नहीं है ? आपके माता-पिता, आपके शिक्षक और आपके समाज ने जो कुछ कहा है उसे मान लेना बड़ा आसान है। यह जीवित रहने का सुरक्षित और आसान मार्ग है लेकिन ऐसा जीवन 'जीवन' नहीं है क्योंकि इसमें भय है, ह्रास है, मृत्यु है। ज़िन्दगी का अर्थ है अपने लिए सत्य की खोज और यह तभी सम्भव है जब स्वतन्त्रता हो, जब आपके अन्तर में सतत क्रान्ति की ज्वाला प्रकाशमान हो।

परन्तु आपको इसके लिए कोई प्रोत्साहित ही नहीं करता। कोई भी आपको यह नहीं कहता कि आप प्रश्न करें, स्वयं खोजकर देखें कि परमात्मा क्या है ? क्योंकि यदि आप इस प्रकार विद्रोह करेंगे तो आप समाज के लिए खतरा बन जाएँगे। आपके माता-पिता और आपका समाज चाहता है कि आप सुरक्षित रहें और आप स्वयं भी यही चाहते हैं। साधारणतया सुरक्षा में जीने का अर्थ है अनुकरण में जीना अर्थात् भय में जीना। सचमुच शिक्षा का यह कार्य है कि वह हममें से प्रत्येक को स्वतन्त्रता और निर्भयता से जीने में सहायता करें। क्या यह आवश्यक नहीं है ? आपको और आपके शिक्षकों को इस प्रकार के स्वतन्त्रतापूर्ण वातावरण के निर्माण के लिए गम्भीरता से विचार करना होगा।

क्या आप यह जानते हैं कि इसका क्या अर्थ है ? यह निर्भयतापूर्ण वातावरण निर्माण करने का कार्य बड़ा ही कठिन है। लेकिन हमें यह करना ही होगा क्योंकि हम देखते हैं कि पूरा-का-पूरा विश्व ही अन्तहीन युद्धों में जकड़ा हुआ है—और इसके मार्ग-दर्शक बने हैं व राजनीतिज्ञ जो सतत शक्ति की खोज में लगे हैं। यह दुनिया वकीलों, सिपाहियों और सैनिकों की दुनिया है। यह उन महत्वाकांक्षी स्त्री-पुरुषों की दुनिया है जो प्रतिष्ठा के पीछे दौड़े जा रहे हैं और इसे पाने के लिए एक-दूसरे के साथ संघर्षरत हैं। दूसरी ओर अपने-अपने अनुयायियों के साथ संन्यासी और धर्मगुरु हैं जो इस दुनिया

में या दूसरी दुनिया में शक्ति और प्रतिष्ठा की चाह कर रहे हैं। यह विश्व ही पूरा पागल है, पूर्णतया भ्रांत। यहाँ एक ओर साम्यवादी पूंजीपति से लड़ रहा है तो दूसरी ओर समाजवादी दोनों का प्रतिरोध कर रहा है। यहाँ प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी के विरोध में खड़ा है और किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए प्रतिष्ठा, सम्मान, शक्ति व आराम के लिए निरन्तर संघर्ष कर रहा है। यह सम्पूर्ण विश्व ही परस्पर-विरोधी विश्वासों, विभिन्न वर्गों, जातियों, पृथक-पृथक विरोधी राष्ट्रीयताओं और हर प्रकार की मूढ़ता और क्रूरता में छिन्न-भिन्न होता जा रहा है और यह वही दुनिया है जिसमें रह सकने के लिए आप शिक्षित किए जा रहे हैं! आपको इस अभागे समाज के ढाँचे के अनुकूल बनने के लिए उत्साहित किया जा रहा है! आपके माता-पिता आप से यही चाहते हैं और आप स्वयं भी इसी में रहना चाहते हैं!

तब शिक्षा का कार्य क्या है? क्या वह इस सड़े हुए समाज के ढाँचे के अनुकूल बनने में आपको सहायता करे या आपको स्वतन्त्रता दे - पूर्ण स्वतन्त्रता कि आप एक भिन्न समाज का, एक नूतन विश्व का निर्माण कर सकें? हमें ऐसी ही स्वतंत्रता की आवश्यकता है। सुदूर भविष्य में नहीं अपितु इसी क्षण, अन्यथा हम सभी नष्ट हो जाएँगे। हमें अविलम्ब एक स्वतन्त्रतापूर्ण वातावरण तैयार करना होगा ताकि आप उसमें रहकर अपने लिए सत्य की खोज कर सकें, आप मेधावी बन सकें, आप विश्व को स्वीकार न करें, उसके साथ संघर्ष करने में समर्थ हो सकें, ताकि आप अपने अन्दर सतत एक गहरी मनोवैज्ञानिक विद्रोह की अवस्था में रह सकें। क्योंकि सत्य की खोज तो केवल वे ही कर सकते हैं जो सतत इस विद्रोह की अवस्था में रहते हैं, वे नहीं जो परम्पराओं को स्वीकार करते हैं और उनका अनुकरण करते हैं। आप सत्य, परमात्मा अथवा प्रेम को तभी उपलब्ध हो सकते हैं जब आप अविछिन्न खोज करते हैं, सतत निरीक्षण करते हैं और निरन्तर सीखते हैं। लेकिन यदि आप भयभीत हैं, तब आप न तो खोज कर सकते हैं, न निरीक्षण कर सकते हैं, न सीख सकते हैं और न गहराई से जागरूक ही रह सकते हैं। अतः निर्विवाद रूप से शिक्षा का यह कार्य है कि वह इस आन्तरिक और बाह्य भय का उच्छेदन करे—यह भय जो मानव के विचारों को, उसके सम्बन्धों और उसके प्रेम को, नष्ट कर देता है।

प्रश्नकर्ता : यदि सभी व्यक्ति क्रान्ति करेंगे तो क्या विश्व में चारों ओर अराजकता नहीं फैल जाएगी?

कृष्णमूर्ति : आप प्रश्न को सर्वप्रथम अच्छी तरह सुन लें, क्योंकि इसके पूर्व कि आप उत्तर की प्रतीक्षा करें यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि प्रश्न क्या है?

पूछा गया है—यदि सभी व्यक्ति क्रान्ति करेंगे तो क्या विश्व में अराजकता नहीं फैल जाएगी ? लेकिन क्या हमारा वर्तमान समाज इतना सुव्यवस्थित है कि यह प्रत्येक व्यक्ति द्वारा की गई क्रान्ति से अव्यवस्थित हो जाएगा ? क्या अभी अराजकता नहीं है ? क्या प्रत्येक वस्तु सुन्दर है, पवित्र है ? क्या प्रत्येक व्यक्ति आनन्द से, समृद्धि से, पूर्णता से जी पा रहा है ? क्या व्यक्ति-व्यक्ति में विरोध नहीं है ? क्या चारों ओर महत्त्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्धा नहीं है ? अतः हमें सर्वप्रथम यह समझ लेना है कि विश्व में पहले से ही अराजकता है। आप कहीं इसे सुव्यवस्थित न समझ बैठें ! कहीं कुछ शब्दों से आप स्वयम् को मोहित न कर लें ! चाहे भारत हो, चाहे यूरोप, चाहे अमेरिका हो, चाहे रूस—सम्पूर्ण विश्व ही नाश की ओर अग्रसर हो रहा है। यदि आप सचमुच इसका क्षय देखते हैं तो यह आप के लिए एक चुनौती है ! चुनौती है कि आप इस ज्वलन्त समस्या का हल खोजें। आप इस चुनौती का उत्तर किस प्रकार देते हैं यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, क्या नहीं है ? यदि आप इसका उत्तर एक हिन्दू अथवा एक बौद्ध या एक ईसाई या एक साम्यवादी की भाँति देते हैं तब आप का यह प्रत्युत्तर अत्यन्त सीमित होगा। बल्कि सचमुच यह प्रत्युत्तर ही नहीं होगा। आप इसका प्रत्युत्तर पूर्णता से तो तभी दे सकते हैं जब आप अभय हों, आप एक हिन्दू या एक साम्यवादी या एक पूंजीपति की भाँति न सोचें अपितु एक समग्र मानव की भाँति इस समस्या का हल खोजने का प्रयत्न करें। आप इस समस्या को तब तक हल नहीं कर सकते जब तक कि आप स्वयं सम्पूर्ण समाज के खिलाफ क्रान्ति नहीं करते, इस महत्त्वाकांक्षा और इसके खिलाफ़ विद्रोह नहीं करते जिनपर सम्पूर्ण मानव समाज आधारित हैं। जब आप स्वयम् महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं, परिग्रही नहीं हैं, एवं अपनी ही सुरक्षा से चिपके हुए नहीं हैं तभी इस चुनौती का प्रत्युत्तर दे सकेंगे। तभी आप नूतन विश्व का निर्माण कर सकेंगे।

प्रश्नकर्त्ता : क्रान्ति करना, सीखना और प्रेम करना ये तीनों पृथक्-पृथक प्रक्रियाएँ हैं अथवा समकालीन ?

कृष्णमूर्ति : निःसन्देह ये तीनों पृथक्-पृथक् प्रक्रियाएँ नहीं हैं अपितु यह एक ही सामूहिक प्रक्रिया हैं। आप देखते हैं न, इस प्रश्न के अर्थ को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। आपका यह प्रश्न केवल सिद्धांतों पर आधारित है, अनुभूति पर नहीं। अतः यह केवल शाब्दिक है, बौद्धिक है। अतः इसका कोई महत्त्व नहीं है। वह व्यक्ति जो सचमुच निर्भय है और यह जानने के लिए कि सीखना क्या है, प्रेम क्या है, क्रान्ति कर रहा है, संघर्ष कर रहा है तब वह यह नहीं पूछता कि ये तीनो अलग-अलग प्रक्रियाएँ हैं या एक ही प्रक्रिया। हम बड़ी चतुराई से शब्दों का प्रयोग करते हैं और किसी प्रश्न की व्याख्या सुनकर समझ लेते हैं कि हमने समस्या को सुलझा लिया है।

क्या आप जानते हैं कि सीखने के क्या मानी हैं ? जब आप वास्तव में सीख रहे होते हैं तब पूरा जीवन ही सीखते हैं। तब आपके लिए कोई गुरु ही नहीं रह जाता है। तब प्रत्येक वस्तु आप को सिखाती है—एक सूखी पत्ती, एक उड़ती हुई चिड़िया, एक खुशबू, एक आँसू, एक धनी, वे गरीब जो चिल्ला रहे हैं, एक महिला की मुसकराहट, किसी का अहंकार। आप प्रत्येक वस्तु से सीखते हैं, अतः कोई मार्गदर्शक नहीं, कोई दार्शनिक नहीं, कोई गुरु नहीं। तब आपका जीवन स्वयं आपका गुरु है और आप सतत सीखते रहते हैं।

प्रश्नकर्त्ता : यह ठीक है कि समाज स्वामित्व और महत्त्वाकांक्षा पर आधारित है, परन्तु यदि हम में महत्वाकांक्षा न होगी तो क्या हमारा ह्रास न होगा ?

कृष्णमूर्ति : सचमुच, यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसके लिए आप को बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है।

क्या आप जानते हैं कि ध्यान देने का क्या अर्थ है ? हम इसे ज्ञात करें। कक्षा में जब आप खिड़की से बाहर देखते हैं अथवा किसी के बाल खींचते हैं, तब आप के शिक्षक आप को ध्यान देने के लिए कहते हैं—इसका क्या अर्थ है ? आप जिस विषय का अध्ययन कर रहे हैं उसमें आप की दिलचस्पी नहीं है। अतः आप के शिक्षक आप को ध्यान देने के लिए मजबूर करते हैं। लेकिन ध्यान का यह अर्थ कदापि नहीं है। ध्यान का आगमन तो अपने आप होता है। जब आप किसी वस्तु में गहरी दिलचस्पी रखते हैं, जब आप उसके सम्बन्ध में प्रेम से खोजते हैं ताकि उसे आप पूर्णतया समझ सकें, उस समय आप का सम्पूर्ण मन, आप की समग्र सत्ता उसी में रहती है। ठीक इसी भाँति जिस क्षण आप गहराई से यह महसूस कर लेते हैं कि यह प्रश्न, "यदि हम महत्त्वाकांक्षी नहीं होंगे तो क्या हमारा ह्रास न होगा" अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसी क्षण आप इस प्रश्न को दिलचस्पी से देखेंगे और इसके सत्य को खोजने में लग जाएँगे।

महत्त्वाकांक्षा अच्छी है या बुरी यह न पूछते हुए हम सर्वप्रथम यह ज्ञात करें कि क्या महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति अपना ही नाश नहीं कर रहा है ? आप अपने आस-पास देखें और उन व्यक्तियों का निरीक्षण करें जो महत्त्वाकांक्षी हैं। जब आप महत्त्वाकांक्षी होते हैं तब क्या घटित होता है ? तब आप केवल अपने ही सम्बन्ध में सोचते हैं, क्या नहीं सोचते ? तब आप क्रूर बन जाते हैं और अन्य व्यक्तियों को एक ओर ढकेल देते हैं, क्योंकि आपको अपनी महत्त्वाकांक्षा जो पूरी करनी है ! आपको बड़ा व्यक्ति जो बनना है ! ऐसा कर आप समाज में असफल और सफल व्यक्तियों

के बीच में संघर्ष पैदा कर देते हैं। इस प्रकार आप में और उन व्यक्तियों में जो आपको ही भाँति महत्त्वाकांक्षी हैं, निरन्तर युद्ध चलता रहता है। क्या इस संघर्ष से जीवन सृजनशील बन सकता है? क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं अथवा यह समझना आपके लिए बहुत कठिन है?

क्या आप उस समय महत्त्वाकांक्षी रहते हैं जब आप सहज प्रेम से कोई कार्य सिर्फ कार्य के लिए करते हैं? जब आप कोई कार्य अपनी समग्रता से करते हैं—इस लिए नहीं कि उससे आप कहीं पहुँचना चाहते हैं, कोई लाभ उठाना चाहते हैं अथवा कोई ऊँचा परिणाम प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु इसलिए कि उसके करने में आप प्रेम अनुभव करते हैं—अतः यह महत्त्वाकांक्षा नहीं है, है क्या? तब वहाँ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है। तब आप प्रथम स्थान पाने के लिए संघर्ष नहीं करते हैं। अतः क्या शिक्षा का यह कार्य नहीं कि वह आपको यह खोजने में सहायता करे कि आप सचमुच कौन-सा कार्य प्रेम से करना पसन्द करते हैं? ताकि आप प्रारम्भ से अन्त तक वही कार्य करें, जिसे आप बहुत अच्छा समझते हों और जो आपके लिए गम्भीर अर्थ लिए हुए हो, अन्यथा आप अन्त तक अपने आपको अभागा समझते रहेंगे! सचमुच कौन सा कार्य आप प्रेम से करना चाहते हैं, यह नहीं समझकर यदि आप कोई कार्य महज़ आदतन किए जाते हैं तो उस कार्य से आपको केवल ऊब, ह्रास और मृत्यु प्राप्त होती है। अतः आपको बचपन से ही यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि आप कौन सा कार्य सचमुच प्रेम से करना चाहते हैं। नूतन समाज के निर्माण के लिए यही एकमात्र मार्ग है।

प्रश्नकर्त्ता : अन्य दूसरे देशों की तरह भारत में भी शिक्षा राज्य द्वारा नियन्त्रित की जा रही है। ऐसी अवस्था में क्या उन बातों का परीक्षण करना सम्भव है जिनकी चर्चा आप कर रहे हैं?

कृष्णमूर्ति : प्रश्नकर्ता का यह आशय है कि क्या सरकारी सहायता के अभाव में इस प्रकार के परीक्षण करनेवाले विद्यालय, जिनके सम्बन्ध में मैंने कहा है, जीवित रह सकेंगे? प्रश्नकर्ता का मानना है कि आज के विश्व में प्रत्येक वस्तु सरकार, राजनीतिज्ञ और अधिकारी द्वारा ज़्यादा-से-ज़्यादा नियन्त्रित की जा रही है। ये हमारे दिल और दिमाग को एक निश्चित आकार देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि हम एक निश्चित तरीके से सोचें। चाहे रूस हो या कोई अन्य देश, आज-कल शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी नियन्त्रण का ही प्रभुत्व है। प्रश्नकर्ता सज्जन यह पूछना चाहते हैं कि जिस प्रकार के विद्यालयों की मैं चर्चा कर रहा हूँ, ऐसे विद्यालय क्या सरकारी सहायता के अभाव में चल सकेंगे?

अब आपका क्या कहना है ? जब आप सचमुच यह महसूस करते हैं कि अमुक वस्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, वह वास्तव में करने जैसी है, जब आप अपना सम्पूर्ण हृदय उस वस्तु में लगा देते हैं, तब वह सफल होगी ही। भले ही सरकारी सहायता न मिले, समाज को स्वीकृति न प्राप्त हो। परन्तु हममें से अधिकांश व्यक्ति किसी वस्तु में अपना समग्र हृदय लगाते ही नहीं हैं और इसीलिए इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। जब हम अपनी पूरी शक्ति के साथ एक नूतन विश्व के निर्माण करने की आवश्यकता महसूस करते हैं, जब हममें से प्रत्येक व्यक्ति पूर्णतया मानसिक और आध्यात्मिक क्रान्ति में होता है, तब हम अवश्य अपना हृदय, अपना मन और अपना समस्त जीवन इस प्रकार के विद्यालयों के निर्माण में लगा देते हैं जहाँ न तो भय हो और न तो उससे लगा फँसाव हो।

श्रीमान्‌जी, बहुत थोड़े व्यक्ति ही वास्तव में क्रान्ति के जनक होते हैं। वे खोजते हैं कि सत्य क्या है और उस सत्य के अनुसार आचरण करते हैं, परन्तु सत्य की खोज के लिए परंपराओं से मुक्ति तो आवश्यक है, जिसका अर्थ है समस्त भयों से मुक्ति।

स्वतंत्रता [१]

मैं आज आप के साथ स्वतंत्रता की समस्या के संबंध में चर्चा करना चाहूँगा। यह एक अत्यंत पेचीदी समस्या है; इसे समझने के लिए गंभीर अध्ययन एवं बोधक्षमता की आवश्यकता है। धार्मिक स्वतंत्रता, अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता आदि के संबंध में हम बहुत बातें सुनते हैं। इसके संबंध में विद्वानों ने बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे हैं। परन्तु मेरा खयाल है कि हम सरलता से सीधे इस समस्या पर चर्चा कर संभवतः इसे सही रूप में सुलझा सकते हैं।

मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा यदि आपने कभी रुककर पश्चिम की ओर अस्ताचलगामी सूर्य की अद्‌भुत लालिमा को देखा है और देखा है उस समय के लजीले बालचंद्र को वृक्षों की ओट में। बहुधा उस समय सरिता शांत रहती है, एकदम शांत। और उस समय इसकी सतह पर प्रत्येक वस्तु प्रतिबिंबित होती है—पुल, इसपर से गुज़रनेवाली ट्रेन, सुकुमार चंद्रमा और थोड़ा अंधेरा होने पर तारे। यह सब बहुत ही रमणीय है। आप किसी सुन्दर वस्तु को देख सकें, उसका निरीक्षण कर सकें, उसकी ओर आप अपना संपूर्ण ध्यान दे सकें; इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि आपका मन अनिवार्य रूप से समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त हो, क्या यह आवश्यक नहीं है ? यह समस्त समस्याओं, चिंताओं और अनुमानों से बोझिल न हों। आप किसी वस्तु को सचमुच तभी देख सकते हैं, तभी आप उसके विलक्षण सौंदर्य के प्रति संवेदनशील हो सकते हैं, जब आपका मन एकदम शांत हो और संभवतः यहीं स्वतंत्रता की समस्या का सूत्र निहित है।

स्वतंत्र होने के क्या मानी है ? क्या स्वतंत्रता का अर्थ अपनी इच्छानुसार कार्य करना, अपनी मर्जी के अनुसार कहीं जाना अथवा इच्छानुसार सोचना है ? यह सब तो आप किसी न किसी भाँति कर ही लेते हैं। केवल दूसरे पर आश्रित न रहने का अर्थ ही स्वतंत्रता नहीं है। विश्व के अनेकों व्यक्ति दूसरों पर आश्रित नहीं है परंतु स्वतंत्र बहुत ही कम हैं। स्वतंत्रता के लिए बहुत ऊँची मेधा की आवश्यकता है, क्या नहीं है ? स्वतंत्र होने का अर्थ है मेधावी (Intelligent) होना, पर यह सुबोधता केवल इच्छा मात्र से नहीं आ जाती। इसका आगमन तो तब होता है जब आप अपने संपूर्ण वातावरण को, अपने चिरसंचित सामाजिक, धार्मिक, पैत्रिक और परम्परागत संस्कारों को पूर्णतया

समझ लेते हैं। लेकिन इन समस्त पूर्वसंचित संस्कारों से, जो आपको माता-पिता, सरकार, समाज, संस्कृति, विश्वास, देवता, अंधविश्वास व परंपरा से प्राप्त हुए हैं, जिनसे आप बँधे हैं और जो आप बिना सोचे-समझे किए जा रहे हैं, इन्हें समझने और इनसे मुक्त होने के लिए एक गहरी अंतर्दृष्टि की आवश्यकता होती है, पर बहुधा आप अंदर से भयभीत हैं, अतः आप यह सब किए जा रहे हैं। आप हमेशा इसलिए भयभीत रहते हैं कि कहीं आपकी प्रतिष्ठा समाप्त न हो जाए, कहीं पादरी आपके संबंध में कुछ कह न बैठें, कहीं आप परंपरा के प्रतिकूल न चले जाएँ, कहीं आप के हाथों कोई गलत बात न हो जाए। परन्तु स्वतंत्रता तो एक ऐसी मानसिक अवस्था है जहाँ न डर है, न जबरदस्ती है और न सुरक्षित होने की भावना ही है।

क्या हममें से अधिकांश सुरक्षा नहीं चाहते ? क्या हम यह नहीं कहलाना चाहते है कि हम कितने महान् व्यक्ति हैं, हम दिखने में कितने सुन्दर और बुद्धि में कितने तीक्ष्ण हैं ? अन्यथा हम अपने नाम के आगे इतनी उपाधियाँ नहीं लगाते ! ये समस्त बातें हम में एक आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावना पैदा करती हैं। हम सभी प्रसिद्ध होना चाहते हैं और ज्यों ही हम कुछ बनना चाहते हैं त्यों ही हम स्वतंत्र नहीं रह जाते।

कृपया आप इसे समझें, क्यों कि स्वतंत्रता की समस्या को समझने के लिए यह एक सूत्र है। चाहे आप इस राजनीति, शक्ति, प्रतिष्ठा या अधिकारों की दुनिया में हों अथवा उस तथाकथित आध्यात्मिक दुनिया में जहाँ आप गुणी, भले और सज्जन बनने की अभिलाषा करते हैं, परन्तु ज्यों ही आप कुछ बनने का प्रयत्न करते हैं, त्यों ही आप स्वतंत्र नहीं रह जाते। लेकिन वह महिला या पुरुष जो इन सारी बातों की व्यर्थता को महसूस करता है, जिसका हृदय सरल है और इसीलिए जो 'कुछ और बनने' की इच्छा से प्रभावित नहीं होता वही स्वतंत्र है। यदि आप इसकी सरलता को समझें तो आप भी इसके विलक्षण सौंदर्य और गहराई को देख सकेंगे।

आखिर इन समस्त परीक्षाओं का यही तो हेतु है—आप को प्रतिष्ठा देना, आप को कुछ बनाना। उपाधियाँ, प्रतिष्ठा और ज्ञान आप को कुछ बनने के लिए उत्तेजित करते हैं। क्या आपने यह महसूस नहीं किया है कि आपके माता-पिता और आपके शिक्षक आपको जीवन में कुछ बनने के लिए कहते हैं। वे आप से कहते हैं कि आप अपने चाचा या दादा के समान अवश्य यशस्वी बनें, अथवा आप किसी योद्धा, गुरु या संत के उदाहरण का अनुकरण करने का प्रयत्न करें। इस प्रकार आप कभी भी स्वतंत्र नहीं हो पाते हैं। आप चाहे किसी गुरु, संत, शिक्षक या अपने किसी संबंधी के उदाहरण का अनुकरण करें अथवा किसी परंपरा से चिपके रहें, इनसे स्पष्ट ध्वनित

होता है कि आप कुछ बनने की चाह कर रहे हैं और जब आप सचमुच इस सत्य को समझ लेते हैं तभी स्वतंत्र हो पाते हैं।

अतः यह शिक्षा का कार्य है कि वह बचपन से ही हर क्षण आप को वही होने में सहयोग दें जो कि आप हैं, किसी का अनुकरण करने में नहीं। और यह अत्यन्त कठिन है। आप जैसे हैं वैसे ही बने, फिर चाहे आप कुरूप हों अथवा सुन्दर हों, चाहे आप ईर्ष्यालु हों या स्पर्द्धक हों। आप जो कुछ हैं उसे समझें और हमेशा वही हों जैसे कि आप हैं। यह 'स्वयं' बनना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि आप सोचते हैं कि आप हीन हैं और यदि आप अपने आप को परिवर्तित कर सम्माननीय बना सकें तो यह एक आश्चर्यजनक बात होगी, लेकिन जीवन में ऐसा कभी नहीं होता। इसके विपरीत यदि आप 'जो कुछ हैं' उसे यदि सचमुच देखते हैं, समझते हैं, तब इस समझने में ही आप में एक परिवर्तन होगा। अतः स्वतंत्रता 'आप जो कुछ हैं' उससे भिन्न होने में नहीं है, इच्छानुसार कार्य करना भी स्वतंत्रता नहीं है, इसमें भी स्वतन्त्रता नहीं कि आप किसी परंपरा, गुरु अथवा अपने माता-पिता का अनुकरण करें। स्वतन्त्रता का अर्थ है अपनी वास्तविकता को क्षण-प्रतिक्षण समझना।

आप देखते हैं कि आप इसके लिए शिक्षित ही नहीं किए जाते हैं! आपकी शिक्षा आपको कुछ-न-कुछ बनने के लिए उत्तेजित करती हैं लेकिन यह अपने आपको समझना नहीं है। आपका यह "स्व" अत्यन्त पेचीदा है। यह केवल वही नहीं है जो विद्यालय में जाता है, जो झगड़ता है, जो खेलता है, जो भयभीत है परन्तु यह इससे कहीं ज्यादा रहस्यमय और अस्पष्ट है। यह केवल आपके उन विचारों से ही नहीं बना है जो आप सोचा करते हैं लेकिन उसमें वे समस्त बातें भी विद्यमान हैं जो आप दूसरों से सुनते हैं, पुस्तकों, समाचारपत्रों या नेताओं से ज्ञात करते हैं। आप यह सब तभी समझ सकते हैं, जब आप कुछ और नहीं बनना चाहते हैं, किसी की नकल नहीं करते हैं, किसी के अनुयायी नहीं बनते है, जिसका अर्थ है आप इस 'कुछ बनने' के लिए प्रयत्न करने की परंपरा के खिलाफ विद्रोह करते हैं। यही वह वास्तविक क्रांति हैं जो हमें उस अद्भुत स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर करती है। शिक्षा का यही वास्तविक कार्य है कि वह इस प्रकार की स्वतन्त्रता का उद्‌घाटन करे।

आपके माता-पिता, आपके शिक्षक और आपकी खुद की इच्छाएँ सभी आपसे यही चाहते हैं कि आप किसी-न-किसी के समान बनें ताकि आप प्रसन्न हो सकें, सुरक्षित हो सकें। लेकिन मेधावी (Intelligent) होने के लिए क्या यह आवश्यक नहीं है कि आप इन समस्त संस्कारों से मुक्त हों जो आपको बाँधते हैं, कुचलते हैं।

आपमें से उन व्यक्तियों में नूतन विश्वनिर्माण की आशाएँ नीहित हैं, जो

असत्य को समझें और उसके खिलाफ केवल शाब्दिक नहीं अपितु वास्तविक विद्रोह करें। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप सही शिक्षा प्राप्त करें क्योंकि जब आप स्वतन्त्रता में विकास करेंगे तभी आप एक नूतन विश्व का निर्माण कर सकेंगे जो किसी भी परंपरा अथवा किसी दार्शनिक या आदर्शवादी की सनक पर आधारित न होगा। लेकिन यह स्वतन्त्रता तब तक संभव नहीं जब तक कि आप कुछ बनना चाहते हैं या किसी आदर्श का अनुकरण करना चाहते हैं।

प्रश्नकर्त्ता : मेधा (Intelligence) क्या है ?

कृष्णमूर्ति : हम इस प्रश्न में बड़े आहिस्ते से व इतमीनान से उतरें और खोजें। खोज करने का अर्थ किसी निर्णय पर पहुँचना नहीं है। मुझे नहीं ज्ञात है आप इन दोनों का अन्तर समझ रहे हैं। जिस क्षण आप इस नतीजे पर पहुँच जाते हैं कि 'मेधा यह है' उसी क्षण आप मेधावी नहीं रह जाते हैं। अधिकांश प्रौढ़ व्यक्तियों ने यही तो किया है; वे निर्णयों पर पहुँच गए इसीलिए वे मेधावी नहीं हो सके। अतः आपने प्रारंभ में ही यह जान लिया कि मेधावी मन सतत सीखता रहता है, वह कभी निर्णय नहीं करता।

मेधा क्या है ? अधिकांश व्यक्ति इसकी परिभाषा से ही संतुष्ट हो जाते हैं। या तो वे यह कह देते हैं "यह अच्छी व्याख्या है" या फिर वे अपनी ही व्याख्या पसन्द कर लेते हैं। लेकिन जो मन केवल व्याख्या से संतुष्ट हो जाता है वह बहुत छिछला मन है, वह मेधावी मन नहीं हो सकता।

आपने यह देखा कि मेधावी मन वह मन है जो न तो व्याख्याओं और निर्णयों से संतुष्ट होता है और न विश्वास करता है, क्योंकि विश्वास भी एक प्रकार का निर्णय ही है। मेधावी मन एक ऐसा मन है जो सतत खोजकर रहा हो, निरीक्षण कर रहा हो, सीख रहा हो, अध्ययन कर रहा हो। इसका अर्थ हुआ कि जब आप भयभीत नहीं है, क्रांति के लिए उत्सुक हैं, परमात्मा और सत्य की खोज के लिए संपूर्ण सामाजिक रचना के खिलाफ खड़े होने के लिए तैयार हैं, तभी केवल आप मेधावी कहे जा सकते हैं।

मेधा ज्ञान नहीं है। यदि आपने सारे विश्व की पुस्तकें पढ़ ली, तो भी आपमें मेधा नहीं आएगी। मेधा बड़ी ही गूढ़ है; यह कहीं रुकती नहीं है, इसका उद्‌घाटन तभी होता है जब आप मन की संपूर्ण प्रक्रिया को समझ लेते हैं। किसी दार्शनिक या गुरु द्वारा बताए गए मन की नहीं अपितु अपने खुद के मन की। आपका मन समग्र मानवता का मन है और जब आप इसे समझ लेते हैं तब आपको एक भी

पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि आपका मन भूतकाल का संपूर्ण ज्ञान लिए हुए है। अतः आत्मज्ञान के साथ-साथ मेधा का आगमन होता है और आपको यह आत्मज्ञान हो सकता है सम्बन्धों के माध्यम से—विश्व के साथ, व्यक्तियों के साथ, वस्तुओं और विचारों के साथ के आपके सम्बन्ध ! मेधा कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे आप प्राप्त कर सकें जैसे कि आप ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसका उद्‌गम तो एक महान् क्रांति के साथ होता है– एक ऐसी क्रांति जहाँ भय एकदम न हो। दूसरे शब्दों में वहाँ सचमुच प्रेम की अनुभूति हो। क्योंकि निर्भयता में ही प्रेम प्रस्फुटित होता है।

यदि आप केवल व्याख्या चाहते हैं तो मुझे डर है, आप महसूस कर रहे होंगे, कि मैंने आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। मेधा का अर्थ पूछना कुछ वैसा ही है जैसा यह पूछना कि जीवन क्या है? जीवन अध्ययन है, खेल है, कामवृत्ति है! जीवन कार्य है, संघर्ष है, ईर्ष्या है, महत्त्वाकांक्षा है! जीवन-प्रेम है, सौन्दर्य है, सत्य है! जीवन सब कुछ है! क्या नहीं है? लेकिन आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्तियों में इस खोज के लिए धैर्य ही नहीं है– उत्साह व दृढ़तायुक्त धैर्य !

प्रश्नकर्ता : क्या रुक्ष मन संवेदनशील बन सकता है?

कृष्णमूर्ति : आप प्रश्न को सुनें, शब्दों के पीछे के अर्थ को समझें। पूछा गया है—क्या रुक्ष मन संवेदनशील बन सकता है? यदि मैं यह कहूँ कि मेरा मन असभ्य है और यदि इसे मैं संवेदनशील बनाने का प्रयत्न करूँ तो यह संवेदनशील बनने का प्रयत्न ही असभ्यता होगी। कृपया इसे समझें। स्वयं को छलें नहीं, अपितु इसका निरीक्षण करें। इसके विपरीत यदि मैं मन को संवेदनशील बनाने या इसे बदलने का प्रयत्न न कर अपनी असभ्यता को मान्य करूँ, यह समझूँ कि यह रुक्षता क्या है, इसे मैं अपने दैनिक जीवन में महसूस करूँ– भोजन करने में मेरी लालची वृत्ति, व्यक्तियों के साथ मेरा अशिष्ट व्यवहार, मेरा घमंड, मेरी उद्दण्डता, मेरी भद्दी आदतें, मेरे गंदे विचार, तब यह निरीक्षण ही 'जो है' में परिवर्तन ला देगा।

इसी प्रकार यदि मैं मूर्ख हूँ और यदि मैं यह कहूँ कि मुझे मेधावी होना ही चाहिए तब मेरा यह मेधावी बनने का प्रयत्न मुझमें और ज्यादा मूर्खता पैदा करेगा। क्योंकि महत्वपूर्ण बात तो यह है कि आप इस मूर्खता को समझें। मैं बुद्धिमान बनने के लिए चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करूँ किन्तु मेरी मूर्खता बनी ही रहेगी। चाहे मैं पुस्तकों के उद्धरण देता रहूँ, चाहे मैं महान लेखकों के कथन रट लूँ, लेकिन मूलतः मैं फिर भी मूर्ख ही रहूँगा। लेकिन यदि मैं इस जड़ता को अपने दैनिक जीवन में प्रकट होते हुए देखूँ, समझूँ कि मैं अपने सेवक के साथ कैसे व्यवहार करता हूँ, मैं अपने पड़ोसी,

किसी गरीब, किसी अमीर या लेखक के साथ किस प्रकार पेश आता हूँ, तब मेरी यह जागरूकता ही मुझे मूर्खता से मुक्त कर देगी।

आप इसे करके देखें। आप देखें कि आप अपने सेवक से किस प्रकार बातें करते हैं, एक राज्यपाल के प्रति आप का व्यवहार कितना सम्मानपूर्ण होता है और उस व्यक्ति के प्रति, जिसके पास आपको देने के लिए कुछ भी नहीं है, आप कितना कम सम्मान रखते हैं। तब आप महसूस करेंगे कि आप कितने नासमझ हैं और इस नासमझी को समझ लेने में ही मेधा व संवेदनशीलता का आगमन होता है। आपको संवेदनशील बनना नहीं पड़ता है; जो व्यक्ति संवेदनशील होने के लिए प्रयत्न कर रहा है, वह असभ्य है, असंवेदनशील है, रुक्ष है।

प्रश्नकर्ता : बच्चा अपने माता-पिता एवम् शिक्षक की सहायता के बिना यह कैसे जान सकता है कि वह क्या है ?

कृष्णमूर्ति : क्या ऐसा मैंने कहा है कि बच्चा माता-पिता एवं शिक्षक की सहायता के बिना स्वयम् को जान सकता है ? अथवा मेरे कथन की आपने इस प्रकार की व्याख्या की है ? बालक अपने आपको तभी जान सकेगा यदि उसके आसपास का वातावरण उसे सहायता करे। यदि माता-पिता एवम् शिक्षक सचमुच बालक से प्रेम करते हैं तो वे उसके साथ कभी जबरदस्ती नहीं करेंगे। वे उसके लिए एक ऐसे वातावरण का निर्माण करेंगे जिसमें वह अपने आपको जान सके।

आपने यह प्रश्न पूछा तो है पर क्या यह आपके लिए ज्वलंत समस्या है ? यदि आप यह गहराई से महसूस करते हैं कि बालक अपने विषय में जाने और आप यह भी महसूस करते हैं कि जब तक उस पर किसी अधिकारी का नियंत्रण है तब तक वह ऐसा नहीं कर सकता है तब क्या आप स्वयम् एक सही वातावरण निर्माण करने में सहायता नहीं देंगे ? अब आप यदि यह पूछें "मैं इसके लिए क्या करूँ, आप बताएँगे तो मैं यह कर लूंगा" तब तो यह फिर वही पुरानी बात होगी। आप ऐसा क्यों नहीं कहते– "यह कार्य हम मिलकर प्रारंभ कर दें।" यह समस्या कि किस प्रकार ऐसा वातावरण तैयार किया जाए जिसमें बालक स्वयम् के विषय में जान सके, यह प्रत्येक व्यक्ति से संबंधित है—माता-पिता से, शिक्षकों से, बच्चों से। इतना होते हुए भी आत्मज्ञान थोपा नहीं जा सकता है। बोध-क्षमता जबरदस्ती नहीं लाई जा सकती है। हाँ, यदि यह समस्या आपके लिए, मेरे लिए, प्रत्येक माता-पिता एवम् प्रत्येक शिक्षक के लिए ज्वलंत समस्या है तब हम सही विद्यालयों का निर्माण करेंगे।

प्रश्नकर्ता : बच्चे बहुधा मुझे कहते हैं कि उन्होंने गाँवों में कुछ वायव्य घटनाएँ (Weird Phenomena) जैसे प्रेतबाधा आदि देखी हैं । वे भूत-प्रेत आदि से डरते हैं । वे मृत्यु के संबंध में भी पूछते हैं । इन सब के संबंध में हम क्या उत्तर दें ?

कृष्णमूर्ति : हम मृत्यु के संबंध में आगे चर्चा करेंगे । आप देखते हैं कि यह भय एक विलक्षण वस्तु है। बालकों से अपने माता-पिता अथवा वृद्ध व्यक्तियों द्वारा भूतों के संबंध में कहा गया है अन्यथा आप संभवतः भूत कभी नहीं देखते । किसी व्यक्ति ने आपसे प्रेतबाधा के संबंध में कहा है । आप इतने छोटे हैं कि आप ये सारी बातें नहीं समझ सकते । यह आपका स्वतः का अनुभव नहीं है । यह तो वृद्ध लोगों ने आपसे जो कहा हैं उसीका प्रतिविम्ब है और बहुधा इन वृद्ध व्यक्तियों को इसके सम्बन्ध में कोई जानकारी भी नहीं है। उन्होंने इसके सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें पढ़ ली हैं और मान बैठे हैं कि उन्होंने ये सारी बातें समझ ली हैं । अब एक भिन्न प्रश्न उपस्थित होता है—क्या ऐसा कोई अनुभव है जिसे भूतकाल द्वारा दूषित न किया गया हो ? यदि कोई अनुभव भूतकाल द्वारा मलीन किया गया है तब वह केवल भूतकाल का सातत्य मात्र होगा । वह मौलिक अनुभव न होगा ।

महत्त्वपूर्ण विषय तो यह है कि आप, जिनका सम्बन्ध बालकों से आता है, बच्चों को भूतों के सम्बन्ध में अपने मतों, अपनी कल्पनाओं, अपने विशिष्ट विचारों और अनुभवों से प्रभावित न करें । इसे रोकना बड़ा मुश्किल है क्योंकि प्रौढ़ व्यक्ति इन अनावश्यक वस्तुओं के सम्बन्ध में, जिनका जीवन में कोई स्थान नहीं है, बातें करते रहते हैं और धीरे-धीरे वे अपनी खुद की चिन्ताएँ, भय और अन्धविश्वास बच्चों के सामने प्रकट करते रहते हैं और बच्चे भी सहज रूप से जो कुछ उन्होंने सुना है उसे दुहराते रहते हैं । यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रौढ़ व्यक्ति इन विषयों पर जिनके संबंध में वे स्वयं भी कुछ नहीं जानते हैं, बच्चों के सामने बातें न करें; इसके विपरीत वे एक ऐसे वातावरण के निर्माण करने में सहयोग दें जिसमें बच्चे स्वतन्त्रता और निर्भयता के साथ बड़े हो सकें !



स्वतन्त्रता [२]

संभवतः आपमें से कुछ व्यक्ति, मैं जो स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में चर्चा करता रहा हूँ, उसे बिल्कुल ही नहीं समझ रहे होंगे। लेकिन जैसा कि मैंने आप को बताया यह बहुत ही आवश्यक है कि हम उन नवीन विचारों के प्रति भी खुलें, जिनसे हम बिल्कुल ही अभ्यस्त नहीं हैं। जो कुछ सुन्दर है, उसे देखना अच्छा है, पर आपको जीवन की कुरूपता भी देखनी होगी। आपको प्रत्येक वस्तु के प्रति जागरूक रहना होगा। इसी भाँति उन वस्तुओं के प्रति भी खुले रहें, जिन्हें सम्भवतः आप पूर्णतया नहीं जानते क्योंकि आप जितना ज्यादा इन विषयों पर विचार करेंगे उतनी ही ज्यादा समृद्धि से आप जी सकेंगे।

मैं नहीं जानता यदि आपमें से किसीने प्रातःकाल की वेला में सूर्य के प्रकाश को पानी की सतह पर देखा हो। कितना अद्भुत, कितना स्निग्ध प्रकाश होता है वह ! श्याम श्याम पानी और वृक्षों के ऊपर अकेला भोर का तारा किस प्रकार थिरकता है ! क्या कभी आप यह देखते हैं ? अथवा आप इतने व्यस्त और अपनी रोज़मर्रा की जिन्दगी में इतने उलझे हुए हैं कि आप इस वसुधा के, जिसपर हम सभी रहते हैं, अनन्त सौन्दर्य को ही भूल गए हैं। चाहे हम अपने आपको साम्यवादी कहें अथवा पूंजीवादी, हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान या ईसाई कहें; चाहे हम अन्धे हों, लंगड़े हों, सुन्दर हों या प्रसन्न हों, यह वसुधा हम सभी की है। क्या आप समझ रहे हैं ? यह हमारी वसुधा है। किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। यह वसुधा केवल धनी व्यक्तियों की ही नहीं है, यह कुछ चुने हुए शक्तिशाली शासकों अथवा देश के कुछ बड़े सम्माननीय व्यक्तियों की ही नहीं है अपितु यह हमारी वसुधा है—आपकी और मेरी। भले ही हम कुछ नहीं हैं फिर भी हम इस वसुधा पर रहते हैं और हमें एक साथ रहना है। यह विश्व जितना अमीरों और विद्वानों का है उतना ही गरीबों और अशिक्षितों का भी है। यह हमारा विश्व है और मैं सोचता हूँ यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि हम इसको महसूस करें और वसुधा को प्यार करें, केवल प्रातः के शान्त क्षणों में ही नहीं अपितु प्रत्येक क्षण। इसे हम तभी महसूस कर सकेंगे, इस वसुन्धरा को हम तभी प्यार कर सकेंगे जब हम यह समझ लेंगे कि स्वतन्त्रता क्या है !

इस युग में स्वतंत्रता (Freedom) जैसी कोई वस्तु ही नहीं रही है। हम यह जानते ही नहीं कि स्वतंत्रता क्या है ? हम सभी स्वतंत्रता चाहते हैं पर आप देखेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह शिक्षक हो, माता या पिता हो, वकील हो, पुलिस हो, सैनिक

या राजनीतिज्ञ या व्यापारी हो अपने छोटे से घेरे में इस स्वतंत्रता को बचाये रखने के लिए कुछ-न-कुछ कर रहा है। स्वतंत्र होने का अर्थ यह नहीं कि आप जो चाहें सो करें, अथवा आप बाहर से बाँधनेवाली परिस्थितियों को तोड़ डालें, बल्कि इसका अर्थ है पराधीनता की समस्या को पूर्णतया समझ लेना। क्या आप जानते हैं कि यह परावलंबन क्या है? आप अपने माता-पिता पर आश्रित हैं, क्या नहीं हैं? आप अपने शिक्षकों एवं रसोइये पर अवलंबित हैं, आप डाकिए और दूधवाले पर आश्रित हैं। इस प्रकार की पराधीनता तो कोई भी आसानी से समझ सकता है। लेकिन स्वतंत्र होने के लिए एक और गहरे प्रकार की पराधीनता समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। वह है अपनी प्रसन्नता के लिए दूसरे पर आश्रित रहना। क्या आप जानते हैं कि अपनी खुशी के लिए दूसरे पर आश्रित होने का क्या अर्थ है? यह केवल हमारी भौतिक पराधीनता मात्र नहीं है जो हमें इतना बाँध लेती हैं, लेकिन यह एक आंतरिक मानसिक पराधीनता है, जिससे हम यह तथाकथित प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार आप जब किसी पर आश्रित होते हैं तब आप उसके दास बन जाते हैं। आप ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं त्यों-त्यों यदि आप भावुकतावश अपने माता, पिता, अपनी पत्नी, अपने पति, अपने गुरु या किसी विचार पर आश्रित होते जाते हैं तो समझ लीजिए कि बन्धन पहले से ही प्रारम्भ हो चुके हैं। यद्यपि हममें से अधिकांश व्यक्ति बचपन से ही स्वतन्त्र होना चाहते हैं, फिर भी हम यह सब नहीं समझते।

स्वतंत्र होने के लिए हमें अपनी इस सम्पूर्ण आन्तरिक पराधीनता के खिलाफ विद्रोह करना होगा और हम यह तब तक नहीं कर सकते जब तक कि हम यह नहीं समझ लेते हैं कि हम पराधीन क्यों हैं? जब तक हम सचमुच इस आन्तरिक पराधीनता को नहीं समझ लेते, इसका अन्त नहीं कर देते तब तक स्वतन्त्र होना असम्भव है। पराधीनता को पूर्णतया समझ लेना ही स्वतंत्रता है। लेकिन स्वतंत्रता कोई प्रतिक्रिया नहीं है। क्या आप जानते हैं, यह प्रतिक्रिया क्या है? यदि मैं आपको कुछ चुभती हुई बात कहूँ, आपको अपशब्द कह दूँ तब आप मुझसे नाराज हो जाते हैं। यह प्रतिक्रिया हुई—पराधीनता से उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया; और इसी की आगे की प्रतिक्रिया स्वतंत्रता हुई। परन्तु स्वतंत्रता (freedom) प्रतिक्रिया नहीं है और जब तक हम इस प्रतिक्रिया को समझ नहीं लेते, इससे परे नहीं हो जाते, तब तक हम कभी मुक्त नहीं हो सकते।

क्या आप जानते हैं कि किसी से प्रेम करने का क्या अर्थ है? किसी वृक्ष, किसी पक्षी या पालतू पशु से प्रेम करने का क्या अर्थ है, क्या आप जानते है? उसका खयाल रखना, उसे खिलाना, उसे पालना यद्यपि इसके बदले में आप को कुछ भी न मिले। भले ही वह आप के पीछे-पीछे न चले, आपको कोई सहारा न दे, आप के आश्रित न

रहे। हममें से अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार प्रेम ही नहीं करते! हम जानते ही नहीं हैं कि इसका क्या अर्थ है क्योंकि हमारा प्रेम तो हमेशा चिंता, ईर्ष्या और भय से घिरा रहता है। इसका अर्थ हुआ हम आन्तरिक रूप से दूसरों पर अवलंबित हैं। हम चाहते हैं कि कोई हमें प्यार करे। हम किसी को प्रेम कर उसे वहीं भूलना नहीं चाहते। हम तो उसके बदले में कुछ चाहते हैं और उस चाहने में ही हम पराधीन बन जाते हैं।

अतः स्वतंत्रता और प्रेम दोनों साथ-साथ चलते हैं। प्रेम प्रतिक्रिया नहीं है। यदि मैं आप से इसलिए प्रेम करता हूँ कि आप मुझसे प्रेम करते हैं तब यह एक व्यापार होगा, यह एक बाजारू वस्तु हो जाएगी; जिसे खरीदा जा सकता है। यह प्रेम नहीं है। प्रेम करने का अर्थ है—हम बदले में कुछ भी न चाहें। हमें इस बात का विचार तक न रहे कि हमने कुछ दिया भी है। केवल ऐसा ही प्रेम स्वतन्त्रता जान सकता है। लेकिन आप देखते हैं कि आप इसके लिए शिक्षित नहीं किए जाते। आपको तो बस गणित, रसायनशास्त्र, भूगोल, इतिहास मात्र पढ़ा दिए जाते हैं, क्योंकि आपके माता-पिता तो केवल इतना चाहते हैं कि आपको अच्छी नौकरी मिल जाए, आप जीवन में सफल बनें। यदि आपके माता-पिता धनी हैं तो वे आपको विदेश भेज देंगे; परन्तु वे भी अन्य व्यक्तियों की तरह यही चाहेंगे कि आप धनी बनें और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करें। आप जितने ऊँचे चढ़ते हैं उतनी ही ज्यादा तकलीफें आप दूसरों के लिए पैदा करते हैं, क्योंकि वहाँ पहुँचने के लिए आपको अधिक स्पर्धा करनी पड़ती है, ज्यादा निष्ठुर होना पड़ता है। अतः माता-पिता अपने बच्चों को ऐसे विद्यालयों में भेजते हैं जहाँ महत्त्वाकांक्षा है, प्रतिस्पर्धा है और जहाँ बिल्कुल ही प्रेम नहीं है। यही कारण है कि हमारा यह समाज निरंतर नष्ट होता जा रहा है, यह सतत संघर्षमय है, भले ही राजनीतिज्ञ, न्यायाधीश और तथाकथित प्रतिष्ठित पुरुष शांति की बातें करें पर इनका कोई अर्थ नहीं है।

अब हमें अपने लिए इस स्वतन्त्रता (freedom) की समस्या को समझना होगा। हमें अपने लिए यह ज्ञात करना होगा कि प्रेम का क्या अर्थ है क्योंकि यदि हम प्रेम नहीं करते तो हम कभी विचारशील, जागरुक, संवेदनशील नहीं बन सकते। क्या आप जानते हैं कि विचारशील होनेका क्या अर्थ है? जब आप राह में, जहाँ अनेकों व्यक्ति नग्न पैरों से चलते हैं, एक तीक्ष्ण पत्थर देखते हैं और उसे वहाँ से हटा देते हैं इसलिए नहीं कि किसी ने आपको ऐसा करने के लिए आदेश दिया है अपितु आप दूसरे के लिए विचारशील हैं, इसका कोई महत्त्व नहीं कि वह कौन व्यक्ति है और आप उससे कभी मिले भी नहीं। एक पौधा लगाना और उसका खयाल रखना, एक सरिता देखना और धरती के अखण्ड सौंदर्य की अनुभूति करना, एक पक्षी को उड़ते हुए देखना और उसकी

उड़ान की सुन्दरता महसूस करना, संवेदनशील होना और इस क्षण-क्षण परिवर्तित होनेवाले अद्भुत जीवन के प्रति खुला रहना; इन समस्त बातों के लिए स्वतन्त्रता (freedom) का होना अत्यंत आवश्यक है और स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है आपमें प्रेम का होना। प्रेम के अभाव में स्वतंत्रता कहाँ ? प्रेम की अनुपस्थिति में स्वतंत्रता केवल विचार मात्र है, जिसका कोई अर्थ नहीं। अतः केवल वे मानव जो इस आन्तरिक पराधीनता को समझ कर इससे मुक्त हो जाते हैं और जो जानते हैं कि प्रेम क्या है, इस स्वतंत्रता को उपलब्ध हो पाते हैं। ऐसे ही मानव एक नूतन सभ्यता और एक भिन्न विश्व का निर्माण करेंगे।

प्रश्नकर्ता : इच्छा का मूल कारण क्या है और हम इससे कैसे मुक्त हो सकते हैं ?

कृष्णमूर्ति : एक युवक यह प्रश्न कर रहा है। आखिर वह इच्छा से क्यों मुक्त होना चाहता है ? क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? वह एक जवान व्यक्ति है—चेतना और जीवनशक्ति से भरा हुआ। उसे इच्छा से क्यों मुक्त होना चाहिए ? उसे कहा गया है कि इच्छा से मुक्त होना एक महान् गुण है। वासना से मुक्त होकर वह प्रभु का या अन्य परम सत्ता का साक्षात्कार करेगा। इसीलिए यह पूछता है, ''वासना का मूल कारण क्या है और मैं इससे कैसे मुक्ति पाऊँ ?'' लेकिन वासना से मुक्ति चाहने की इच्छा भी वासना का ही एक भाग है। क्या नहीं है ? यह प्रश्न भय द्वारा प्रेरित है।

इच्छा का मूल क्या है, इसका उद्गम, इसका प्रारम्भ क्या है ? आप कोई आकर्षक वस्तु देखते हैं और उसे चाहने लगते हैं। आप एक मोटर अथवा एक नाव देखते हैं और उस पर अपना अधिकार चाहते हैं। आप एक धनी व्यक्ति की प्रतिष्ठा चाहते हैं अथवा आप एक संन्यासी बनना चाहते हैं। यही इच्छा का मूल है—किसी वस्तु को देखना उससे सम्बंधित होना, फिर उससे संवेदना प्राप्त करना और इस संवेदना से इच्छा पैदा हुई। यह जानकर कि इच्छा से संघर्ष पैदा होते हैं आप पूछते हैं, ''मैं इच्छा से कैसे मुक्ति प्राप्त करूँ ?'' अतः आप वास्तव में इच्छा से मुक्त नहीं होना चाहते हैं बल्कि आप मुक्ति चाहते हैं इच्छा से पैदा होनेवाली चिन्ता, व्याकुलता और पीड़ा से। आप इच्छा के विषैले फलों से मुक्ति चाहते हैं, स्वयम् इच्छा से नहीं। और यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है; इसे आप समझ लें। यदि आप इच्छा को पीड़ा, क्लेश, संघर्ष, चिंता और भय से मुक्त कर लें ताकि केवल इसका आनन्द रह जाए तब क्या आप ऐसी इच्छा से मुक्त होना चाहेंगे ?

जहाँ तक हम में कुछ पाने को, कहीं पहुँचने की, कुछ होने की इच्छा है फिर चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो तब तक हमारी चिंता, हमारे दुख और हमारे भय अनिवार्य रूप से बने रहेंगे। धनवान अथवा अन्य कुछ बनने की हमारी महत्त्वाकांक्षा तभी विलीन हो सकती है जब हम इसकी सड़न एवं इसके दूषित रूप को पूर्णतया देख

लेते हैं। जिस क्षण हम यह पूर्णतया महसूस कर लेते हैं कि किसी भी रूप में शक्ति की कामना करना मूलतः बुराई है फिर चाहे वह प्रधानमंत्री बनने की हो या न्यायाधीश, गुरु या पादरी बनने की, उसी क्षण से हमारी शक्तिशाली बनने की इच्छा ही विसर्जित हो जाती है। लेकिन हम यह महसूस ही नहीं करते कि महत्त्वाकांक्षा बुरी है, शक्ति की कामना दुष्टता है ! इसके विपरीत हम तो कहते हैं कि हम इस शक्ति का अच्छे के लिए उपयोग करेंगे परन्तु यह सब फिजूल है। एक गलत साधन का उपयोग किसी सुन्दर अन्त के लिए नहीं किया जा सकता। यदि साधन दूषित है तो अन्त भी दूषित होगा। अच्छाई बुराई की विपरीत वस्तु नहीं है। जब बुराई एकदम समाप्त हो जाती है तभी अच्छाई प्रकट होती है।

अतः जब तक हम इस इच्छा का सम्पूर्ण अर्थ नहीं समझ लेते हैं, जब तक इसके परिणाम, इसकी अप्रधान निष्पत्तियाँ नहीं समझ लेते हैं तब तक इस इच्छा से मुक्ति पाने का कोई अर्थ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जहाँ तक हम समाज में रह रहे हैं वहाँ तक हम पराधीनता से कैसे मुक्त हो सकते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप जानते हैं कि समाज क्या है ? मानव-मानव के बीच का सम्बन्ध ही समाज है। क्या ऐसा नहीं है ? आप इसे उलझाइये नहीं, अनेकों पुस्तकों से प्रमाण न दें, इसपर अत्यन्त सहजता से विचार करें। आप देखेंगे कि समाज आपके, मेरे और दूसरों के बीच का सम्बन्ध है। मानवीय-सम्बन्ध समाज का निर्माण करते हैं; और हमारा वर्तमान समाज स्वामित्व के सम्बन्धों पर आधारित है। क्या नहीं है ऐसा ? हममें से अधिकांश व्यक्ति रुपये, शक्ति, सम्पत्ति, अधिकार चाहते हैं। हम किसी-न-किसी रूप में सम्मान और प्रतिष्ठा चाहते हैं और इस प्रकार हमने एक स्वामित्वमय समाज की रचना की है। जहाँ तक हम स्वामी हैं, जहाँ तक हम प्रतिष्ठा, गौरव, शक्ति आदि चाहते हैं वहाँ तक हम इस समाज से सम्बन्धित हैं। अतः इसके पराधीन हैं। लेकिन यदि कोई इनमें से कुछ भी नहीं चाहता और बड़ी सरलता एवं नम्रता के साथ वह जैसा भी है वैसा रहता है तब वह समाज से बाहर है; वह इसके विरुद्ध क्रांति करता है और इससे मुक्त हो जाता है।

दुर्भाग्यवश आज की शिक्षा का उद्देश्य है इस स्वामित्वपूर्ण समाज की मान्यताओं को स्वीकार करने और इसके ढाँचे के अनुकूल बनने में आपकी सहायता करना। आपके माता-पिता, आपके शिक्षक और आपकी पुस्तकों का सरोकार सिर्फ इसी बात से है। जहाँ तक आपको समाज की मान्यताएँ मंजूर हैं, जहाँ तक आप महत्त्वाकांक्षी हैं, अधिकार लोलुप हैं और शक्ति व प्रतिष्ठा की खोज में दूसरों को

दूषित और नष्ट किए जा रहे हों वहाँ तक आप सम्माननीय नागरिक समझे जाते हैं। समाज के अनुकूल बनने के लिए आप शिक्षित किए जाते हैं। लेकिन यह शिक्षा नहीं है। यह तो आपको समाज के ढाँचे के अनुकूल गढ़ने की प्रक्रिया मात्र है। शिक्षा का वास्तविक कार्य यह नहीं कि वह आपको लिपिक या न्यायाधीश या प्रधानमंत्री बना दे; अपितु इसका कार्य है आपको इस सड़े हुए समाज के संपूर्ण ढाँचे को समझने में और स्वतन्त्रता के साथ बढ़ने में सहयोग करना। ताकि आप इस समाज से मुक्त हो सकें और एक नूतन समाज एवं नूतन विश्व का निर्माण कर सकें। विश्व में ऐसे पुरुषों की बहुत आवश्यकता है जो पुरातन के खिलाफ विद्रोह करें—आंशिक रूप से नहीं अपितु संपूर्ण रूप से। क्यों कि केवल ऐसे ही पुरुष एक नूतन विश्व की रचना कर सकते हैं—एक ऐसा विश्व जो अधिकार, शक्ति और प्रतिष्ठा पर आधारित न हो।

मैं प्रौढ़ व्यक्तियों के मुँह से यह कहते सुनता हूँ कि, "यह कभी नहीं हो सकता है। मनुष्य का स्वभाव जैसा है वैसा ही रहेगा, आपकी ये सारी बातें व्यर्थ हैं," लेकिन हमने जवान व्यक्तियों को संस्कारमुक्त और बच्चों को बेशर्त बनाने के संबन्ध में कभी सोचा ही नहीं है। निश्चित रूप से शिक्षा दोनों कार्य करती है, उपचार भी और बचाव भी। आप बड़े छात्र पहले से ही ढल चुके हैं, सशर्त हो चुके हैं, महत्त्वाकांक्षी बन चुके हैं, आप भी अपने पिता की तरह राज्यपाल या अन्य व्यक्ति की तरह सफल होना चाहते हैं। अतः वास्तविक शिक्षा आपको केवल संस्कारमुक्त होनेमें ही सहयोग नहीं देती है अपितु वह आपको आपके दैनंदिन जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया को समझने में भी मदद करती है ताकि आप स्वतन्त्रता के साथ बढ़ सको और नूतन विश्व का निर्माण कर सको-एक ऐसा विश्व जो वर्तमान विश्व से बिलकुल हो भिन्न हो। दुर्भाग्य से न तो आपके शिक्षक न आपके माता-पिता और न ही सर्व साधारण व्यक्ति इन विषयों में दिलचस्पी लेते हैं, इसीलिए शिक्षा-शिक्षक एवं शिक्षार्थी-दोनों को शिक्षित करने की प्रक्रिया होनी चाहिए।

प्रश्नकर्त्ता : मनुष्य लड़ते क्यों हैं ?

कृष्णमूर्ति : छोटे-छोटे बच्चे क्यों लड़ते हैं ? आप कभी अपने भाई अथवा अन्य बच्चों के साथ लड़ते हैं, क्या नहीं लड़ते हैं ? आप क्यों लड़ते हैं ? आप एक खिलौने के लिए लड़ते हैं। संभवतः दूसरे लड़के ने आपका गेंद ले लिया हो या आपकी पुस्तक छीन ली हो, इसलिए आप लड़ते हैं। प्रौढ़ व्यक्ति भी इन्हीं कारणों से लड़ते हैं। फर्क इतना ही है कि उनके खिलौने सम्मान, सम्पति और शक्ति हैं। यदि आप भी शक्ति चाहें और मैं भी शक्ति चाहूँ तो हम आपस में लड़ते हैं और देश भी इसीलिए लड़ते हैं। यह एकदम आसान है, लेकिन दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और तथाकथित धर्मात्मा व्यक्ति

इसे उलझा देते हैं। जीवन का ऐश्वर्य, हमारे अस्तित्व का सौंदर्य, हमारे संघर्ष व दुख, हमारे अट्टहास व आँसू इन सबको समझने और यह सब समझते हुए भी अपने मन को एकदम सरल रखने के लिए विपुल ज्ञान और अनन्त अनुभूतियों को रखना आवश्यक है जो एक महान् कला है। हमारा मन तभी सरल रह सकता है जब हम यह जानेंगे कि प्रेम क्या है ?

प्रश्नकर्ता : ईर्ष्या क्या है ?

कृष्णमूर्ति : ईर्ष्या का अर्थ है स्वयम् से असन्तुष्ट होना और दूसरे से जलना, क्या ऐसा नहीं है ? आप जो कुछ भी हैं उससे जब असंतुष्ट होते हैं तभी ईर्ष्या का उदय होता है। आप किसी अन्य व्यक्ति के समान बनना चाहते हैं जो आपसे ज्यादा ज्ञानी हो, ज्यादा सुन्दर हो अथवा जिसके पास बड़ा मकान हो, ज्यादा शक्ति हो अथवा अधिक प्रतिष्ठा हो। आप ज्यादा गुणी बनना चाहते हैं, आप ज्यादा अच्छी तरह से ध्यान (Meditation) करना चाहते हैं, आप प्रभु को पाना चाहते हैं, आप जो कुछ हैं उससे कुछ भिन्न बनना चाहते हैं; इसलिए आप ईर्ष्या करते हैं, जलते हैं, । अपने आपको समझना अत्यन्त कठिन है क्योंकि इसके लिए आपको उन समस्त इच्छाओं से मुक्त होना होता है जो आप स्वयम् को बदलने के लिए करते हैं। अपने आपको बदलने की इच्छा करने से ईर्ष्या और जलन पैदा होती है जब कि स्वयम् को समझ लेने से आप जो कुछ हैं उसमें आमूल परिवर्तन हो जाता है। लेकिन आप देखते हैं कि आपकी संपूर्ण शिक्षा आपको यही कहती है कि आप 'जो कुछ हैं' उससे भिन्न बनने का प्रयत्न करें। जब आप ईर्ष्यालु होते हैं तो आपको कहा जाता है कि आप ईर्ष्या न करें; ईर्ष्या भयंकर वस्तु है। अतः आप ईर्ष्यालु नहीं होने के लिए संघर्ष करते हैं लेकिन यह संघर्ष स्वयम् एक ईर्ष्या है क्योंकि आप कुछ भिन्न बनना चाहते हैं।

हम देखते हैं कि एक सुन्दर गुलाब बस एक सुन्दर गुलाब रहता है, लेकिन हम मानवों को सोचने की क्षमता प्राप्त हुई है और हम गलत ढंग से सोचते हैं। यह जानने के लिए कि हम 'कैसे सोचें' एक बहुत बड़ी अंतर्दृष्टि और बोधक्षमता की आवश्यकता होती है लेकिन 'क्या सोचना' अपेक्षाकृत आसान है। हमारी वर्तमान शिक्षा हमें यह तो सिखाती है कि हम 'क्या सोचें' परन्तु यह नहीं सिखाती कि हम 'कैसे सोचें', किस प्रकार गहराई में उतरें, कैसे खोज करें ? विद्यालय का नाम तो तभी सार्थक होगा जब शिक्षक और शिक्षार्थी यह जानेंगे कि किस प्रकार सोचा जाए।

प्रश्नकर्त्ता : मैं कभी किसी वस्तु से संतुष्ट क्यों नहीं होती ?

कृष्णमूर्ति : एक छोटी-सी लड़की यह प्रश्न पूछ रही है और मैं सोचता हूँ वह निश्चित रूप से किसी के द्वारा उकसायी नहीं गई है। वह अपनी नन्हीं-सी उम्र में

यह जानना चाहती है कि वह कभी संतुष्ट क्यों नहीं हो पाती है ? आप सज्जनों का इसके संबन्ध में क्या कहना है ? यह आपकी रचना है । आपने ही इस विश्व का निर्माण किया है, जहाँ एक मासूम लड़की पूछती है कि वह किसी भी वस्तु से कभी संतुष्ट क्यों नहीं है ? आप शिक्षक कहे जाते हैं फिर भी आप इस कथन की व्यथा महसूस नहीं कर रहे हैं । आप ध्यान करते हैं परन्तु आप मन्द हैं, चिंतित हैं और अन्दर से मुर्दा है ।

मानव समाज कभी संतुष्ट क्यों नहीं होता ? उसके असंतोष का कारण क्या यह नहीं है कि वह प्रसन्नता के लिए निरंतर प्रयत्न कर रहा है ? वह सोचता है कि सतत परिवर्तन के माध्यम से वह प्रसन्नता प्राप्त कर लेगा । वह एक कार्य से दूसरे कार्य, एक सम्बन्ध से दूसरे सम्बन्ध, एक धर्म या आदर्श से दूसरे धर्म या आदर्श की ओर, यह सोचकर कि वह इस सतत परिवर्तन से आनन्द प्राप्त कर लेगा, भागा जा रहा है । अथवा वह जीवन की कोई गतिशून्य अवस्था को खोजकर उसमें स्थिर हो जाता है । सचमुच संतोष बिल्कुल ही अलग वस्तु है । इसका आगमन तभी होता है जब आप स्वयं को बदलने की इच्छा किए बगैर, बगैर तुलना और बुराई किए वैसा ही देखें जैसे कि आप वास्तव में हैं । इसका यह अर्थ नहीं कि आप जैसा भी देखें उसे स्वीकार कर लें और उसके प्रति सो जाएँ । लेकिन जब आपका मन तुलना नहीं करता है, निर्णय व मूल्यमापन नहीं करता है तब वह क्षण-क्षण वास्तविकता को बदलने की इच्छा किए बगैर देखने में समर्थ होता है । उसे देखने में ही अनंतता विद्यमान है ।

प्रश्नकर्ता : हमें पढ़ना क्यों ज़रूरी है ?

कृष्णमूर्ति : हमें पढ़ना क्यों ज़रूरी है ? आप ज़रा शांति से सुने । आप यह कभी नहीं पूछते हैं कि क्या आपके लिए खेलना भी ज़रूरी है, क्या भोजन करना, सरिता को देखना या कठोर होना भी ज़रूरी है ? जब आप किसी वस्तु को पसन्द नहीं करते हैं, तभी आप उसके खिलाफ विद्रोह करते हैं, और पूछते हैं—क्या आपको वह करना ज़रूरी है ? लेकिन पढ़ना, खेलना, हँसना, कठोर होना, भला होना, सरिता और बादल देखना यह सब आपका जीवन है और यदि आप यह नहीं जानते हैं कि आप कैसे पढ़ें, कैसे घूमें, कैसे आप पत्ती के सौन्दर्य को सराहें तो इसका अर्थ होगा आप जी ही नहीं रहे हैं । जीवन का केवल अंश ही नहीं अपितु आपको समग्र जीवन समझना होगा । इसलिए आपको पढ़ना होगा, आपको आसमान के सौन्दर्य का अवलोकन करना होगा । इसलिए आप गायें, नाचें, कविताएँ लिखें, दुखी हों और जीवन को समझें; क्योंकि यही तो हमारा जीवन है ।

प्रश्नकर्ता : यह संकोच क्या है ?

कृष्णमूर्ति : जब आप किसी अजनबी से मिलते हैं तब क्या लजाते नहीं हैं ? यह प्रश्न पूछते समय क्या आपने संकोच महसूस नहीं किया ? क्या आप तब संकोच महसूस नहीं करेंगे जब इस मंच पर बैठकर मेरी तरह चर्चा करेंगे ? जब कभी आप अचानक कोई एक सुन्दर वृक्ष, एक सुकुमार फूल अथवा अकेली चिड़िया को अपने घोंसले पर देखते हैं तब क्या आप कुछ संकोच, कुछ विचित्रता महसूस नहीं करते और स्तब्ध नहीं रह जाते ? इस प्रकार आप देखते हैं कि संकोच करना अच्छा है। परन्तु हममें से अधिकांश व्यक्तियों के लिए संकोच आत्मभान का रूप ले लेता है। जब हम किसी बड़े आदमी से मिलते हैं। उस बड़े आदमी को देखकर हमें आत्मभान होने लगता है। हम सोचने लगते हैं, "यह कितना महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है और मैं कितना तुच्छ हूँ" इसलिए हम संकोच करते हैं जिसका अर्थ है 'आत्भान होना'। लेकिन एक अन्य प्रकार का संकोच भी है जिसमें आत्मभान अनुपस्थित रहता है।



४. सुनना

आप यहाँ मुझे क्यों सुन रहे हैं ? क्या आपने कभी सोचा है कि आप व्यक्तियों को सुनते ही क्यों हैं ? और क्या अर्थ है किसी व्यक्ति को सुनने का ? आप यहाँ एक व्यक्ति के सामने बैठे हैं जो बोल रहा है। क्या आप इसलिए सुन रहे हैं कि आप इससे अपने ही विचारों की पुष्टि कर सकें, उनकी जाँच कर सकें अथवा आप खोज के लिए सुन रहे हैं ? क्या आप इसका अन्तर महसूस कर रहे हैं ? खोज के लिए सुनना उस सुनने से एकदम भिन्न है जो केवल अपने ही विचारों की पुष्टि के लिए सुना जाता है। यदि आप यहाँ केवल इसलिए सुन रहे हैं ताकि आप अपने ही विचारों को सुदृढ़ कर सकें, उन्हें उत्तेजित कर सकें, तब आपका सुनना बहुत ही कम अर्थपूर्ण होगा। परन्तु यदि आप खोज के लिए सुनते हैं तब आपका मन मुक्त होता है–किसी से बँधा हुआ नहीं। वह तब अत्यन्त तीव्र, तीक्ष्ण, जीवन्त, शोधक और उत्सुक होता है। वह खोज के लिए समर्थ होता है। अतः यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि हम क्यों सुनते हैं और क्या सुनते हैं ?

क्या आप कभी शांत बैठे हैं—एकदम शांत, बिल्कुल स्तब्ध जब आपका ध्यान किसी वस्तु विशेष पर स्थिर नहीं हो, जब आप उसे कहीं केन्द्रित करने का प्रयास नहीं कर रहे हों। तब आप प्रत्येक आवाज़ सुनते हैं, क्या नहीं सुनते हैं ? आप तब बहुत दूर की ध्वनियाँ सुनते हैं, कम दूर की ध्वनियाँ सुनते हैं, नज़दीक की ध्वनियाँ सुनते हैं और एकदम पास की ध्वनियाँ सुनते हैं। इसका अर्थ है आप सचमुच प्रत्येक ध्वनि सुन रहे हैं, आपका मन अब किसी संकुचित घेरे में सीमित नहीं है, यदि आप इस प्रकार सुन सकते हैं,–इतमीनान के साथ, विश्राम के साथ-तब आप महसूस करेंगे कि आपके अन्दर एक अद्भुत परिवर्तन घटित हो रहा है–एक ऐसा परिवर्तन जिसका प्रयत्नों और इच्छाओं की अनुपस्थिति में आगमन होता है और इस परिवर्तन में एक महान् सौन्दर्य है, गहरी अन्तर्दृष्टि है।

इसे कभी अनुभव करके देखें, अभी देखें। जैसे कि आप अभी मुझे सुन रहे हैं। आप केवल मुझे ही न सुनें बल्कि अपने आसपास की प्रत्येक वस्तु को सुनें। उन समस्त घंटियों को सुनें–गायों के गले की घण्टियाँ, दूर से आती हुई ट्रेन और सड़क पर चल रही बैलगाड़ियों की ध्वनियाँ सुनें, आप और नज़दीक आएँ और मेरी भी आवाज़ सुनें। आप महसूस करेंगे कि इस प्रकार के सुनने में एक बहुत बड़ी गहराई है; परन्तु इसके लिए आपका मन अत्यन्त शांत होना चाहिए। यदि आप सचमुच सुनना चाहते हैं तो

आपका मन अपने आप शांत हो जाता है, क्या नहीं हो जाता ? तब आपका ध्यान आपके पास में घटित होनेवाली किसी भी घटना से टूटता नहीं। चूंकि आप प्रत्येक वस्तु को गहराई से सुन रहे हैं अतः आपका मन शांत है। इस प्रकार यदि आप प्रत्येक वस्तु को इतमीनान के साथ सुन सकें, धन्यता के साथ सुन सकें तब आप महसूस करेंगे कि आपके दिल और दिमाग में एक अद्भुत संक्रमण घटित हो रहा है—एक ऐसा संक्रमण, जिसके संबन्ध में आपने कभी सोचा नहीं है जिसे किसी भी रूप में आपने उत्पन्न नहीं किया है !

विचार एक अद्भुत वस्तु है, क्या नहीं है ? अधिकांश व्यक्तियों के लिए विचारना या सोचना मन द्वारा रची गई क्रिया मात्र है और वे इन विचारों के लिए लड़ते हैं, लेकिन यदि आप सचमुच प्रत्येक वस्तु को सुनते हैं—सरिता के तटों को अपने में समेटते हुए पानी को, पक्षियों के गाने को, बच्चे के रुदन को, झिड़कती हुई माँ को कष्ट पहुँचाते हुए अपने मित्र को, दोष निकालती हुई अपनी पत्नी या अपने पति को, तब आप महसूस करेंगे कि आप शब्दों के अतीत होते जा रहे हैं, और परे होते जा रहे हैं उन शाब्दिक कथनों के प्रभावों से जो बहुधा व्यक्तियों के दिलों को घायल कर देते हैं।

और इन शाब्दिक कथनों के अतीत हो जाना अत्यन्त आवश्यक भी है। क्यों कि आखिर वह कौन सी वस्तु है जिसे हम चाहते हैं ? चाहे आप युवा हों अथवा वृद्ध हों, चाहे हम वर्षों का अनुभव रखते हों या एकदम कोरे हों, हम सभी प्रसन्न होना चाहते हैं, क्या नहीं चाहते हैं ? जब हम विद्यार्थी होते हैं तब खेलने में, अध्ययन करने में तथा अनेकों छोटी-छोटी वस्तुओं के करने में आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। जब हम बड़े हो जाते हैं तब संग्रह में, रुपयों में, सुन्दर मकान में, एक विचारशील पत्नी या पति में, एक अच्छे धंधे में इस आनन्द की खोज करते हैं। जब ये समस्त वस्तुएँ भी हमें आनन्द नहीं दे पाती तब हम किसी अन्य वस्तु की ओर मुड़ जाते हैं। तब हम कहने लगते हैं, "मुझे सब कुछ त्याग देना चाहिए, तभी मैं आनन्द को उपलब्ध कर सकूँगा" इसलिए तब हम अनासक्ति का अभ्यास करते हैं। हम अपने परिवार को, अपनी सारी संपत्ति को त्याग देते हैं और विश्व से संन्यास ले लेते हैं। अथवा हम किसी धार्मिक संप्रदाय में यह सोचकर सम्मिलित हो जाते हैं कि हम वहाँ आपस में मिलकर बन्धुत्व की बातें करते हुए, अपने नेता या गुरु या पैगंबर या किसी आदर्श का अनुकरण करते हुए, उनमें श्रद्धा करते हुए हम आनन्द की उपलब्धि कर लेंगे, परन्तु यह सब निश्चित रूप से आत्मप्रवंचना है, भ्रम है, अन्धविश्वास है।

क्या आप समझ रहे हैं कि मैं किस संबन्ध में बातें कर रहा हूँ ? जब आप

अपने बालों में कंघा करते हैं, जब आप अच्छे दिखने के लिए स्वच्छ कपड़े पहनते है तो यह सब आप अपनी प्रसन्नता के लिए करते हैं। क्या नहीं करते ? जब आप कोई परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं और अपने नाम के आगे कुछ उपाधियाँ जोड़ लेते हैं, जब आप कोई नौकरी प्राप्त करते हैं अथवा कोई मकान या संपत्ति प्राप्त करते हैं, जब आप किसी धार्मिक समाज में सम्मिलित होते हैं जिसके नेता कहते हैं कि उनके पास अदृश्य महात्माओं के संदेश हैं—इन समस्त कार्यकलापों के पीछे यही प्रसन्नता प्राप्त करने की लालसा काम कर रही है।

लेकिन आप देखते हैं कि प्रसन्नता इतनी आसानी से उपलब्ध नहीं होती। इन समस्त वस्तुओं में से किसी एक में भी प्रसन्नता नहीं है। थोड़े समय के लिए भले ही आप ऐंद्रिय सुख प्राप्त कर लें, नया संतोष प्राप्त कर लें, लेकिन आप देखेंगे कि कुछ ही समय के बाद यह सब दुख में बदल गया है। क्यों कि हमारे मन द्वारा जानी गई वस्तुओं में से किसी में भी चिरन्तन आनन्द नहीं है। चुम्बन के बाद आँसू और अट्टहास के बाद दुख और विवशता का आगमन होता है। प्रत्येक वस्तु मुर्झाती है, नष्ट होती है। अतः आप जब तक युवा है तभी से ही इस अद्भुत आनन्द की खोज प्रारम्भ करें। यह शिक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य है।

जब आप आनन्द के लिए प्रयत्न करते हैं तब आनन्द नहीं आता है और यही आनन्द का सब से बड़ा रहस्य है, कहने में यद्यपि यह काफी आसान है। मैं इसे बड़े सरल शब्दों में कह सकता हूँ, लेकिन केवल मुझे सुनकर या जो कुछ सुना है उसे दुहरा कर आप आनन्द उपलब्ध नहीं कर सकते। आनन्द बड़ा ही रहस्यमय है, वह तब आता है जब आप उसकी चाह नहीं करते हैं। जब आप आनन्द प्राप्त करने के लिए प्रयत्न नहीं करते हैं तब यह अनपेक्षित और रहस्यमय रास्तों से सरक आता है, पवित्रता और प्रेम से अंकुरित होकर। लेकिन इसके लिए एक बहुत बड़ी बोध-क्षमता की आवश्यकता है। एक ऐसा बोध जब हम किसी भी संगठन में संमिलित नहीं होते हैं और कुछ भी बनने का प्रयत्न नहीं करते। सत्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे हम किसी से प्राप्त कर सकें। सत्य का आगमन तभी होता है जब आपके दिल और दिमाग के स्तर के ये सारे प्रयत्न विसर्जित हो जाते हैं और फिर आप कुछ बनने का प्रयत्न ही नहीं करते। यह आनन्द वहाँ विद्यमान होता है, जब आपका मन एकदम शांत और प्रत्येक वस्तु के प्रति संवेदनशील होता है। आप मेरे शब्दों को भले ही सुन लें, परन्तु आनन्द की उपलब्धि के लिए आपको यह खोजना होगा कि अपने मन को किस प्रकार सारे भयों से मुक्त करें।

जहाँ तक आप किसी वस्तु अथवा किसी व्यक्ति से भयभीत हैं वहाँ तक आप

आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते। जब तक अपने माता-पिता व अपने शिक्षकों से भयभीत हैं, जब तक आप परीक्षा में असफल हो जाने, प्रगति नहीं कर पाने, गुरु अथवा सत्य के करीब नहीं पहुँच सकने, दूसरों द्वारा सम्मान या प्रशंसा नहीं प्राप्त करने से भयभीत हैं, वहाँ तक आप आनन्द को उपलब्ध नहीं कर सकते। यदि आप सचमुच किसी से भी भयभीत नहीं हैं तब आप महसूस करेंगे कि यह अद्भुत वस्तु बिना बुलाए, बिना प्रार्थना किए, बिना आशा किए अचानक प्रकट होगी जब आप प्रातः उठते होंगे, अकेले घूम रहे होंगे। फिर उसे चाहे आप प्रेम कहें, सत्य कहें या आनन्द कहें—वह अचानक प्रकट होगी।

अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप बचपन से ही सही शिक्षा प्राप्त करें। जिसे आज हम शिक्षा कहते हैं वह कतई शिक्षा नहीं है; क्योंकि इन बातों के सम्बन्ध में आपको कुछ भी नहीं बताया जाता। आपके शिक्षक तो आपको केवल परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के लिए तैयार करते हैं लेकिन वे आपको जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताते जो अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि बहुत ही कम लोग जीना जानते हैं। हममें से अधिकांश व्यक्ति तो केवल जीवित रहते हैं, हम किसी तरह जीवन ढो भर लेते हैं और इसीलिए जीवन हमारे लिए एक भयानक वस्तु बन जाता है। सचमुच जीने के लिए, तो बहुत ज्यादा प्रेम, स्तब्धता के लिए गहरी अनुभूति, अत्यन्त सरलता और विपुल अनुभव होने चाहिए। इसके लिए एक ऐसा चित्त चाहिए जो पक्षपात, अन्धविश्वास, भय और आशा से मुक्त हो और अत्यधिक स्पष्टता से सोच सकें। यह है हमारा जीवन, और यदि आप इस प्रकार जीने के लिए शिक्षित नहीं किए जाते हैं तो फिर शिक्षा का कुछ भी अर्थ नहीं होगा। आप भले ही व्यवस्थित रहना सीख लें, आपके व्यवहार अच्छे हों, आप समस्त परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लें, परन्तु ये सारी ऊपरी बातें हैं। और यदि आप इन बातों को प्रमुख महत्त्व देते हैं, जब कि सारे समाज का ढाँचा ही ढहा जा रहा है तो यह ऐसा ही होगा जैसा कोई व्यक्ति जब कि उसका पूरा मकान ही जला जा रहा हो, वह अपने नाखूनों की सफाई करने और उनको चमकाने में लगा हो। आप देखते हैं कोई भी व्यक्ति इन विषयों के सम्बन्ध में आपसे चर्चा नहीं करता। कोई आपके साथ इनकी खोज नहीं करता। जिस प्रकार गणित, इतिहास और भूगोल के अध्ययन में आप दिन-पर-दिन व्यतीत किए चले जाते हैं इसी प्रकार जीवन की इन गम्भीर समस्याओं पर चर्चा करने में भी आप काफी समय बिताएँ क्योंकि इन से आपका जीवन समृद्ध होगा।

प्रश्नकर्ता : क्या ईश्वर की पूजा वास्तविक धर्म नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : सर्वप्रथम हम यह ज्ञात कर लें कि धर्म क्या नहीं है। क्या यह सही मार्ग न होगा ? यदि हम यह समझ लें कि धर्म क्या नहीं है, तब हम सम्भवतः कुछ

और भी समझना प्रारम्भ कर देंगे। यह ऐसा ही है जैसे गन्दी खिड़की को स्वच्छ कर लेने के बाद व्यक्ति उसमें से एकदम साफ-साफ देखने लगता है। अतः हम इस मन को समझें और इससे वह सब कुछ पोंछ लें, जो वस्तुतः धर्म नहीं है। "मैं इस पर सोचूंगा" आप ऐसा न कहें; आप ज़रा इन शब्दों के साथ खेलें। सम्भवतः आप यह कर सकते हैं लेकिन अधिकांश प्रौढ़ व्यक्ति तो पहले से ही बँध जाते हैं, वे स्वयं को ऐसे ढांचे में सुदृढ़ कर लेते हैं जो धर्म नहीं है और अब वे नहीं चाहते कि कोई उन्हें क्षुब्ध करें।

अब हम यह देखें कि धर्म क्या नहीं है? क्या आपने कभी इसके सम्बन्ध में सोचा है? आपको यह बारम्बार कहा गया है कि धर्म किसे माना जाए– परमात्मा में तथा अन्य इसी प्रकार की बीसियों वस्तुओं में विश्वास करना। परन्तु किसी ने आपको यह नहीं बताया कि धर्म क्या नहीं है। अब हम इसकी खोज करें।

मुझे या अन्य किसी व्यक्ति को सुनते समय आपको जो कुछ कहा जाता है उसे स्वीकार न करें परन्तु आप सत्य की खोज के लिए सुनें। यदि आप अपने लिए एक बार यह समझ लेते हैं कि धर्म क्या नहीं है तब दुनिया की कोई पुस्तक, कोई धर्मगुरु आपको जीवन में कभी धोखा नहीं दे सकते। किसी में विश्वास कर, किसी का अनुगमन कर आप भय से कोई भ्रांत धारणा नहीं बना सकते। यह ज्ञात करने के लिए कि धर्म क्या नहीं है, आपको अपने प्रतिदिन के जीवन से प्रारम्भ करना होगा तभी आप ऊपर चढ़ सकेंगे। बहुत दूर जाने के लिए आपको नज़दीक से प्रारम्भ करना होगा और निकटतम कदम ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। अतः हम देखें कि कौनसी बातें धर्म नहीं है? क्या क्रियाएँ धर्म हैं? क्या बार-बार पूजा किए जाना धर्म है?

सच्ची शिक्षा हमें सिखाती है–'हम कैसे सोचें?'—यह नहीं कि 'क्या सोचें?' यदि आप सोचना जानते हैं, यदि आप में सोचने का सचमुच सामर्थ्य है, तब आप एक स्वतन्त्र मानव हैं—मत-मतांतरों से मुक्त, अन्धविश्वासों से मुक्त, क्रियाकाण्डों से मुक्त, तब आप यह खोज सकते हैं कि धर्म क्या है?

क्रियाएँ निःसन्देह धर्म नहीं है। क्योंकि इन क्रियाओं को करते समय आप केवल कुछ तरीकों को दुहराते हैं, जो आपको दूसरों से प्राप्त हुए हैं। इन क्रियाओं को करते समय आप भले ही कुछ सुख प्राप्त कर लें जैसे कि अन्य व्यक्ति शराब अथवा धूम्रपान से प्राप्त करते हैं; पर यह क्या धर्म है? इन विधियों को करते समय आप जो कुछ करते हैं, उसके सम्बन्ध में आप कुछ नहीं जानते। चूँकि आपके पिता, दादा करते आए हैं इसलिए आप भी करते हैं, यदि आप नहीं करेंगे तो वे आपको फटकारेंगे। यह धर्म नहीं है! क्या है?

और इस एक मन्दिर में क्या है ? एक गम्भीर प्रतिमा जिसे मानव ने अपने हाथों से अपनी कल्पनानुसार गढ़ा है। प्रतिमा किसी की प्रतीक हो सकती है, पर फिर भी यह प्रतिमा ही है। यह वास्तविक वस्तु नहीं है। कोई प्रतिमा या कोई शब्द वह वस्तु नहीं है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। दरवाज़ा शब्द सचमुच 'दरवाज़ा' नहीं है। शब्द वस्तुतः वस्तु नहीं है। हम मंदिर में किसकी पूजा करने जाते हैं ? एक प्रतिमा की जो प्रतीक मान लिया गया है, पर वह प्रतीक वास्तविक वस्तु नहीं है। फिर आप मंदिर में क्यों जाते हैं ? मैं किसी की बुराई नहीं कर रहा हूँ, यह तथ्य है। और यदि यह हकीकत है तो फिर आप इसकी क्यों चिंता करते हैं कि कौन मंदिर में जाता है—वह छूत है या अछूत, ब्राह्मण है या अन्य। आप जानते हैं इसकी चिंता कौन करते हैं ? वे प्रौढ़ व्यक्ति जिन्होंने प्रतीक को ही धर्म मान लिया है और जिसके लिए लड़ते हैं, झगड़ते हैं, हत्याएँ करते हैं लेकिन यह धर्म नहीं है। परमात्मा कभी प्रतीक नहीं हो सकता। अतः हमने देखा कि प्रतीक अथवा प्रतिमा की पूजा धर्म नहीं है।

तो क्या श्रद्धा धर्म है ? यह प्रश्न और अधिक पेचीदा है। हमने नजदीक से प्रारम्भ किया, अब हम थोड़ी-सी गहराई में उतरें। क्या श्रद्धा धर्म है ? ईसाई किसी एक मार्ग में श्रद्धा रखते हैं तो हिंदू किसी दूसरे में। मुसलमान किसी में श्रद्धा रखते हैं तो बौद्ध किसी में और ये सभी अपने आपको ऊँचे धर्मात्मा मानते हैं और इन सबके अपने-अपने मंदिर, ईश्वर, प्रतीक और विश्वास हैं। क्या यह सब धर्म हो सकता है ? आप जब किसी देवता, राम, सीता, ईश्वर या इसी प्रकार की अन्य किसी वस्तु में श्रद्धा रखते है तब क्या वह धर्म है ? आपको यह श्रद्धा कहाँ से प्राप्त होती है ? आप महज इसलिए विश्वास करते हैं, क्योंकि आपके पिता और आपके दादा विश्वास करते हैं अथवा कुछ पवित्र पुस्तकें पढ़कर, जिन्हें आप मानते हैं कि शंकर या बौद्ध ने लिखी हैं यह मान लेते हैं कि यह सब सच है। आपमें से अधिकांश, गीता जो कुछ कहती है, उसे स्वीकार कर लेते हैं, आप स्पष्टता और सरलता से इसका परीक्षण नहीं करते जैसे कि आप किसी अन्य पुस्तक का करते हैं। आप सत्य की खोज के लिए प्रयत्न नहीं करते।

तो हमने यह देखा कि क्रियाकाण्ड धर्म नहीं है। मंदिर में जाने में और विश्वास रखने मे भी धर्म नही है। श्रद्धा मनुष्यों को बाँटती है, ईसाइयों ने अपने विश्वास पाल रक्खे हैं इसलिए वे दूसरों के विश्वासों से अलग हो गए हैं और स्वयम् में भी बँटे हुए हैं। हिन्दुओं में आपस में ही दुश्मनी है क्योंकि वे ब्राह्मण और अन्य

समाजों में विभक्त हैं। अतः श्रद्धा विनाश, दुश्मनी और विभाजन को जन्म देती है। यह निश्चित धर्म नहीं है।

तब फिर धर्म क्या है ? यदि आपने खिड़की को बिलकुल स्वच्छ कर लिया अर्थात् आपने सचमुच ये समस्त क्रियाएँ बन्द कर दीं, ये सारे विश्वास त्याग दिए, किसी नेता या गुरु का अनुगमन बन्द कर दिया तब आप का मन काँच की उस खिड़की के समान हो जाता है जो एकदम स्वच्छ है, उज्वल है। आप फिर उसमें से, प्रत्येक वस्तु साफ-साफ देख सकते हैं। जब आपके मन से इन समस्त प्रतिमाओं, क्रियाओं, प्रतीकों, शब्दों, मन्त्रों, उच्चारणों और भयों की धूल एकदम स्वच्छ कर दी जाती है तब आप जो कुछ भी देखेंगे वह सत्य होगा, समयातीत होगा, चिरन्तन होगा, जिसे आप भले ही परमात्मा कह लें। लेकिन इसके लिए गहरी अन्तर्दृष्टि, बोध-क्षमता और प्रतीक्षा की आवश्यकता होती है। यह केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए सम्भव है जो सचमुच यह खोज करते हैं कि धर्म क्या है और इस खोज को अन्त तक सतत चालू रखते हैं। केवल ये ही पुरुष यह जान पाते हैं कि धर्म क्या है ? अन्य सारे व्यक्ति केवल शब्दों के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। उनके समस्त आभूषण, उनकी सारी शारीरिक साज-सज्जा, उनकी पुजाएँ, उनकी घंटियाँ सब अन्ध-विश्वास हैं। जिनका कोई अर्थ नहीं है। जब तक हमारा मन इस तथाकथित धर्म के खिलाफ क्रान्ति नहीं करता है तब तक सही धर्म की खोज सम्भव नहीं है।

५.असंतोष

क्या आप कभी एकदम शान्त और निस्पंद बैठे हैं ? आप यह करके देखें। एकदम शान्त बैठ जायें, अपनी पीठ बिल्कुल सीधी कर लें, फिर आप निरीक्षण करें कि आपका मन क्या कर रहा है ? इसे आप एक विचार से दूसरे विचार या एक उत्तेजना से दूसरी उत्तेजना की ओर छलांग भरते हुए रोकें नहीं। आप तो इस मन की उछल-कूद के प्रति सजग रहें। आप इसके सम्बन्ध में कुछ भी न करें। इसे तो आप इसी भाँति देखते रहें जिस प्रकार आप सरिता के किनारे बैठे उसकी लहरों को देखते हैं। सरिता के बहते हुए पानी में अनेकों वस्तुएँ हैं—मछलियाँ हैं, पत्तियाँ हैं, मुर्दा पशु हैं; फिर भी यह निरन्तर जीवन्त और गतिशील है। और आपका मन भी ऐसा ही है, यह निरन्तर व्याकुल है और तितली की भाँति एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर तीव्रता से भागा जा रहा है !

आप जब कोई संगीत सुनते हैं तो इसे किस प्रकार सुनते हैं ? आप उस व्यक्ति को पसन्द कर सकते हैं जो गा रहा है—इसलिए कि उसका मुँह सुन्दर है, आप उन शब्दों के अर्थ का अनुगमन कर सकते हैं; लेकिन इसके साथ ही आप उस समय संगीत की ध्वनियाँ सुनते हैं, उन ध्वनियों के बीच की शांति को भी सुनते हैं, क्या नहीं सुनते ? इसी भाँति आप एकदम शांत बैठकर देखें, इतमीनान से बैठें, अपने हाथों को, अपने पैरों की उँगलियों को हिलावें नहीं और फिर आप अपने मन को देखें। यह एक अद्भुत खेल होगा। यदि आप इसे एक खेल की भाँति करें, एक विनोद को भाँति करें तब आप महसूस करेंगे कि आपका मन बिना किसी प्रकार के प्रयत्नों के ही अपने आप शांत होता जा रहा है। तब वहाँ पर न कोई द्रष्टा है, न परीक्षक है और न कोई निर्णायक है। और इस प्रकार जब मन अपने आप इतना शांत हो जाता है, सहज स्तब्ध हो जाता है तब आप खोज सकेंगे कि आनन्दित होने का क्या अर्थ है ? क्या आप जानते हैं यह आनन्द क्या है ? यह आनन्द है-सहज हँसना, प्रत्येक वस्तु में अथवा वस्तु की एकदम अनुपस्थिति में आनन्द लेना, जीने के आनन्द को महसूस करना, मुसकुराना, बिना किसी प्रकार के भय के किसी की आँखों में झाँकना।

क्या आपने कभी किसी व्यक्ति के मुँह को वास्तव में एकदम सामने से देखा है ? क्या आपने कभी अपने अध्यापक को, अपने पिता या माता को, किसी अधिकारी को, अपने सेवक या किसी कुली को उसकी आँखों में देखा है और देखा है कि उस समय क्या घटित होता है ? हममें से अधिकांश व्यक्ति दूसरों को उनकी आँखों में देखने से डरते

हैं और दूसरे भी नहीं चाहते कि कोई उन्हें उनकी आँखों में देखें, क्योंकि वे भी डरते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने आपको प्रकट नहीं होने देना चाहता है। हम अपने में दुख, दुर्भाग्य, आशा, आकांक्षा को कई परतों में छिपाए रखते हैं और उनकी रक्षा करते रहते हैं। बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो आपकी आँखों में देख सकते हैं और मुसकुरा सकते हैं और यह बहुत आवश्यक है कि आप मुस्कुराएँ, आनन्दित हों, इसलिए कि बिना संगीत भरे हृदय के हमारा जीवन अत्यन्त उदासीन हो जाएगा। भले ही कोई मन्दिर-मन्दिर भटकता रहे, एक पति या पत्नी से दूसरे पति या पत्नी की ओर भागता रहे, चाहे किसी नये शिक्षक या गुरु की तलाश करता रहे, लेकिन इस आन्तरिक आनन्द की अनुपस्थिति में हमारा जीवन अर्थहीन हो जाता है और इस आनन्द को प्राप्त करना उतना आसान भी नहीं है क्योंकि हममेंसे अधिकांश व्यक्ति केवल छिछले तौर पर ही असन्तुष्ट हैं।

क्या आप जानते हैं कि इस असन्तोष का क्या अर्थ है? इसे समझना अत्यन्त कठिन है क्योंकि हममेंसे अधिकांश व्यक्ति इस असन्तोष को किसी अन्य दिशा में मोड़ लेते हैं और इस प्रकार इसे कुण्ठित कर देते हैं। हम तो केवल इतना चाहते हैं कि किस प्रकार अपने आपको हमेशा के लिए सुरक्षित बना लें, हमें लाभ और सम्मान प्राप्त हो सकें, हम क्षुब्ध न हों। हमारे घरों और स्कूलों में भी यही हो रहा है। शिक्षक स्वयं क्षुब्ध नहीं होना चाहते; यही कारण है कि वे अपने पुराने रास्तों पर ही चलना पसन्द करते हैं, क्योंकि ज्योंही कोई असन्तुष्ट हो जाता है, खोज प्रारम्भ कर देता है, प्रश्न करने लगता है और त्योंही वह अनिवार्यतः क्षुब्ध हो जाता है; लेकिन यह असन्तोष ही एक मात्र ऐसी वस्तु है जिसके माध्यम से हममें सहजस्फूर्ति आ पाती है।

क्या आप जानते हैं कि स्फूर्ति क्या है? प्रेरणा क्या है? जब सृजन अथवा चीज की पहल आप स्वयं करते हैं या बगैर दूसरों के बताये कोई कृत्य करते हैं तब आप जानिये कि आपमें स्फूर्ति है। आवश्यक नहीं है कि यह अति महान् ही हो अथवा विलक्षण हो—यह तो बाद की बात है; किंतु स्फूर्ति की चिनगारी वहाँ तब होती है जब आप अपने से वृक्षारोपण करें, जब आप एकदम से, सहजता से, दयालु होते हैं, जब आप किसी भारी बोझ ले जाते हुए आदमी पर मुस्कान प्रगट करते हैं, जब आप रास्ते पर पड़े पत्थर या ढेले को अलग रख देते हैं, अथवा रास्ते में किसी पालतू जानवर की पीठ थपथपा कर पुचकारते हैं। यह सब उस विलक्षण स्फूर्ति की शुरुआत है जो आपमें होनी चाहिए, यदि आप उस विलक्षण वस्तु को जानना चाहते हैं जिसे सृजन कहते हैं। सृजनता की अपनी जड़ें स्फूर्ति में रहती हैं, और यह स्फूर्ति तभी उद्घाटित होती है जहाँ गहरा असन्तोष है।

आप इस असन्तोष से भयभीत न हों। आप तो इसे तब तक खाद्य देते रहें, जब तक कि यह चिनगारी ज्वाला न बन जाए और आप प्रत्येक वस्तु से सदा के लिए असन्तुष्ट न हो जाएँ--अपने कार्य से, अपने परिवार से, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और सामर्थ्य पाने की परम्परागत वृत्तियों से ताकि आप सचमुच सोच सकें और खोज प्रारम्भ कर सकें। परन्तु आप ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं त्यों-त्यों आपके लिए इस असन्तोष की आग को संजोये रखना कठिन होता जाता है। तब आपको अपने बाल-बच्चों का पालन करना होता है, अपने कार्य की आवश्यकताओं पर विचार करना होता है, अपने पड़ोसी और अपने समाज की मान्यता का खयाल रखना होता है, इस प्रकार आपकी यह असंतोष की आग क्रमशः बुझने लगती है और जब कभी आप इस असन्तोष की आग को महसूस करते हैं तभी आप इसे कुचलने के लिए रेडियो, गुरु, पूजा, क्लब, शराब का सहारा लेते हैं अथवा औरतों या अन्य किसी वस्तु की ओर भागते हैं। परन्तु आप देखते हैं कि इस असंतोष की आग के बिना आपमें कभी उस सहज स्फूर्ति का आगमन नहीं हो सकता और इस स्फूर्ति के अभाव में सृजन सम्भव नहीं। सत्य की खोज के लिए आपमें प्रत्येक परम्परागत मान्यता के प्रति विद्रोह होना अनिवार्य है; लेकिन आपके माता-पिता के पास जितनी ज्यादा सम्पत्ति होगी और आपके शिक्षकों की नौकरी जितनी ज्यादा सुरक्षित होगी उतना ही कम विरोध वे आपको करने देंगे।

केवल कुछ चित्र रंग देना अथवा कविता रच लेना ही सृजन नहीं है। ये कार्य करना तो ठीक है परन्तु ये अपने आपमें अत्यन्त नगण्य हैं। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम पूर्णतया असन्तुष्ट रहें और यही वह असन्तोष है जहाँ से सहज स्फूर्ति का उद्गम होता है और यही आगे जाकर सृजन बन जाता है। यही एकमात्र रास्ता है सत्य की खोज का, परमात्मा की खोज का, क्योंकि सृजनावस्था ही परमात्मा है।

अतः व्यक्ति को पूर्णतया असन्तुष्ट होना अनिवार्य है बशर्ते यह असन्तोष आनंदयुक्त हो। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं? व्यक्ति पूर्णरूप से असन्तुष्ट हो—शिकायतें करते हुए नहीं अपितु आनन्द के साथ, प्रफुल्लता के साथ, प्रेम के साथ। अधिकांश असन्तुष्ट व्यक्ति बड़े डरावने और थकानेवाले होते हैं। वे हमेशा शिकायतें करते रहते हैं कि अमुक-अमुक वस्तु ठीक नहीं है; वे हमेशा अपेक्षाकृत ज़्यादा सम्मान और अच्छी परिस्थिति की चाह किया करते हैं, इसलिए कि उनका असन्तोष बहुत ही छिछला होता है। वे व्यक्ति, जो असन्तुष्ट नहीं हैं, मुर्दा हैं।

यदि आप बाल्यावस्था से ही असन्तुष्ट होते हैं और इस असन्तोष को आप अपनी बढ़ती हुई उम्र के साथ उत्साह, आनन्द और प्रेम के साथ संजोये रखते हैं तब यह असन्तोष की ज्वाला असाधारण रूप से अर्थपूर्ण हो जाएगी, क्योंकि तब यह निर्माण

करेगी, सृजन करेगी और नूतन वस्तुओं का उद्‌घाटन करेगी। इसके लिए आपको योग्य शिक्षा मिलनी चाहिए, ऐसी शिक्षा नहीं जो आपको केवल नौकरी के लिए अथवा सफलता की सीढ़ी चढ़ने के लिए तैयार करे, अपितु जो आपको सोचने में सहयोग दे, आपको अन्तराल दे—एक बड़े सोने के कमरे का अथवा ज्यादा ऊँची छत का अन्तराल नहीं अपितु आपके मन का अन्तराल—ताकि वह व्यापक हो सके और किसी विश्वास या भय से बँध न सके।

प्रश्नकर्ता : असन्तोष स्पष्ट चिन्तन में रुकावट डालता है। हम इस बाधा को कैसे दूर करें ?

कृष्णमूर्ति : मैं नहीं सोचता कि आपने-मैं जो अभी कह रहा था—उसे सुना है। सम्भवतः आपका सम्बन्ध तो केवल प्रश्न करने भर से था। आप तो इसी चिंता में थे कि आप यह प्रश्न किसी प्रकार पूछें ? आप सभी यही कर रहे हैं, पर अलग-अलग तरीकों से। प्रत्येक का मन पूर्वाग्रहों से भरा है। और यदि जो मैं कह रहा हूँ वह नहीं है जो आप सुनना चाहते हैं, तो उसे आप अलग रख देते हैं क्योंकि आपका मन अपनी ही समस्याओं से भरा पड़ा है। यदि प्रश्नकर्ता ने, जो कुछ कहा जा रहा है, उसे ठीक प्रकार से सुना होता, यदि उसने असंतोष, आनन्द अथवा सृजनात्मक होने के आंतरिक स्वभाव को वास्तव में महसूस किया होता, तो मैं सोचता हूँ कि उसने यह प्रश्न पूछा ही नहीं होता।

अब हम देखें कि क्या असन्तोष स्पष्ट चिंतन में बाधक है ? क्या आपके लिए स्पष्ट चिंतन संभव है यदि आप बदले में कुछ पाना चाहते हैं ? यदि आपका मन केवल फल से सम्बन्धित है तो क्या आप स्पष्ट चिंतन कर सकते हैं ? अथवा आप तभी स्पष्ट रूप से चिंतन कर सकते हैं जब आप बदले में कोई फल, कोई अन्त या कोई लाभ नहीं चाह रहे हों ?

और क्या तब साफ-साफ सोच पाते हैं जब आप किसी पक्षपात अथवा किसी विश्वास को लिए हुए हों अर्थात् जब आप एक हिन्दू, एक साम्यवादी या एक ईसाई की तरह से सोचते हों ? निश्चित रूप से आप तभी एकदम स्पष्ट रूप से सोच सकते हैं, जब आपका मन किसी विश्वास से बंधा हुआ न हो जैसे कि कोई बंदर खूंटे से बंधा हुआ होता है। जब आप किसी भी रूप में फल की आशा नहीं कर रहे हों, आप किन्हीं पक्षपातों से बंधे न हों तभी आप स्पष्ट चिन्तन कर पाते हैं। इस सबका अर्थ है—आप तभी एकदम स्पष्ट, सहज और सीधे सोच सकते हैं जब आपका मन किसी भी प्रकार की सुरक्षा नहीं खोज रहा है और इसलिए वह भय से मुक्त है।

हाँ, एक प्रकार का असंतोष स्पष्ट चिन्तन में बाधक है—जब आप असंतोष के माध्यम से किसी फल की इच्छा करते हैं या जब आप इस असंतोष को कुचलना चाहते हैं इसलिए कि आपका मन व्याकुलता से नफरत करता है और वह हर कीमत पर स्तब्ध और शांत रहना चाहता है। ऐसी अवस्था में स्पष्ट चिन्तन संभव नहीं है, लेकिन यदि आप प्रत्येक वस्तु से असंतुष्ट है—अपने विश्वासों से, अपने भयों से और आप किसी फल की कामना नहीं करते हैं, तब यही असंतोष आपके विचारों को किसी विशेष वस्तु या दिशा की ओर नहीं अपितु केन्द्र की ओर ले आता है; जहाँ आपकी संपूर्ण विचार-प्रक्रिया एकदम सरल, स्पष्ट एवम् सीधी हो जाती है।

चाहे युवक हों या वृद्ध, हममें से अधिकांश व्यक्ति केवल इसलिए असंतुष्ट हैं कि हम 'कुछ चीज' चाहते हैं—ज्यादा ज्ञान, ऊँची नौकरी, सुन्दर मोटर, ज्यादा वेतन आदि। इस अधिक पाने की कामना पर हमारा असंतोष आधारित है। इसलिए कि हम कुछ ज्यादा चाहते हैं, हममें से अधिकांश व्यक्ति असंतुष्ट हैं। लेकिन मैं इस प्रकार के असंतोष की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। यह 'ज्यादा' प्राप्त करने की इच्छा ही हमें स्पष्ट चिंतन से रोकती है। लेकिन यदि हम इसलिए असंतुष्ट न हों कि हम कुछ चाह रहे हैं पर उस चाह की अनुपस्थिति में असंतुष्ट हों, यदि हम अपने कार्यों से, अपनी रुपये कमाने की वृत्ति से, हमारी सामर्थ्य और सम्मान की कामना से, परम्पराओं से, हमारे पास जो है और उससे भी जो हो सकता है असंतुष्ट हों, यदि हम किसी खास वस्तु से नहीं अपितु प्रत्येक वस्तु से यदि असंतुष्ट हों, तब मैं सोचता हूँ कि हमारा ऐसा असंतोष स्पष्ट चिंतन को जन्म देगा। जब हम न स्वीकार करते हैं, न अनुकरण करते हैं, लेकिन प्रश्न करते हैं, खोज करते हैं, गहरे उतरते हैं, तब हममें एक अंतर्दृष्टि का उद्गम होता है जहाँ से आनन्द और सृजन की सृष्टि होती है।

प्रश्नकर्त्ता : आत्मज्ञान क्या है और हम इसे कैसे प्राप्त करें?

कृष्णमूर्ति : क्या आप समझ रहे हैं कि इस प्रश्न के पीछे कौन-सी मानसिक भूमिका कार्य कर रही है? यह मैं प्रश्नकर्ता के प्रति अशिष्टतावश नहीं कह रहा हूँ। हमें तो इस मानसिक अवस्था को समझना है जो पूछती है—"यह मैं कैसे प्राप्त कर सकता हूँ, इसे मैं कितने में खरीद सकता हूँ, मुझे इसे पाने के लिए क्या करना होगा? कितनी कुरबानी करनी होगी, कौन-से नियम पालने होंगे, ध्यान का कितना अभ्यास करना होगा?" यह हमारा यंत्रवत् एवं उदासीन मन है जो कहता है—"उसे प्राप्त करने के लिए मैं यह करूँगा!" तथाकथित धार्मिक व्यक्ति इसी प्रकार सोचा करते हैं; परन्तु आत्मज्ञान-प्राप्ति का मार्ग यह नहीं है। आप इसे किसी परिश्रम अथवा अभ्यास के

माध्यम से नहीं खरीद सकते। आत्मज्ञान का आगमन तो तब होता है जब आप अपने साथियों, शिक्षकों और आपके आसपास के व्यक्तियों के साथ के आपके संबंधों में स्वयं का निरीक्षण करते हैं। यह आत्मज्ञान तब प्रकट होता है जब आप दूसरे का आचरण, उसके हावभाव, उसका पहनावा, उसकी बातचीत का तरीका, उसका तिरस्कार या उसकी चापलूसी देखते हैं और देखते हैं इन सबके प्रति होनेवाली स्वयम् की प्रतिक्रियाओं को। यह तब प्रकट होता है जब आप अपने अन्दर और अपने बाहर की प्रत्येक वस्तु देखते हैं और आप स्वयम् को इस प्रकार देखते हैं जैसे कि आप दर्पण में अपना मुँह देख रहे हों। जब आप दर्पण में देखते हैं तब उसमें आप अपने वास्तविक रूप को देखते हैं; क्या नहीं देखते हैं? आप यह इच्छा कर सकते हैं कि आपका सिर थोड़े अलग आकार का होता! इसपर थोड़े ज्यादा बाल होते! आपका चेहरा थोड़ा कम कुरूप होता! परन्तु दर्पण में तो आपका वही रूप साफ-साफ प्रतिबिंबित हो रहा है जो आप वास्तव में हैं; आप उसे एक ओर हटाकर यह नहीं कह सकते कि "अरे, मैं कितना सुन्दर हूँ!"

अब यदि आप स्वयं को सही-सही रूप में इन संबंधों के दर्पण में देखें जैसे कि आप एक साधारण दर्पण में देखते हैं तब इस आत्मज्ञान का कोई अन्त न होगा। यह तो एक अथाह सागर में प्रवेश करने जैसा है जिसका कोई अन्त न हो। हममें से अधिकांश व्यक्ति कहीं पहुँचना चाहते हैं। हम यह कहने योग्य बनना चाहते हैं—"मैंने आत्मज्ञान उपलब्ध कर लिया है, मैं आनन्दमय हूँ" पर यह सब इस प्रकार का कतई कुछ नहीं है। यदि आप अपने आपको बिना निंदा और बिना तुलना किये, बिना अधिक सुन्दर व अधिक गुणी बनने की कामना किए, सही-सही रूप में देखते हैं, यदि अपने आपको हूबहू देखते हैं और इसके साथ आगे बढ़ते हैं, तब आप महसूस करेंगे कि उस असीम तक पहुँचना संभव है, तब आपकी यात्रा का कोई अन्त न होगा, और यही तो आत्मज्ञान का रहस्य है, यही तो सौन्दर्य है!

प्रश्नकर्त्ता : आत्मा क्या है?

कृष्णमूर्ति : हमारी संस्कृति और सभ्यता ने, जो अनगिनत मानवों की सामूहिक अपेक्षा और आकांक्षा है, इस 'आत्मा' शब्द का आविष्कार किया है। आप भारतीय सभ्यता को देखिये। क्या यह कोटि-कोटि मानवों की सामूहिक अपेक्षा-आकांक्षा का परिणाम नहीं है? विश्व की प्रत्येक सभ्यता इसी सामूहिक इच्छा का परिणाम है और इसी सामूहिक इच्छा ने कहा—इस भौतिक शरीर के परे, जो मरता है, नष्ट होता है, कुछ-न-कुछ ऐसी वस्तु जरूर होनी चाहिए जो अधिक महान है, व्यापक है, अक्षय

है, अमर है। इस प्रकार आत्मा के विचारों की स्थापना हुई। यदा-कदा इने-गिने व्यक्तियों ने अपने लिए इस अद्भुत 'अमरत्व' की एक ऐसी अवस्था की खोज की होगी जहाँ मृत्यु नहीं है। तब समस्त उदासीन मनों ने कह दिया होगा, "हाँ, वही सत्य है, वह ठीक कहता है" और चूँकि वे अमरता चाहते थे, अतः उन्होंने इस शब्द को पकड़ लिया।

आप भी यह जानना चाहते हैं कि क्या इस भौतिक अस्तित्व के परे कुछ महान जैसी वस्तु है? क्या नहीं चाहते? वर्षानुवर्ष ऑफिस का चक्कर लगाते हुए, सतत उस कार्य को करते हुए जिसमें आपकी कोई दिलचस्पी नहीं है, झगड़ते हुए, बच्चे पैदा करते हुए, पड़ोसी से गपशप करते हुए, व्यर्थ की बकवास करते हुए आप यह जानना चाहते हैं कि क्या कोई ऐसी वस्तु भी है जो इन सबसे ऊपर हो? इस 'आत्मा' शब्द में ही एक ऐसी अवस्था का समावेश है जो अक्षय है, अनन्त है, क्या नहीं है? लेकिन आप अपने लिए स्वयम् यह कभी ज्ञात नहीं करते कि क्या वास्तव में इस प्रकार की कोई अवस्था है भी या नहीं? आप यह नहीं कहते हैं कि मेरा इस बात से कोई वास्ता नहीं है कि ईसा, शंकराचार्य या किसी अन्य व्यक्ति ने अथवा हमारी सभ्यता और परंपरा ने इसके संबंध में क्या कहा है। मैं स्वयम् अपने लिए यह खोज करूँगा कि क्या सचमुच कोई ऐसी वस्तु है जो समय के अतीत हो। सभ्यता और सामूहिक इच्छा ने जो कुछ सूत्र रूप में कहा है उसके खिलाफ बगावत करना तो दूर रहा, आप उसे स्वीकार भी कर लेते हैं और कहते हैं, "हाँ, आत्मा है"! आप उन सूत्रों का कुछ अर्थ निकालते हैं और दूसरा कुछ और; तब आप अलग-अलग हो जाते हैं और इन परस्पर-विरोधी विश्वासों के कारण आपसमें आप शत्रु बन जाते हैं।

जो व्यक्ति सचमुच उस समयातीत अवस्था की खोज करना चाहते हैं, उन्हें अपने आपको सभ्यता और सामूहिक इच्छा से मुक्त करना होगा। उन्हें अकेले खड़ा होना होगा। शिक्षा का यह महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह आपको अकेला खड़ा होना सिखाए ताकि आप सामूहिक या किसी की व्यक्तिगत इच्छा से न बंध सकें, तभी आप अपने लिए सत्य की खोज करने में समर्थ हो सकेंगे।

आप किसी के आश्रित न रहें। मैं या अन्य कोई व्यक्ति आपको उस समयातीत अवस्था के सम्बन्ध में भले ही कुछ कह दे परन्तु आपके लिए इसका क्या अर्थ है? आप यदि भूखे हैं तो आप भोजन चाहते हैं न कि केवल शब्दों से तृप्त होना। आपके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि आप अपने लिए खोजें। आप देखते हैं कि आपके आसपास की प्रत्येक वस्तु का क्षय हो रहा है, नाश हो रहा है। यह तथाकथित सभ्यता अब और अधिक समय तक सामूहिक इच्छा से नहीं बांधी जा सकती। यह

छिन्न-भिन्न होती जा रही है। जीवन क्षण-क्षण आपको ललकार रहा है और यदि आप इसका उत्तर अपनी बंधी बंधाई आदतों के घेरों में से देते हैं, अपनी मान्यताओं के अनुसार देते हैं तो इसका कुछ भी अर्थ न होगा। आप स्वयम् यह खोज कर सकते हैं कि सचमुच यह समयातीत अवस्था कोई है या नहीं—एक ऐसी अवस्था जहाँ कम या अधिक के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। तब तो आप सिर्फ यही कहते हैं, "मुझे स्वीकार नहीं करना है, मुझे तो खोज करना है, अन्वेषण करना है" जिसका अर्थ है आप अकेले खड़े होने से भयभीत नहीं हैं।



६. समग्रता

हम में से अधिकांश व्यक्ति जीवन के किसी छोटे से हिस्से से बँधे रहते हैं और सोचते हैं कि इसी के माध्यम से वे समग्रता की खोज कर लेंगे। हम अपने कमरे में बैठे-बैठे सरिता की पूरी लम्बाई और चौड़ाई माप लेना चाहते हैं और महसूस कर लेना चाहते हैं उसके दोनों तटों पर फैले हुए हरे-भरे मैदानों के ऐश्वर्य को ! हम एक छोटे-से कमरे में रहते हैं और एक छोटे-से परदे पर चित्र बनाते हैं और समझ बैठते हैं कि हमने जीवन को जान लिया है, मृत्यु के अर्थ को समझ लिया है; पर वास्तव में ऐसा नहीं है। जीवन को समझने के लिए हमें बाहर आना होगा। परन्तु इस सँकरी खिड़कीवाले कमरे को छोड़कर बाहर आना और प्रत्येक वस्तु को अनुमान, निंदा, पसंदगी या नापसंदगी रहित होकर उसके वास्तविक रूप में देखना अत्यन्त कठिन है। हममें से अधिकांश व्यक्तियों की धारणा है कि वे खण्ड के माध्यम से अखण्डता उपलब्ध कर लेंगे। हम एक ही तीली के सहारे पूरे चक्के को समझ लेना चाहते हैं; परन्तु एक तीली सम्पूर्ण चक्का नहीं बनाती ! क्या बनाती है ? इसके लिए तो बहुत सी तीलियाँ चाहिए, एक धुरी और एक परिधि भी चाहिए, तब जाकर पूरा पहिया बनता है। हमें जिस तरह चक्के को पूर्णतया समझने के लिए उसे पूरा देखना होगा, उसी प्रकार यदि हम जीवन को सही अर्थों में समझना चाहते हैं तो इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझना होगा।

मैं आशा करता हूँ कि आप यह सब समझ रहे होंगे। क्योंकि शिक्षा का कार्य आपको अपने अखण्ड जीवन को समझने में मदद करना है; केवल आजीविका के लिए तैयार करना अथवा आपकी शादी, आपके बच्चे, आपका बीमा, आपकी पूजाएँ, आपके छोटे-छोटे देवता आदि के परम्परागत विषयों से आपको परिचित करा देना मात्र नहीं। सही प्रकार की शिक्षा के लिए एक बहुत बड़ी बुद्धिमानी और अंतर्दृष्टि की आवश्यकता है और इसीलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षक जीवन की इस अखण्ड प्रक्रिया को समझने के लिए अपने आपको शिक्षित करें न कि वे केवल आपको किसी पुरानी या नई शैली के अनुसार पढ़ा मात्र दें।

जीवन एक अद्भुत रहस्य है। यह वह रहस्य नहीं जिसे आप पुस्तकों में पा सकते हैं या जिसके सम्बन्ध में व्यक्ति बातें करते हैं। परन्तु यह वह रहस्य है जिसका उद्घाटन स्वयम् ही करना होता है और इसीलिए यह अत्यन्त गम्भीर विषय है कि आप जीवन के इस छोटे, संकरे और क्षुद्र रूप को समझें और उससे बाहर जाएँ !

यदि आप युवावस्था से ही इस जीवन को समझना प्रारम्भ नहीं करते हैं तो आपका जीवन अन्दर ही अन्दर भयानक बन जाएगा। आप अन्दर ही अन्दर रुग्ण और रिक्त बनते जाएँगे, भले ही आप बाहर से धनी हो जाएँ, कीमती कार की सवारी कर लें और मिथ्याभिमानी हो जाएँ। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप अपना छोटा-सा कमरा त्यागें और अनन्त आसमान के दर्शन करें। यह तो आप तभी कर सकेंगे जब आपके हृदय में प्रेम हो–भौतिक या दिव्य प्रेम नहीं, अपितु केवल प्रेम; जिसका अर्थ है–पक्षियों, वृक्षों, फूलों को प्यार करना, शिक्षकों और माता-पिता से प्रेम करना और इससे भी आगे समस्त मानव जाति से प्रेम करना!

यदि आप अभी से ही अपने लिए इस प्रेम की खोज नहीं करते तो यह आपके जीवन की एक महान् दुर्घटना होगी! यदि आप अभी से ही प्रेम को नहीं जानते तो फिर आप इसे कभी नहीं जान सकेंगे। क्योंकि ज्यों-ज्यों आप बड़े होते जाएँगे त्यों-त्यों प्रेम आपके लिए अत्यन्त कुरूप होता जाएगा और यह एक संपत्ति या व्यावसायिक वस्तु के रूप में रह जाएगा जिसे खरीदा या बेचा जा सकता है। लेकिन यदि अभी से ही आप अपने हृदय में प्रेम का उद्घाटन करने लगते हैं, यदि आप अपने लगाए हुए वृक्ष से प्रेम करते हैं, उस पशु को थपथपाते हैं जो भटक गया हो, तो आप बड़े होने पर अपने छोटी खिड़कीवाले छोटे से कमरे में नहीं रहेंगे, आप इसे छोड़ देंगे और समग्र जीवन से प्रेम करने लगेंगे।

प्रेम तो यथार्थ है। यह भावुकता अथवा ऐसी वस्तु नहीं जिसके लिए चिल्लाया जाए, यह कोई भावना नहीं है। प्रेम में भावनात्मकता की एकदम अनुपस्थिति होती है। यह एक अत्यन्त गम्भीर और महत्त्वपूर्ण विषय है जिसे आप बचपन से ही समझें। सम्भवतः आपके शिक्षक, आपके माता-पिता इस प्रेम को नहीं जानते हैं। इसीलिए उन्होंने एक ऐसे भयानक समाज का निर्माण किया है जिसमें निरन्तर आपस में युद्ध चल रहे हैं और जो दूसरे समाजों के खिलाफ भी लड़ रहा है। उनके सारे धर्म, उनके सारे दर्शन और उनके सारे आदर्श मिथ्या हैं, क्योंकि वे प्रेम से रहित हैं। वे केवल जीवन का एक खण्ड देख रहे हैं, वे अपनी छोटी-सी खिड़की में से देख रहे हैं जहाँ से भले ही वे सुहावना और विस्तृत दृश्य देख लें लेकिन यह समग्र जीवन की व्यापकता तो नहीं है। प्रेम की गहरी अनुभूति की अनुपस्थिति में जीवन की समग्रता के दर्शन आप नहीं कर सकते, इसलिए आप सदैव दुखी बने रहेंगे और जीवन के अन्त में आपको कुछ जली हुई राख और खाली शब्दों के अलावा कुछ भी हासिल न होगा!

प्रश्नकर्त्ता : हम प्रसिद्धि क्यों चाहते हैं?

कृष्णमूर्ति : आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि आप प्रसिद्ध होना चाहते हैं?

मैं इसका कारण बता सकता हूँ, पर क्या अन्त में आप प्रसिद्ध होने की चाह छोड़ देंगे ? आप इसलिए प्रसिद्ध होना चाहते हैं कि आपके चारों ओर समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्रसिद्ध होना चाहता है। आपके माता-पिता, आपके शिक्षक, आपके गुरु, आपके योगी, सभी प्रसिद्ध होना चाहते हैं, सभी सुविख्यात होना चाहते हैं। अतः आप भी यही चाहते हैं।

हम मिलकर इसपर विचार करें कि मनुष्य क्यों प्रसिद्ध होना चाहता है। सर्व-प्रथम बात तो यह है कि प्रसिद्ध होना एक फायदे की बात है और इससे आपको बड़ा सुख प्राप्त होता है। क्या नहीं होता ? यदि आप संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हो जाएँ तब आप स्वयं को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति समझने लगते हैं और इससे आप में अमरता की भावना पैदा होती है। आप चाहते हैं कि आप प्रसिद्ध बने और दुनिया भर के व्यक्ति आपके संबंध में बातें करें क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि आप अपने आपमें कुछ नहीं हैं। आपके अन्तर्जगत में कोई समृद्धि नहीं है, वहाँ कुछ भी तो नहीं है। अतः आप इस बाहरी जगत में प्रसिद्धि चाहते हैं। यदि आपमें यह आन्तरिक संपन्नता है तो आपके लिए इस बात का महत्त्व ही नहीं रह जाता है कि आप प्रसिद्ध हैं या नहीं।

बाहरी जगत में धनी और प्रसिद्ध होने की अपेक्षा यह आन्तरिक समृद्धि उपलब्ध करना बहुत ही ज्यादा कठिन है। इसके लिए अत्यधिक सावधानी और गहरी सजगता की आवश्यकता होती है। यदि आपमें थोड़ी चतुराई हो और आप शोषण करना जानते हों तो आप प्रसिद्ध हो सकते हैं, पर यह आंतरिक संपन्नता इस प्रकार नहीं उपलब्ध हो सकती। आन्तरिक सम्पन्नता के लिए मन को समझना होता है और प्रसिद्धि की इच्छा आदि छिछली वस्तुओं को एक ओर कर देना होता है। आन्तरिक संपन्नता का अर्थ है अकेले खड़ा रहना। लेकिन जो व्यक्ति प्रसिद्धि चाहता है वह अकेले खड़े होने का साहस ही नहीं कर सकता, क्योंकि वह तो व्यक्तियों की चापलूसी और उनके अच्छे मत पर अवलंबित रहता है।

प्रश्नकर्त्ता : जब आप युवा थे तब आपने एक पुस्तक लिखी थी जिसमें आपने कहा था, "ये शब्द मेरे नहीं, मेरे गुरु के हैं"। फिर अब आप हमें क्यों स्वयं के लिए सोचने को बाध्य करते हैं ? और आपके गुरू कौन थे ?

कृष्णमूर्ति : किसी भी विचार से न बंधना, जीवन की सबसे कठिन साधना है, क्योंकि बंधने का अर्थ है स्थिर होना। यदि आपके पास अहिंसा का आदर्श है तो आप इस आदर्श को लेकर स्थिर होने का प्रयत्न करते हैं। अब प्रश्नकर्त्ता यह पूछ रहे हैं, "आप हमें स्वयं के लिए सोचने को कहते हैं और यह, आपने जो बचपन में कहा था, उसके विपरीत है। आप अपने मत पर स्थिर क्यों नहीं हैं ?"

स्थिर रहने के क्या अर्थ हैं ? यह सचमुच बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। स्थिर रहने का अर्थ है एक ऐसा मन रखना जो अपरिवर्तनशील है और जो किसी निश्चित तरीके से ही सोचता है—इसका अर्थ है कि हम परस्पर-विरोधी बातें न करें, आज कुछ करें और कल इसी के विपरीत। अब हम यह खोजने का प्रयत्न करेंगे कि इस स्थिर मन का क्या अर्थ है ? वह मन, जो यह कहता है—"मैंने कुछ बनने की कसम खाली है और मैं अब आजीवन यही बनने का प्रयत्न करूँगा" यही स्थिरता है। परन्तु यह अत्यन्त जड़ मन है क्योंकि यह एक निर्णय पर पहुँच गया है और उसके अनुरूप ही जीना चाहता हैं। यह उस मनुष्य की तरह है जो अपने चारों ओर एक दीवार खड़ी कर उसमें अपना जीवन बिताए जा रहा है।

यह अत्यंत पेचीदी समस्या है। आप समझते होंगे कि मैं इसे आवश्यकता से अधिक सरल बना रहा हूँ, पर मैं ऐसा नहीं सोचता हूँ। जब हमारा मन इस प्रकार स्थिर हो जाता है तब वह यांत्रिक बन जाता है और मुक्त सृजन की जीवन्तता, उसको आभा और उसका सौन्दर्य खो देता है। वह एक निश्चित घेरे में कार्य करने लगता है। यह प्रश्न का एक पहलू हुआ।

दूसरा पहलू है, गुरु कौन है ? आप इसके वास्तविक अर्थ को नहीं जानते। यह अत्यन्त गम्भीर है। आपने सुना है न, कहा गया है कि जब मैं बालक था, तब मैंने एक पुस्तक लिखी और उस सज्जन ने उसमें से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं जिनका अर्थ है "मेरे गुरु ने मुझे यह लिखने में सहयोग दिया"। ब्रह्मवादियों की भाँति ही कुछ संप्रदाय ऐसे हैं जिनकी यह मान्यता है कि बहुत दूर एकान्त हिमालय में गुरु निवास करते हैं, जो विश्व को रास्ता दिखाते हैं और उसकी सहायता करते हैं। और वह सज्जन जानना चाहते हैं कि वह गुरु कौन है ? आप बड़ी सावधानी से सुनें क्योंकि यह आप पर भी घटित होता है।

क्या इस बात का बड़ा भारी महत्त्व है कि गुरु कौन है ? असली महत्त्व तो है जीवन का—गुरु, मास्टर, नेता, शिक्षक का नहीं जो जीवन की आपके लिये व्याख्या करते हैं। आपको, केवल आपको ही तो अपना जीवन समझना है ! आप ही तो दुखी हो रहे हैं ! आप ही तो दुर्गति में हैं ! जन्म, मृत्यु, दुख का अर्थ भी तो आपको ही समझना है ! दूसरा कोई भी आपको यह नहीं बता सकता। दूसरे तो केवल व्याख्या कर सकते हैं पर उनकी व्याख्याएँ एकदम भ्रामक, एकदम असत्य हो सकती हैं !

अतः संदेहात्मक होना अच्छा है क्यों कि इससे आपको अपने लिए यह जानने का मौका तो मिलेगा कि आपके लिए सचमुच गुरु की आवश्यकता भी है या नहीं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि आप अपने लिए स्वयम् प्रकाश बनें। स्वयम्

अपने गुरु और स्वयम् अपने शिष्य बनें। आप गुरु भी बनें और शिष्य भी। गुरु का आगमन तो तभी होता है जब आप स्वयम् जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझना, उसका अनुसंधान करना, उसकी खोज करना बन्द कर देते हैं और ऐसे गुरु का कोई मूल्य नहीं है क्यों कि तब आप स्वयम् निर्जीव हो जाते हैं, अतः आपके गुरु भी निर्जीव हैं।

प्रश्नकर्त्ता : मनुष्य घमण्डी क्यों है ?

कृष्णमूर्ति : जब आप सुन्दर लिखते हैं, जब खेल में विजयी होते हैं अथवा कोई परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं तब क्या आप गर्व नहीं करते ? क्या आपने कभी कोई कविता लिखी है या कोई चित्र बनाया है और उसे क्या अपने मित्र को दिखाया है ? यदि आपका मित्र कहता है--"यह बहुत ही अद्‌भुत कविता है या यह सुन्दर चित्र है", तब क्या आप खुश नहीं होते ? आपने कोई सुन्दर वस्तु बनाई और किसी ने उसकी बहुत सराहना की तब आप सुख का अनुभव करते हैं और यह ठीक भी है, लेकिन आप दूसरी बार जब फिर चित्र बनाते हैं अथवा कविता लिखते हैं अथवा कमरा साफ करते हैं तो उस समय भी आप चाहते हैं कि कोई व्यक्ति आए और यह कहे कि आप कितने अच्छे छात्र हैं। यदि उस समय कोई नहीं आता है तो फिर आप न कविता लिखते हैं न चित्र बनाते हैं और न कमरा ही साफ करते हैं। इस प्रकार आप दूसरों की प्रशंसा से प्राप्त होनेवाले सुख के अधीन हो जाते हैं, यह सहज होता रहता है। इसका परिणाम क्या होता है ? ज्यों-ज्यों आप बड़े होते जाते हैं, त्यों-त्यों आप वे ही कार्य करते हैं जिन्हें अनेकों व्यक्ति चाहते हों। आप भले ही कहें, "मैं यह गुरु के लिए कर रहा हूँ, इसे मैं देश के लिए कर रहा हूँ, यह मैं मानव समाज के लिए कर रहा हूँ, ईश्वर के लिए कर रहा हूँ; पर वास्तव में आप यह सब केवल प्रसिद्धि के लिए कर रहे हैं जहाँ से गर्व उत्पन्न होता है और जब आप कोई भी कार्य इस प्रकार करते हैं तब उसके करने का कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता। मुझे पता नहीं कि आप यह सब समझ भी रहे हैं ?

गर्व या इसी तरह की किसी भी वस्तु को समझने के लिए आप में आरपार सोचने की सामर्थ्य होनी चाहिए। आपको देखना होगा कि इसका आरम्भ कैसे होता है, साथ में इसके कौन-कौन से दुष्परिणाम होते हैं; आदि। इसे आप पूर्णता से समझें जिसका अर्थ है कि आप इसमें इतनी दिलचस्पी लें कि आपका मन इसका अन्त तक पीछा करता रहे। आधे रास्ते से ही आप उसे छोड़ न दें। जब आप सचमुच खेल में दिलचस्पी लेते हैं तो आप इसे अन्त तक खेलते हैं, यह नहीं कि आप बीच में ही

अचानक रुक जाएँ और घर चले जाएँ। परन्तु आपने अपने मन को इस प्रकार सोचने के लिए कभी उपयोग ही नहीं किया है और शिक्षा का यह कार्य है कि वह आपको, जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को, समझने में सहायता करे, केवल कुछ विषयों के अध्ययन मात्र में नहीं।

प्रश्नकर्ता : हमें बचपन से ही कहा जाता है कि सुन्दर क्या है और कुरूप क्या है। और इसीलिए हम अपने पूरे जीवनभर यह दुहराते रहते हैं, "यह सुन्दर है, यह कुरूप है"। कोई यह कैसे जाने कि वास्तव में सौन्दर्य और कुरूपता क्या है ?

कृष्णमूर्ति : मान लीजिए, आप किसी मेहराब को सुन्दर कहते हैं और कोई दूसरा उसे कुरूप कहता है। अब कौन-सी बात महत्त्वपूर्ण है ? इस बात को लेकर कि वस्तु सुन्दर है या कुरूप, आपस में लड़ना अच्छा है या सौन्दर्य और कुरूपता—इन दोनों के प्रति संवेदनशील होना ? हमारे जीवन में भी तो गन्दगी है, मलीनता है, अपमान है, दुख है, आँसू है और उसी में सुख है, हँसी है और सूर्य के प्रकाश में खिलनेवाले फूल का सौन्दर्य। महत्त्व का विषय तो यह है कि हम निश्चित रूप से प्रत्येक वस्तु के प्रति संवेदनशील हों, हम यह निर्णय न करें कि क्या सुन्दर है, क्या कुरूप है। ऐसा कर हम अपने आपको सिद्धान्तों में बाँध लेते हैं। यदि मैं यह कहूँ, "मैं सौन्दर्य की साधना कर रहा हूँ और कुरूपता का तिरस्कार" तब क्या घटित होगा। यह सौन्दर्य की साधना ही असंवेदनशीलता को जन्म देगी। यह ठीक वैसा ही होगा जैसे कोई व्यक्ति अपनी दाहिनी भुजा को तो अत्यधिक मजबूत बनाए और बाईं को सूख जाने दे। अत: आपको सौन्दर्य और कुरूपता दोनों के प्रति जागरूक होना होगा। आप को नृत्य करती हुई पत्तियाँ, पुल के नीचे प्रवाहित होता हुआ पानी अथवा किसी संध्या के सौन्दर्य की अनुभूति करनी होगी और साथ-ही-साथ आप को गली के भिखारी के प्रति सजग होना होगा, उस गरीब स्त्री को भी देखना होगा जो भारी बोझ के साथ संघर्ष कर रही है। आपको उसकी सहायता करनी होगी, उसके बोझ को हाथ लगाना होगा। यह सब आवश्यक है, तभी आपमें प्रत्येक वस्तु के प्रति इस संवेदन-क्षमता का विकास हो सकेगा ताकि आप कार्य कर सकें, सहायता कर सकें और तब आप न तो तिरस्कार करेंगे और न निन्दा ही।

प्रश्नकर्त्ता : मुझे क्षमा करें, आपने यह तो बताया ही नहीं कि आपके गुरु कौन थे ?

कृष्णमूर्ति : क्या सचमुच ही इस विषय का इतना ज्यादा महत्त्व है ? यदि हाँ, तो आप पुस्तकें जला दें, उन्हें फेंक दें। जब आप इतनी क्षुद्र वस्तु को कि 'कौन गुरु

है' इतना महत्त्व दे रहे हैं, तब तो मुझे लगता है कि आप सम्पूर्ण जीवन के अस्तित्व को ही तुच्छ बना रहे हैं ! आप देखते हैं कि हम हमेशा यह जानना चाहते हैं कि गुरु कौन है, विद्वान कौन है, वह कलाकार कौन है जिसने यह चित्र बनाया है। हम कभी भी चित्र के मूलतत्व को, यह जाने बिना कि इसका चित्रकार कौन है, अपने लिए नहीं खोजना चाहते ! आप जब कविता के रचयिता को जान लेते हैं तभी उस कविता को सुन्दर कहते हैं। यह असभ्यता है, केवल अपने मत की पुनरावृत्ति है, आप उस वस्तु की वास्तविकता के प्रति अपनी आन्तरिक बोधक्षमता ही खो बैठते हैं। यदि आप यह देखते हैं कि चित्र सुन्दर है और आप इसके प्रति अत्यंत अनुगृहीत हो जाते हैं तब क्या यह विषय आपके लिए महत्त्वपूर्ण रह जाता है कि इसे किसने बनाया। यदि आप चित्र के मूलतत्व को सचमुच खोजना चाहते है, उसके सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं तब वह चित्र स्वयम् अपना अर्थ प्रकट कर देता है।

७. महत्त्वाकांक्षा

हम यह चर्चा कर रहे थे कि प्रेम का होना कितना आवश्यक है ? हमने यह भी देखा कि इसे कोई न तो उपार्जित कर सकता है, न खरीद ही सकता है ; फिर भी इसके अभाव में हमारी उन समस्त योजनाओं का कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता है जो हम एक ऐसी परिपूर्ण सामाजिक रचना के लिए बनाते हैं– जहाँ न शोषण हो, न भेदभाव हो ! और मैं समझता हूँ कि जब हम तरुण हैं तभी हमें यह समझ लेना आवश्यक होगा ।

इस विश्व में कोई चाहे कहीं भी क्यों न जाए वह देखेगा कि सर्वत्र मानव-समाज संघर्ष में है । सदा से ही एक ओर शक्तिशाली धनी और समृद्ध व्यक्ति रहे हैं और दूसरी ओर मजदूर । प्रत्येक व्यक्ति द्वेषवश स्पर्धा कर रहा है । प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे ऊँची प्रतिष्ठा, अधिक वेतन, ज़्यादा शक्ति और सम्मान प्राप्त हो, विश्व की यही स्थिति है और इसीलिए निरन्तर आन्तरिक और बाह्य संघर्ष चल रहे हैं ।

अब यदि हम इस सम्पूर्ण सामाज़िक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाना चाहते है तब सर्वप्रथम हमें इस शक्ति संग्रह की प्रवृत्ति को समझना होगा । हममें से अधिकांश व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में शक्ति चाहते हैं । हम सोचते हैं कि हम सम्पत्ति और शक्ति के माध्यम से दूर-दूर यात्रा करेंगे और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करेंगे ताकि हम प्रसिद्धि पा सकें, अथवा हम एकदम निर्दोष समाज-रचना के स्वप्न देखते हैं । हम सोचते हैं कि इस शक्ति के माध्यम से हम अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त कर सकेंगे । लेकिन यह शक्ति की इच्छा मात्र भयावह है, विनाशकारी है, फिर चाहे यह इच्छा अपने लिए की गई हो अथवा किसी देश या आदर्श के लिए; क्योंकि यह अनिवार्यतः विरोधी शक्तियों का निर्माण करती है जिनसे विश्व में सदैव संघर्ष चलता है ।

तब क्या यह उचित नहीं कि शिक्षा आपको एक ऐसे विश्व-निर्माण की आत्यंतिक आवश्यकता को महसूस करने में सहयोग दे जहाँ न तो आन्तरिक संघर्ष हो और न बाह्य, जहाँ आपका, अपने पड़ोसी अथवा किसी समुदाय के साथ संघर्ष ही न रहे इसलिए कि तब महत्त्वाकांक्षा की दौड़ ही, जो प्रतिष्ठा और सामर्थ्य की अभिलाषा मात्र है, एकदम विलीन हो जाए ? क्या ऐसे समाज का निर्माण करना सम्भव है, जहाँ आन्तरिक और बाह्य संघर्ष ही न हो ? समाज आखिर क्या है ? यह आपके और

मेरे बीच के सम्बन्धों का ही दूसरा नाम है और हमारे सम्बन्ध ही यदि महत्त्वाकांक्षा पर आधारित हो, हममें से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से अधिक शक्तिशाली बनने में लगा हो, तो यह निश्चित है कि हम संघर्षरत रहेंगे। क्या हम सभी अपने आपको इस प्रकार शिक्षित नहीं कर सकते कि हम स्पर्धा ही न करें, अपनी किसी से तुलना ही न करें, किसी भी प्रकार की प्रतिष्ठा ही न चाहें? एक शब्द में यदि कहूँ—हम बिलकुल ही महत्त्वाकांक्षी न हों!

जब आप विद्यालय से बाहर अपने माता-पिता के साथ घूमते हैं, जब आप समाचार-पत्र पढ़ते हैं, व्यक्तियों से बातें करते हैं, तब आपने यह अवश्य महसूस किया होगा कि करीब-करीब प्रत्येक व्यक्ति विश्व में परिवर्तन लाना चाहता है और क्या आपने यह भी नहीं महसूस किया है कि ये ही व्यक्ति एक-दूसरे के साथ किन्हीं विचारों को लेकर या संपत्ति, जाति, वर्ग या धर्म को लेकर विरोध में खड़े हैं? आप के माता-पिता, आपके पड़ोसी, ये संवाददाता, मंत्री—क्या ये सभी महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं? क्या ये ऊँचे पदों के लिए नहीं छटपटा रहे हैं और इसीलिए ये किसी-न-किसी के विरोध में खड़े हैं? निश्चित रूप से जब यह सारी प्रतिस्पर्धा की भावना ही समाप्त हो जाएगी, तभी शान्तिमय समाज की रचना सम्भव हो सकेगी जिसमें हम सभी आनन्द और सृजनशीलता के साथ रह सकेंगे।

यह कैसे सम्भव हो सकेगा? क्या नियम और कानून, क्या आपके मन का महत्त्वाकांक्षी न बनने का अभ्यास, इस महत्त्वाकांक्षा को समाप्त कर सकेंगे? बाहर-बाहर से भले ही आप महत्त्वाकांक्षी न होने का अभ्यास कर लें, सामाजिक दृष्टि से भले ही आप प्रतिस्पर्धा न करें, परन्तु अन्दर से आप महत्त्वाकांक्षी बने ही रहेंगे। क्या नहीं रहेंगे? और क्या यह सम्भव है कि इस महत्त्वाकांक्षा का पूर्णतया ही अन्त हो जाए, जो मानव-समाज की अत्यधिक दुर्गति कर रही है? सम्भवतः आपने इस समस्या पर इस पहलू से कभी सोचा ही नहीं है इसलिए कि किसी भी व्यक्ति ने आपके सामने इसकी चर्चा ही नहीं की है। पर अभी कोई व्यक्ति आप से इस सम्बन्ध में चर्चा कर रहा है। अब क्या आप यह खोज नहीं करना चाहेंगे कि इस विनाशकारी महत्त्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्धा की दौड़ बिना क्या मानव के लिए यह सम्भव है कि वह इस विश्व में समृद्धि, पूर्णता, आनन्द और सृजनशीलता के साथ रह सके? क्या आप इस प्रकार का जीवन जीना नहीं चाहते हैं कि आपके जीने से दूसरे का जीवन नष्ट न हो, आपकी परछाईं उसके मार्ग में न पड़े?

आप सोच रहे होंगे कि ये बातें उस काल्पनिक संसार की हैं जो कभी साकार नहीं हो सकती; पर मैं उस काल्पनिक दुनिया की बातें नहीं कर रहा हूँ। वे सब

निरर्थक बातें हैं। क्या आप और मुझ जैसे सरल और साधारण व्यक्ति इस विश्व में इस महत्त्वाकांक्षा की दौड़ के बिना, जो शक्ति और प्रतिष्ठा की अभिलाषा के रूप में विभिन्न तरीकों में प्रकट होती है, सृजन करते हुए जी सकते हैं ? आप जो कुछ कर रहे हैं उसे यदि प्रेम से करेंगे तो आपको इसका सही उत्तर मिलेगा। यदि आप इन्जीनियर केवल इसलिए हैं कि आपको अपनी आजीविका कमाना है अथवा आपके माता-पिता या समाज आपसे ऐसा चाहते हैं, तब यह भी एक प्रकार की ज़बरदस्ती ही होगी और ज़बरदस्ती चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो, वह विसंगति और संघर्ष पैदा करेगी। परन्तु यदि आप सचमुच ही प्रेम से इन्जीनियर अथवा वैज्ञानिक बनना चाहते हैं, कोई वृक्ष लगाना चाहते हैं, कोई चित्र बनाना या कविता रचना चाहते हैं, प्रसिद्धि के लिए नहीं अपितु इसलिए कि आप प्रेम से करना चाहते हैं, तब आपको ज्ञात होगा कि आप किसी से भी स्पर्धा नहीं कर रहे हैं। आप जो कुछ करते हैं उसे प्रेम से करें; मैं सोचता हूँ यही सचमुच की एकमात्र कुंजी है।

लेकिन जब आप युवा हैं तब से ही आपके लिए यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है कि आप कौन सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं। क्यों कि आप बहुत से कार्य करना चाहते हैं—आप एक इंजीनियर, एक इञ्जिन चालक, नीले आसमान में वेग से उड़ते हुए एक वायुयान-उड़ाका बनना चाहते हैं, साथ ही आप एक प्रसिद्ध वक्ता, एक राजनीतिज्ञ, एक कलाकार, एक रसायनशास्त्री अथवा एक कवि या बढ़ई भी बनना चाहते हैं। आप मस्तिष्क से कार्य करना चाह सकते हैं अथवा हाथों द्वारा। क्या इन समस्त वस्तुओं में कोई ऐसी वस्तु भी है जिसे आप सचमुच प्रेम से करना चाहते हैं अथवा केवल समाज के दबाव से उत्पन्न प्रतिक्रिया मात्र से इन वस्तुओं में आपकी दिलचस्पी है ? अतः शिक्षा का क्या यही वास्तविक उद्देश्य नहीं है कि वह आपको यह ज्ञात करने में सहयोग दे ताकि आप बड़े होने के साथ ही अपना संपूर्ण मन, हृदय और शरीर उस कार्य में समर्पित कर दें, जिसे आप सचमुच प्रेम से करना चाहते हैं।

यह जानने के लिए कि आप कौन-सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं, अत्यधिक बुद्धिमानी की आवश्यकता है। यदि आप इस बात से भयभीत हैं कि कहीं आप जिविका न कमा सकें, कहीं आप इस सड़े हुए समाज के ढाँचे में स्वयम को न ढाल सकें, तब तो आप कभी भी यह खोज नहीं सकेंगे। लेकिन यदि आप अभय हैं, यदि आप माता-पिता, शिक्षक या समाज की छिछली आवश्यकताओं द्वारा परम्परा के घेरों में जाने से साफ इन्कार कर देते हैं, तब उस वस्तु के आविष्कृत होने की बहुत सम्भावना है जिसे आप प्रेम से करना चाहते हैं। खोज के लिए यह आवश्यक है कि आपको जीवित न रहने का डर न हो।

परन्तु हममें से अधिकांश व्यक्ति आजीविका के लिए भयभीत हैं। हम कहते हैं—"यदि मैं माता-पिता की आज्ञा नहीं मानूँगा, यदि मैं समाज के साथ नहीं चलूँगा तब मेरा क्या होगा—" इस भय के कारण हम वही करते हैं जो हमें कहा जाता है। इसमें प्रेम नहीं है, वहाँ तो केवल विसंगति है और यह आंतरिक विसंगति इस विनाशकारी महत्त्वाकांक्षा का एक कारण है।

अतः शिक्षा का यह मूलभूत कार्य है कि वह आपको यह खोजने में मदद करे कि आप सचमुच कौन-सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं ताकि आप उसमें अपना सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण हृदय लगा सकें, तभी आपमें उस मानवीय गरिमा का उदय होगा, तभी उदासीनता और छिछली वृत्तियों का अन्त होगा। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि शिक्षक योग्य हों और उपयुक्त वातावरण हो ताकि आप उस प्रेम के साथ बड़े हो सकें जो स्वयम् आपके कार्यों से प्रवाहित होगा। इस प्रेम के अभाव में आपकी परीक्षाएँ, आपका ज्ञान, आपकी योग्यताएँ, आपकी प्रतिष्ठा, आपकी सम्पत्ति सब धूल हैं। इस प्रेम के अभाव में आप और अधिक युद्ध, और अधिक घृणा, और अधिक उपद्रव, और अधिक विनाश पैदा करेंगे।

इन सब का अर्थ भले ही आपके लिए कुछ न हो, क्यों कि आप बाहर से छोटे हैं पर मैं सोचता हूँ कि आपके शिक्षकों के लिए यह अवश्य कुछ अर्थपूर्ण है—और आपके लिए भी, भीतर किसी कोने में।

प्रश्नकर्ता : आप इतने लजालु क्यों हैं ?

कृष्णमूर्ति : आप जानते हैं, जीवन में नामरहित होना, प्रसिद्ध या महान न होना, बड़ा विद्वान् न होना, महान सुधारक या क्रांतिकारी न होना, कुछ भी न बनना—ये सभी बहुत ही अद्भुत वस्तुएँ हैं और जब कोई व्यक्ति सचमुच उस प्रकार महसूस करता है और जब वह अपने आपको अचानक अनेकों जिज्ञासु व्यक्तियों के समुदाय में पाता है तब वह अपने को सिकोड़ लेना चाहता है। बस, इतनी-सी बात है !

प्रश्नकर्ता : हम अपने दैनिक जीवन में सत्य का कैसे दर्शन करें ?

कृष्णमूर्ति : आप सोचते हैं, सत्य और आपका दैनिक जीवन दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं, और आप अपने दैनिक जीवन में इस सत्य का दर्शन करना चाहते हैं। क्या सत्य हमारे दैनिक जीवन से भिन्न है ? जब आप बड़े हो जाएँगे तब आपको अपनी आजीविका कमानी होगी। आखिर आपकी ये सारी परीक्षाएँ आपको अपनी आजीविका के लिए ही तो तैयार करती हैं ? परंतु बहुत-से व्यक्ति जब तक पैसे कमाते रहते हैं तब

तक इस बात की परवाह नहीं करते कि वे कौन-से क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। उन्हें तो केवल पैसों से मतलब हैं, फिर उनका कार्य भले ही एक सैनिक का हो, पुलिस का हो, वकील का हो या किसी कुटिल व्यापारी का हो।

अब हमें इस बात की सचाई को खोजना अत्यन्त आवश्यक है कि हमारी आजीविका को कमाने के कौन-से रास्ते सही हैं ? क्यों कि सत्य आपके जीवन में ही है, इससे अलग नहीं। आप कैसे बातें करते हैं, कैसे आप मुस्कराते हैं, आप व्यक्तियों को कैसे धोखा देते हैं, उनका कैसा मज़ाक उड़ाते हैं, यही तो आपके दैनिक जीवन का सत्य है। अतः इसके पहले कि आप सिपाही, पुलिस, वकील या चतुर व्यापारी बनें, क्या आपको इन कार्यों के सत्य को नहीं देख लेना चाहिए ? निःसन्देह, जब तक आप अपने कार्य के सत्य को नहीं देख लेते और उस सत्य के अनुसार कार्य नहीं करते तब तक आपके जीवन में भयानक कुरूपता बनी रहेगी।

अब हम यह देखें कि क्या आपको सैनिक का कार्य करना चाहिए ? इस कार्य को हम इसलिए ले रहे हैं कि अन्य कार्य कुछ ज़्यादा पेचीदे हैं। प्रचार और अन्य व्यक्ति इसके सम्बन्ध में क्या कहते हैं इसे आप एक ओर रहने दें और आप सैनिक के कार्य की सचाई देखें। मान लीजिए यदि कोई सैनिक बनता है, इसका अर्थ हुआ कि उसे अपने देश की रक्षा के लिए लड़ना होगा। उसे अपने मन को इस प्रकार बनाना होगा कि वह सोचे नहीं, सिर्फ आज्ञा माने। उसे मरने या मारने के लिए तैयार रहना होगा। पर यह सब किसके लिए ? केवल एक विचार के लिए ! इसलिए कि कुछ महान या छोटे व्यक्तियों ने इसे सही कहा है। इसीलिए आप सैनिक बन जाते हैं, अपना बलिदान करने के लिए और दूसरों को मारने के लिए। क्या यह एक सही कार्य हो सकता है ? आप किसी दूसरे से न पूछें परन्तु इस बात की सचाई स्वयम् खोजें। आपको यह कहा जाता है कि आप भविष्य की सुन्दर स्वप्निल दुनिया के लिए लोगों का खून करें, मानो वे कहनेवाले व्यक्ति उसे देख आए हों ! क्या आप सोचते हैं कि किसी देश अथवा किसी संगठित धर्म के लिए लोगों को जान से मारना सही कार्य हो सकता है ? क्या जान से मारना कभी भी ठीक हो सकता है ?

इसलिए यदि आप अपने ही जीवन की इस विशाल प्रक्रिया में सत्य को खोजना चाहते हैं तो गहराई से आपको इन सारी बातों की खोज करनी होगी। आपको अपना मन, अपना हृदय इनमें लगाना होगा। आपको निष्पक्ष होकर स्वतन्त्रता व स्पष्टता के साथ सोचना होगा क्यों कि सत्य जीवन से कहीं दूर नहीं है, यह तो आपके दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया में विद्यमान है।

प्रश्नकर्ता : क्या मूर्तियाँ, गुरु और संत हमें सही ध्यान (Meditation) करने में मदद नहीं करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप जानते हैं कि सही ध्यान क्या है ? क्या आप स्वयम् अपने लिए इस विषय के सत्य को नहीं खोजना चाहते ? यदि आप किसी अधिकारी का मत स्वीकार कर लेंगे तो क्या आप स्वयम् कभी यह सत्य खोज सकेंगे कि सही ध्यान क्या है ?

यह गंभीर प्रश्न है। इस ध्यान की कला को खोजने के लिए आपको इस अद्भुत विचार-प्रक्रिया को इसकी सम्पूर्ण गहराई और व्यापकता के साथ समझना होगा ! यदि आप किसी अधिकारी का यह मत कि "ध्यान इस प्रकार किया जाए" मान लेते हैं तब आप केवल अनुयायी, एवम् एक विचार-प्रणाली के अन्धे दास बन जाते हैं। अधिकारी के मत की स्वीकृति आपकी इस आशा पर आधारित है कि आप कुछ पाना चाहते हैं; और यह ध्यान नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : एक विद्यार्थी के क्या-क्या कर्तव्य हैं ?

कृष्णमूर्ति : इस कर्तव्य शब्द का क्या अर्थ है ? किस के प्रति कर्तव्य ? क्या देश के प्रति कर्तव्य जैसा कि कोई राजनीतिज्ञ कहता है ? क्या माता-पिता के प्रति कर्तव्य जैसा कि वे चाहते हैं ? वे आप को कहेंगे कि आप केवल वही करें जो वे आप को करने के लिए कहें और वे जो कुछ कहते हैं वह उनके गत जीवन और परम्पराओं आदि से बँधा हुआ है। विद्यार्थी कौन है ? क्या वह लड़का या लड़की जो विद्यालय में जाता है और परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए कुछ पुस्तकें पढ़ लेता है ? अथवा वह जो प्रत्येक समय सीख रहा है और इसलिए उसके सीखने की कोई सीमा नहीं ? जो छात्र कुछ विषय पढ़ लेता है और परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है, वह निश्चय रूप से विद्यार्थी नहीं । वास्तविक विद्यार्थी केवल बीस या पच्चीस वर्ष की उम्र तक ही नहीं अपितु आजीवन अध्ययन करता है, अनुसंधान करता है।

विद्यार्थी होने का अर्थ है हर क्षण सीखते रहना, और जहाँ तक आप सीखते रहते हैं वहाँ तक कोई गुरु नहीं है, क्या है ? जिस क्षण आप सही अर्थों में विद्यार्थी हैं तब कोई शिक्षक विशेष आपको नहीं सिखाता क्यों कि आप उस समय प्रत्येक वस्तु से सीख रहे होते हैं—हवा द्वारा उड़ाई गई किसी पत्तो से, किसी सरिता के तटों-पर पानी की कलकल ध्वनि से, हवा में ऊँची उड़ान भरनेवाले किसी पक्षी से, उस गरीब व्यक्ति से जो अपने सिर पर भारी बोझा लिए चल रहा हो, उन व्यक्तियों से जो यह सोचते हैं कि वे जीवन के सम्बन्ध में प्रत्येक वस्तु जानते हैं। आप इन सब से सीख रहे हैं। अतः आप का कोई शिक्षक नहीं है, आप किसी के अनुयायी नहीं हैं।

अतः एक विद्यार्थी का कर्तव्य है कि वह केवल सीखता रहे। स्पेन में एक प्रसिद्ध चित्रकार हो गया है, जिसका नाम था गोया। वह सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों में से एक था। जब वह बहुत वृद्ध हो गया तब उसने अपने एक चित्र के नीचे लिखा—"मैं अबतक सीख रहा हूँ"। आप पुस्तकों से सीख अवश्य सकते हैं, पर वे आपको बहुत दूर तक नहीं ले जाती हैं। एक पुस्तक आपको केवल वही सिखा सकती है जो उसका लेखक कहना चाहता है। परन्तु जो सीख आत्मज्ञान से मिलती है वह अनंत है क्यों कि आत्मज्ञान के माध्यम से सीखने का अर्थ है— किस प्रकार सुनना, कैसे निरीक्षण करना। अतः आप प्रत्येक वस्तु से सीखते हैं—संगीत से, व्यक्तियों के संभाषण से, उनके कथन के तरीकों से, लालच से, महत्त्वाकांक्षा से।

यह वसुधा हमारी सबकी है। यह साम्यवादियों, समाजवादियों अथवा पूंजीपतियों की नहीं है। यह आपकी है, मेरी है, हम यहाँ आनंद से, समृद्धि से और शांति से रह सके। लेकिन जीवन का यह वैभव, यह आनन्द, यह अनुभूति कि यह वसुधा हमारी है कभी ज़बरदस्ती अथवा किसी कानून से नहीं लाई जा सकती है; इसे तो हमारे भीतर से ही आना चाहिए, इसलिए कि हम धरती को प्यार करते हैं, इसकी समस्त वस्तुओं को प्यार करते हैं और यही सीखने की अवस्था है।

प्रश्नकर्ता : प्रेम और सम्मान में क्या अन्तर है ?

कृष्णमूर्ति : आप 'सम्मान' और 'प्रेम' को शब्दकोष में देखकर इनका अन्तर ज्ञात कर सकते हैं। क्या आप यही जानना चाहते हैं या इनके गर्भित अर्थ को ?

जब कोई सुप्रसिद्ध व्यक्ति, कोई मिनिस्टर या राज्यपाल आता है तब आप देखते हैं कि किस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति उसे प्रणाम करता है; इसे आप सम्मान कहते हैं। परन्तु ऐसा सम्मान केवल शाब्दिक है; क्यों कि इसके पीछे भय है, लालच है। आप इस बिचारे दैत्य से कुछ पाना चाहते हैं। अतः आप उसके गले में हार डालते हैं। यह सम्मान नहीं है, यह तो एक सिक्का है जिसे आप बाज़ार में बेचकर कुछ खरीदते हैं। आप अपने सेवक का या किसी ग्रामीण का सम्मान नहीं करते, आप तो केवल उन्हीं का सम्मान करते हैं, जिनसे आपको कुछ पाने की आशा है। इस प्रकार का सम्मान वास्तव में बिलकुल ही सम्मान नहीं है। इसका कुछ भी अर्थ नहीं है लेकिन यदि आपके हृदय में सचमुच प्रेम है तब आपके लिए सब समान होंगे, फिर चाहे वह राज्यपाल हो, शिक्षक हो, सेवक हो या कोई ग्रामीण। तब आप सभी के लिए सम्मान रखते हैं, सबके प्रति विचारशील होते हैं, क्योंकि बदले में प्रेम कुछ भी नहीं चाहता।

८. व्यवस्थितता

जीवन की बहुत सी बातों में से एक बात यह भी है कि हममें से अधिकांश व्यक्ति अव्यवस्थित हैं--पहनावे में, विचारों में, व्यवहारों और कार्यों में अव्यवस्थित; और क्या आपने कभी सोचा है कि इसका कारण क्या है? हम समय के पाबन्द क्यों नहीं हैं, दूसरों के प्रति अविचारी क्यों हैं? और वह कौन सी बात है जिससे आप प्रत्येक कार्य में सुव्यवस्थित हो जाते हैं--पहनावे में, विचारों में, संभाषण में, चलने में और उन व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने में जो आपसे कम भाग्यशाली हैं। वह कौनसा रहस्य है जिससे आपमें बिना दबाव, बिना योजना और बिना बुद्धिपूर्वक विचार किए इस अद्भुत व्यवस्थिता का आगमन होता है? क्या आपने कभी इस पर सोचा है? क्या आप जानते हैं कि इस व्यवस्थितता से मेरा तात्पर्य क्या है?--व्यवस्थितता का अर्थ है दबावरहित होकर शांत और स्थिर बैठना, भागदौड़ से मुक्त होकर सौम्य एवं सुन्दर ढंग से भोजन करना, अवकाशपूर्ण होना और फिर भी उत्तरदायित्वपूर्ण और तत्पर रहना, अपने विचारों में स्पष्ट और सटीक होते हुए भी संकीर्ण न होना। जीवन में यह व्यवस्था किस प्रकार आती है? यह सचमुच अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। मैं सोचता हूँ यदि कोई इस व्यवस्था के कारण को खोजने के लिए शिक्षित किया जाए तो यह एक महान् कार्य होगा।

निश्चित रूप से इस व्यवस्था का आगमन सद्गुण के माध्यम से होता है। यदि आप केवल छोटी-छोटी बातों में ही नहीं अपितु जीवन की समस्त गतिविधियों में सद्गुणी नहीं हैं तो आपका जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, क्या नहीं हो जाता? सद्गुणी होने का अपने आपमें कोई अर्थ नहीं है; लेकिन सद्गुणी होने से आपके विचारों में निश्चितता और आपके सम्पूर्ण अस्तित्व में व्यवस्थितता का आगमन होता है और सद्गुण का महत्त्व इसीलिए है।

लेकिन जब कोई सद्गुणी बनने का प्रयत्न करता है तब क्या घटित होता है? या जब वह दयालु, कार्यकुशल, विचारशील और सावधान बनने के लिए अपने आपको नियन्त्रित करता है, वह व्यक्तियों को कष्ट नहीं देने के लिए सतत प्रयास करता है और वह अपनी शक्तियों का इस व्यवस्था को पाने एवम् अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिए अपव्यय करता है तो क्या घटित होता है? उसके ये सारे प्रयत्न उसे प्रतिष्ठा की ओर ले जाते हैं जो मन को एकदम से सामान्य बना देता है। अतः वह सद्गुणी नहीं बन पाता।

क्या आपने कोई फूल बहुत निकटता से देखा है? उसमें अपनी समस्त पंखुड़ियों के साथ कितनी यथार्थता होती है; फिर भी उसमें कितनी अद्भुत सुकोमलता, कितनी

खुशबू और कितना सौंदर्य होता है ! अब यदि कोई इस सुव्यवस्थितता को साधने का प्रयत्न करता है तो उससे उसका जीवन भले ही निश्चितता का बन जाए पर उसमें वह माधुर्य नहीं आ पाता, जिसका आगमन प्रयत्नों की अनुपस्थिति में, फूलों में होता है। अतः हमें बिना प्रयत्नों के ही निश्चित, सुस्पष्ट और व्यापक होना चाहिए और यही हमारी कठिनाई है।

आप देखते हैं कि सुव्यवस्थित होने के लिए किये गये ''प्रयत्न'' का प्रभाव बहुत ही संकीर्णता का होता है। यदि मैं जान-बूझकर अपने कमरे में सुव्यवस्थित रहने का प्रयत्न करूँ, प्रत्येक वस्तु को उसके स्थान पर रखने का पूरा खयाल रखूँ, यदि मैं हर समय अपने आपको देखता रहूँ कि मेरे पैर कहाँ पड़ रहे हैं आदि आदि, तब इसका परिणाम क्या होगा ? मैं अपने और दूसरों के लिए असहनीय बोझ बन जाऊँगा। वह एक थका-मांदा व्यक्ति है जो हमेशा कुछ बनने का प्रयत्न कर रहा है, जो अपने विचारों को बड़ी सावधानी से सजाता है; जो किसी एक विचार की तुलना में दूसरे विचार का चुनाव करता है। ऐसा व्यक्ति भले ही बहुत व्यवस्थित हो, स्पष्ट हो, शब्दों को सावधानी से कहता हो, अत्यन्त सजग हो, विचारशील हो, लेकिन उसने जीवन के सृजनात्मक आनन्द को खो दिया है।

अतः हमारी समस्या है कि व्यक्ति किस प्रकार जीवन का यह सृजनात्मक आनन्द प्राप्त कर सके ? अनुभवों में विस्तीर्ण और विचारों में व्यापक होते हुए भी वह जीवन में सुनिश्चित, सुस्पष्ट और सुव्यवस्थित हो सके? मेरा खयाल है कि हममें से अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार के नहीं होते हैं, क्योंकि हम किसी वस्तु को तीव्रता से महसूस नहीं करते, हम अपने दिल और दिमाग को किसी वस्तु में सम्पूर्णता के साथ लगाते ही नहीं ! मुझे याद है कि लगभग दस मिनट तक गुच्छेदार लम्बी पूँछ और सुन्दर रोवेंवाली दो लाल गिलहरियों को एक लम्बे वृक्ष पर एक-दूसरे को लगातार ढकेलते हुए मैं देखता रहा—केवल जीवन में आनन्द के लिए। लेकिन यदि हम वस्तुओं को गहराई से महसूस नहीं करते हैं, यदि हमारे जीवन में यह अनुराग नहीं है, तो हम जीवन का यह आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते। मैं उस अनुराग की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, जो कुछ अच्छा काम या सुधार करने के लिए होता है अपितु वस्तुओं को गहराई से महसूस करने का अनुराग। और हम में यह अनुराग तभी पैदा हो सकता है, जब हमारे सम्पूर्ण जीवन में, हमारे विचारों में, आमूल परिवर्तन हो जाए।

क्या आपने कभी अनुभव किया है कि हममें से कितने कम व्यक्ति किसी वस्तु को प्रबलता से महसूस करते हैं ? क्या आप कभी अपने शिक्षकों और माता-पिता के खिलाफ विद्रोह करते हैं ? इसलिए विद्रोह नहीं कि आप कोई वस्तु पसंद नहीं करते बल्कि इसलिए कि आप इतनी गहरी और प्रबल भावनाएँ रखते हैं कि आप कुछ वस्तुएँ

करना ही नहीं चाहते ? यदि आप किसी वस्तु को गहराई और तीव्रता से अनुभव करते हैं तो आप अनुभव करेंगे कि आपकी यह भावना ही एक अद्भुत मार्ग से आपके जीवन में नूतन व्यवस्थितता का निर्माण कर रही है।

व्यवस्थितता, क्रमबद्धता और विचारों की सुस्पष्टता का अपने आपमें कोई बहुत बड़ा महत्त्व नहीं है; पर ये उस व्यक्ति के लिए बहुत आवश्यक बन जाती हैं जो संवेदन-शील हैं, गहराई से महसूस करते हैं और सतत आंतरिक क्रांति की अवस्था में रहते हैं। यदि आप गरीबों के भाग्य को गहराई से महसूस करते हैं, उस भिखारी को महसूस करते हैं, जिसका मुँह किसी अमीर की मोटर से धूलि धूसरित हो गया है, यदि आप विलक्षण रूप से ग्रहणशील हैं और प्रत्येक वस्तु के प्रति संवेदनशील हैं, तब आपकी यही संवेदनशीलता आपके जीवन में सुव्यवस्था और सद्गुण को जन्म देती है और मेरा खयाल है कि यह जितना आवश्यक विद्यार्थियों के लिए है उतना ही आवश्यक शिक्षकों के लिए भी है।

दुर्भाग्य से समस्त विश्व की भाँति इस देश में भी हम दूसरों के प्रति कितने विवेकशून्य हैं ! हम किसी भी वस्तु के बारे मे गहराई से महसूस ही नहीं करते ! हममें से अधिकांश बड़े बुद्धिमान हैं। बुद्धिमान इस छिछले अर्थ में कि हम बड़े चतुर हैं, हम इन शब्दों और सिद्धांतों से भरे हुए हैं कि क्या सत्य है, क्या गलत है, क्या सोचना चाहिए, क्या करना चाहिए। मानसिक दृष्टि से हमने बहुत विकास किया है परंतु आंत-रिक दृष्टि से हममें कोई महत्त्व, कोई समृद्धि नहीं है ? और आंतरिक समृद्धि ही हममें सृजनशीलता पैदा करती है जो किसी सिद्धांत पर आधारित नहीं है।

इसीलिए आपमें भावनाएँ बहुत गहरी होनी चाहिये, फिर चाहे अनुराग की भावनाएँ हों अथवा क्रोध की। आप इनका निरीक्षण करें, इनके साथ खेलें और इनके सत्य को खोजें। आप इन भावनाओं को यदि यह कहकर दबा देते हैं कि—मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए, मुझे अनुराग नहीं करना चाहिए क्यों कि ये बुरी बातें हैं, तो आप महसूस करेंगे कि आपका मन क्रमशः किसी सिद्धांत से बँधा जा रहा है और इसलिए वह छिछला होता जा रहा है। चाहे आप अत्यधिक बुद्धिमान हो जाएँ, चाहे दुनियाभरका ज्ञान आप संग्रह कर लें, लेकिन यदि आप में भावनाओं को महसूस करने की गहरी चेतनाशक्ति नहीं है तो आपका ज्ञान ठीक वैसा ही है जैसा खुशबूरहित फूल।

यह अत्यंत आवश्यक है कि आप ये सारी बातें अभी से ही समझ लें ताकि आप जब बड़े हों तो वास्तविक क्रांतिकारी बन सकें। ऐसे क्रांतिकारी नहीं जो किसी आदर्श-वाद, किसी सिद्धांत अथवा शास्त्र पर आधारित हों; पर आप सही अर्थों में क्रांतिकारी बने। ऐसे क्रांतिकारो जो समग्र मानव हों और जिनमें पुरातनता का नामोनिशान न रह

जाए। तभी आपका मन एकदम ताजा और निर्दोष हो जाता है और वह एक अद्भुत सृजनशीलता के योग्य बन जाता है। लेकिन यदि आप यह नहीं करते तो आपका जीवन अत्यंत मलीन बन जाएगा क्यों कि तब आप समाज से, परिवार से, पत्नी या पति से, सिद्धांतों से, राजनैतिक या आर्थिक संगठनों से घबरा जाएँगे। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि आपको सही अर्थों में शिक्षित किया जाए जिसका अर्थ है कि आपके शिक्षक ऐसे हों जो आपको इस तथाकथित सभ्यता की परतों को छिन्न-भिन्न करने में सहायता दे सकें। आप केवल एक ही कार्य को पुनः पुनः दुहरानेवाली मशीनें नहीं बनें, अपितु ऐसी इकाइयाँ बने, जिनके अन्तर में संगीत हो और जो सचमुच आनन्दमय एवम् सृजनशील मानव हो।

प्रश्नकर्ता : क्रोध क्या है, व्यक्ति क्रोध क्यों करता है ?

कृष्णमूर्ति : यदि मैं आपके पैरों की ऊंगलियाँ कुचल दूँ, आपको चुटकी काटूँ, आपकी कोई वस्तु छीन लूँ तब क्या आप क्रोध नहीं करेंगे और आप क्रोध क्यों न करें ? आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि क्रोध बुरा है ? इसलिए न, कि किसी ने आपसे ऐसा कहा है ? अतः यह खोजना अत्यन्त आवश्यक है कि व्यक्ति क्रोध क्यों करता है ? हम क्रोध के सत्य को देखें, न कि केवल इतना कह दें 'क्रोध करना बुरा है'।

आप क्रोध क्यों करते हैं ? इसलिए कि आप यह नहीं चाहते कि कोई आपको चोट पहुँचाए। जीवित रहने के लिए मानव की यह सहज माँग है। आप यह महसूस करते हैं कि कोई सरकार, कोई समाज और कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए आपका उपयोग न करें, आपका शोषण न करें, आपको कुचले नहीं, आपका नाश न करें। जब कोई आपको थप्पड़ मारता है, तब आप चोट महसूस करते हैं, आपका गर्व खण्डित हो जाता है और आप यह पसन्द नहीं करते। यदि आपको चोट पहुँचानेवाला कोई बड़ा या शक्तिशाली व्यक्ति हुआ और उसे यदि आप चोट नहीं कर सकते तो आप किसी दूसरे पर चोट करते हैं—अपने भाई पर, अपनी बहन पर या यदि आपका कोई सेवक है तो उसपर। अतः यह क्रोध का खेल सतत चालू रहता है।

सर्वप्रथम चोट से बचना एक सहज प्रवृत्ति है। कोई व्यक्ति आपका क्यों शोषण करे ? अतः इससे बचने और स्वयम् को सुरक्षित बनाने के लिए आप एक घेरा, एक नाका बनाने लगते हैं। तब आप खुद के मन को बन्द कर, उसे संवेदनशून्य बनाकर और इस प्रकार उसके चारों ओर एक दीवार खड़ी कर लेते हैं। इस प्रकार आपका मन खोज और व्यापकता की अनुभूति के अयोग्य हो जाता है। आप कहते हैं, 'क्रोध बहुत बुरी वस्तु है' और आप अन्य भावनाओं की तरह इसकी भी निन्दा करने लगते हैं।

अतः आप क्रमशः नोरस और रिक्त होते जाते हैं। आप फिर गहराई से बिलकुल महसूस नहीं कर पाते। क्या आप यह समझ रहे हैं ?

प्रश्नकर्ता : हम अपनी माँ से इतना ज्यादा प्रेम क्यों करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : यदि आप अपने पिता से नफरत करते हों तो क्या अपनी माँ से प्रेम करेंगे ? आप सावधानी से सुनें, जब आप किसी व्यक्ति को बहुत ज्यादा प्रेम करते हैं तब क्या आप दूसरों को उस प्रेम से वंचित रखते हैं ? यदि आप सचमुच माँ से प्रेम करते हैं तो क्या आप अपने पिता, अपनी चाची, अपने पड़ोसी या सेवक को प्रेम नहीं करेंगे ? क्या आपमें पहले प्रेम को अनुभूति नहीं उमड़ती और तब आप किसी व्यक्ति विशेष को प्रेम नहीं करते हैं ? जब आप कहते हैं, "मैं अपनी माँ को बहुत ज्यादा प्यार करता हूँ" तब क्या आप उनके लिए विचारशील नहीं होंगे ? तब क्या उसे आप व्यर्थ की इतनी सारी तकलीफ देंगे ? और यदि आप अपनी माँ के लिए सचमुच विचारशील हैं तब क्या आप अपने भाई, अपनो बहन, अपने पड़ोसी के लिए विचारशील नहीं होंगे ? यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तब आप सचमुच अपना माँ से प्रेम नहीं करते; यह केवल शब्द है, स्वार्थ है।

प्रश्नकर्ता : मैं नफरत से भरा हूँ, क्या आप मुझे प्रेम करना सिखायेंगे ?

कृष्णमूर्ति : आपको कोई भी व्यक्ति प्रेम करना नहीं सिखा सकता। यदि मनुष्यों को प्रेम करना सिखाया जा सका होता तो विश्व की समस्याएँ काफी आसान हो जाती, क्या नहीं हो जाती ? यदि हम किसी पुस्तक के माध्यम से, जिस प्रकार हम गणित सीखते हैं, उसी प्रकार प्रेम करना भी सोख पाते तो यह विश्व बड़ा ही अद्भुत हो जाता ! जहाँ न नफरत होती, न शोषण होता, न युद्ध होते, न गरीब और अमीर के वर्ग होते और हम सब आपस में सचमुच मित्रता से रहते; परंतु प्रेम का आगमन इतनी आसानी से नहीं होता है। नफरत आसान है। यह नफरत मनुष्यों को किसी सम्प्रदाय में बाँधती है, यह समस्त प्रकार को सनक एवं झक (Fantacies) का निर्माण करती है। यह सभी प्रकार के सहयोगों को, जिनमें युद्ध भी एक है, जन्म देती है। परन्तु प्रेम अत्यन्त कठिन है। आप प्रेम करना नहीं सीख सकते, आप तो केवल इतना कर सकते हैं कि आप इस नफरत को समझ लें और इसे मृदुता से एक ओर रख दें। आप इस नफरत के साथ लड़े नहीं। आप ऐसा न कहें, "किसी से नफरत करना भयानक है"। आप तो यह देखें कि नफरत क्या है और इसे विसर्जित हो जाने दें, विलीन हो जाने दें। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इसे आप अपने मन में जड़ें न जमाने दें। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? आपका मन एक उपजाऊ भूमि के सदृश है और यदि आप किसी भी समस्या को पर्याप्त समय देते हैं तो वह जंगली घास की तरह

आपके मन में जड़ें जमा लेती है और तब इसे खोद फेंकना बड़ा कष्टदायक होता है। लेकिन यदि आप किसी समस्या को जड़ें जमाने के लिए पर्याप्त अवसर ही न दें, तब यह जमेंगी ही नहीं अथवा मुरझा जाएगी। यदि आप घृणा को उत्तेजित करते हैं तो इसका अर्थ है कि आप इसे जमने का अवसर देते हैं, इसे बढ़ने देते हैं। तब यह असाधारण समस्या बन जाती है। लेकिन यदि आप प्रत्येक समय जब-जब घृणा पैदा होती है तब-तब उसे विलीन होने देते हैं तो आप महसूस करेंगे कि आपका मन भावुकता रहित अत्यन्त संवेदनक्षम होता जा रहा है और तभी आप जान सकेंगे कि प्रेम क्या है?

हमारा मन संवेदनाएँ और वासनाएँ तो ला सकता है पर प्रेम नहीं ला सकता। प्रेम का तो मन में आगमन 'होता' है, और एक बार जब इस प्रेम का आगमन हो जाता है तब यह ऐंद्रिक और दैवी विभागों में बँटा नहीं रह जाता; यह तो केवल प्रेम होता है। प्रेम के सम्बन्ध में यही आश्चर्यजनक बात है : यही केवल ऐसा गुण है जो हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व में अखंड प्रज्ञा पैदा कर देता है।

प्रश्नकर्ता : जीवन में आनंद क्या है?

कृष्णमूर्ति : यदि आप कोई ऐसा कार्य करना चाहते हैं जो आपको सुख पहुँचाये तब आप सोचते हैं कि उसे कर लेने के बाद आपको आनन्द प्राप्त होगा। आप किसी अत्यंत धनी व्यक्ति से अथवा किसी अत्यंत खूबसूरत लड़की से शादी करना चाहते हैं, आप कोई परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहते हैं, तो आप सोचते हैं कि मनचाही वस्तु मिलने पर आप आनंदित होंगे! लेकिन क्या यह आनंद है? क्या यह आनंद, उस फूल की तरह जो प्रातः खिलता है और सायंकाल मुरझा जाता है, क्षीण नहीं हो जाता? फिर भी हम इसी जीवन की चाह करते हैं! इसे ही जीवन मानते हैं। कुछ ही क्षणों पूर्व हवा के प्रबल झोंकों में पतंग उड़ानेवाले और फिर कुछ ही समय पश्चात् आँसू बहानेवाले उस बच्चे की तरह ही क्या हम मोटर, प्रतिष्ठा, किसी छोटी-सी वस्तु के प्रति भावुकता आदि क्षुद्र वस्तुओं में ही संतुष्ट नहीं हो जाते? यह है हमारा जीवन और हम इसी में संतोष माने बैठे हैं! हम ऐसा कभी नहीं कहते हैं – "मैं इस आनंद की खोज में अपना संपूर्ण हृदय, अपनी पूरी शक्तियाँ, अपना सब कुछ लगा दूँगा"। हम वास्तव में अधिक गम्भीर नहीं हैं। हम इस आनंद के सम्बन्ध में गहराई से महसूस ही नहीं करते हैं और इसीलिए हम छोटी-छोटी वस्तुओं से संतुष्ट हो जाते हैं।

लेकिन आनंद कुछ ऐसी वस्तु नहीं है जिसे आप खोज सकें; यह तो परिणाम है, एक गौण उपज (By-Product) है। यदि आप आनन्द के लिए आनन्द की खोज करेंगे तब इसका कुछ भी अर्थ न होगा। आनन्द तो बिना बुलाए ही आता है और जिस

क्षण आपको अपने आनंद का भान हो जाता है उसी क्षण यह जाता रहता है, क्या आपने कभी यह महसूस किया है ? जब कभी आप अचानक बिना ही किसी कारण के आनंदित होते हैं और उस आनंद में आप उन्मुक्तता के साथ हँसते हैं, परन्तु जिस क्षण आप यह जान लेते हैं उसी क्षण यह आनंद भाग जाता है, क्या ऐसा नहीं होता है ? आतमभान करते हुए प्रसन्न होना और प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करना, ये ही आनंद के शत्रु हैं। प्रसन्नता का निवास तो वहीं होता है जहाँ आपका अहम्, आपकी वासनाएँ, अनुपस्थित हों।

आपको गणित के सम्बन्ध में बहुत कुछ सिखाया जाता है। आप इतिहास, भूगोल, विज्ञान, भौतिकशास्त्र, जीवशास्त्र आदि विषयों के अध्ययन में अनेकों वर्ष बिता देते हैं, लेकिन क्या कभी आप और आपके शिक्षक इन अत्यंत गंभीर विषयों के चिंतन में भी कुछ समय बिताते हैं ? क्या कभी आप अपनी पीठ एकदम सीधी किए शांति से निश्चल बैठे हैं और स्तब्धता के सौंदर्य की अनुभूति की है ? क्या कभी आप अपने मन को केवल छोटी-छोटी वस्तुओं में ही नहीं अपितु गंभीर, विशाल और विस्तीर्ण विषयों में भी विचरण करने देते हैं ताकि वह खोज कर सके, आविष्कार कर सके।

क्या आप जानते हैं कि आज विश्व में क्या हो रहा है ? हममें से प्रत्येक के मन में जो कुछ हो रहा है उसी का ही प्रक्षेपण विश्व में भी हो रहा है। हम जैसे हैं, दुनिया भी वैसी ही है। हममें से अधिकांश व्यक्ति पीड़ा में हैं, हम लोभी हैं, परिग्रही हैं, ईर्ष्यालु हैं, हम व्यक्तियों की निंदा करते हैं और ठीक यही सब कुछ ज्यादा अभिनय और अधिक निर्दयता के साथ विश्व में भी हो रहा है। लेकिन आप और आपके शिक्षक इन विषयों पर विचार करने के लिए कभी समय ही नहीं खर्च करते हैं। यदि आप अत्यन्त गंभीरता से प्रतिदिन इन विषयों पर विचार करें तो यह संभव है कि विश्व में आमूल परिवर्तन हो जाए और एक नए विश्व का निर्माण हो सके। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमें एक नूतन विश्व का निर्माण करना है — एक ऐसा विश्व जो इस दूषित समाज से एकदम भिन्न होगा। लेकिन आप ऐसे विश्व का निर्माण तब तक नहीं कर सकते जब तक कि आपका मन सावधान, जागृत और व्यापक रूप में सजग नहीं हो जाता। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि आप युवावस्था से ही इन गंभीर विषयों पर विचार करने के लिए थोड़ा समय बिताएँ, आप अपना सारा समय केवल कुछ विषयों के ही अध्ययन में ही न लगा दें जो आपको सिर्फ आजीविका और मृत्यु तक ले जाते हैं। अतः आप गंभीरता के साथ इन समस्त बिषयों पर अवश्य सोचें क्योंकि इसी से एक अद्भुत आनंद और प्रसन्नता की अनुभूति होती है।

प्रश्नकर्ता : वास्तविक जीवन क्या है ?

कृष्णमूर्ति : "वास्तविक जीवन क्या है ?" एक छोटे से बच्चे ने यह प्रश्न पूछा है। खेलना, अच्छा भोजन करना, दौड़ना, कूदना, ढकेलना—उसके लिए यही तो जीवन है। आप देखते हैं कि हम जीवन के भी विभाग कर देते हैं—वास्तविक जीवन और असत्य जीवन। सचमुच जीवन का अर्थ है—किसी वस्तु को, जिसे आप प्रेम करते हैं, अपनी पूरी समग्रता के साथ करना ताकि आपमें 'आप जो कर रहे हैं' और 'आपको जो करना चाहिए' इनमें किसी प्रकार की विसंगति न हो; संघर्ष न हो। तब हमारे लिए यह जीवन अखंड समग्रतामय प्रक्रिया हो जाएगी जिसमें अनन्त आनंद है, लेकिन यह तभी हो सकता है जब आप मानसिक दृष्टिसे किसी व्यक्ति अथवा समाज पर अवलंबित न हों, जब आपके अन्तर में पूर्ण अनासक्ति हो। केवल तभी आप उस कार्य को प्रेम कर सकेंगे। यदि आप अखंड संक्रमण की अवस्था में हैं, फिर चाहे आप माली हों, प्रधान-मंत्री हों अथवा अन्य कोई भी हों, आप जो कुछ करेंगे उसे प्रेम से करेंगे और इसी प्रेम से अलौकिक सृजनशीलता की अनुभूति होती है।

—:०:—

९. दर्शन

सीखना क्या है, यह जान लेना बड़ी दिलचस्प बात होगी। हम गणित, भूगोल, इतिहास किसी के संबंध में किसी शिक्षक अथवा पुस्तक से सीखते हैं। हम सीखते हैं कि लन्दन कहाँ है, मॉस्को या न्यूयार्क कहाँ है? हम यह भी सीखते हैं कि यंत्र कैसे चलते हैं, पक्षी घोंसले कैसे बनाते हैं, कैसे वे अपने बच्चे पालते हैं आदि आदि। इस प्रकार हम निरीक्षण एवं अध्ययन द्वारा सीखते हैं। यह एक प्रकार का सीखना हुआ।

लेकिन क्या सीखने का एक और भी मार्ग नहीं है? यह है अनुभवों से सीखने का मार्ग। जब हम एक नौका को अपने पालों के साथ सरिता के शांत जल में प्रति-बिंबित होते हुए देखते हैं, तब क्या हमें एक अनोखा सा अनुभव नहीं होता है? उस समय हमारे मन में क्या घटित होता है? हमारा मन इस प्रकार के अनुभवों का भी उसी प्रकार संग्रह करता है जिस प्रकार वह ज्ञान का संग्रह करता है और हम अगली संध्या पुन: उस नाव को देखने के लिए, इस आशा के साथ जाते हैं कि हमें फिर वही आनंदानुभूति हो, वही शांति के क्षण प्राप्त हों; क्यों कि ऐसे क्षण जीवन में बहुत ही कम उपलब्ध होते हैं। अत: हमारा मन बड़े परिश्रम से इन अनुभवों का संग्रह कर रहा है और यही संग्रह हमारी स्मृति का रूप लेता है जो हम से विचार करवाती है। क्या ऐसा नहीं होता है? जिसे हम सोचना कहते हैं वह हमारी स्मृति का ही प्रत्युत्तर (Response) है। हमने सरिता में नाव देखी, आनंद का अनुभव किया, अनुभवों के संग्रह ने स्मृति का रूप लिया और तब हम उसे दुहराने लगे। इस प्रकार हमारा सोचने का क्रम निरंतर चालू रहता है। क्या नहीं रहता?

आप देखते हैं कि हममें से बहुत ही कम व्यक्ति यह जानते है कि विचार किस प्रकार किया जाता है? अधिकांश व्यक्ति तो केवल वही दुहराते रहते हैं, जो उन्होंने किसी पुस्तक में पढ़ा है अथवा किसी के मुँह से सुना है। हम अपने सीमित अनुभवों के घेरे में ही सोचा करते हैं। हम भले ही समस्त विश्व की यात्रा कर ले, और असंख्य अनुभव प्राप्त कर लें, विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से मिल लें, उनके भाषण सुन लें, उनके आचार, उनके धर्म, उनके व्यवहार जान लें; हम इन सारी बातों को अपनी स्मृति में ठूंस लेते हैं, और इसी स्मृति से हमारी सोचने की प्रक्रिया चलती रहती हैं। हम तुलना करते हैं, निर्णय करते हैं, चुनाव करते हैं और इसी प्रक्रिया के माध्यम से जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण प्राप्त कर लेने की आशा करते हैं। लेकिन इस प्रकार का सोचना

अत्यंत सीमित है, यह बहुत ही संकुचित घेरे में बँधा है। सरिता में चलती हुई नाव, श्मशान घाट की ओर ले जाते हुए शव अथवा भारी बोझा ढोती हुई ग्रामीण महिला को देखकर हम अनुभव प्राप्त करते हैं। ये समस्त अनुभव हमारे मन में तैरते रहते हैं। हम इतने असंवेदनशील होते हैं कि वे हमारे मन में गहरे उतरकर परिपक्व नहीं हो पाते; यह तभी हो सकेगा जब हम अपने आसपास की प्रत्येक वस्तु के प्रति संवेदनक्षम होंगे। तब हम में एक दूसरे ही प्रकार का सोचना जन्म लेगा जो हमारे अनुभवों के घेरे में सीमित न होगा।

यदि आप किसी भी विश्वास (belief) को मजबूती से पकड़े रखते हैं और प्रत्येक वस्तु को किसी विशेष पूर्वाग्रह या परंपरा के माध्यम से देखते हैं तब जीवन के सत्य से आपका सम्बन्ध टूट जाता है ! क्या आपने कभी किसी ग्रामीण महिला को अपने सिर पर भारी बोझा लिए शहर की ओर जाते देखा है ? जब आप उसे देखते हैं, तब आपमें क्या घटित होता है ? आप क्या महसूस करते हैं ? अथवा आपने चूंकि इन औरतों को इस प्रकार कई बार जाते हुए देखा है और आप इसके इतने अभ्यस्त हो गए है कि आप यह मुश्किल से ही देख पाते हैं। माना आप किसी वस्तु को पहली ही बार देख रहे हैं, तब भी आप क्या करते हैं ? वस्तु को देखते ही आप उसे अपने पक्षपातों के साँचे में ढालने लग जाते हैं, क्या नहीं ढालते हैं ? उस वस्तु को आप अपने पूर्वाग्रहों से युक्त सिद्धान्तों के अनुसार ही अनुभव करते हैं, फिर आपके सिद्धान्त चाहे साम्यवाद के हों अथवा समाजवाद, पूंजीवाद या अन्य किसी वाद के हों। यदि आपका संबंध किसी भी वाद से नहीं है और आप किसी वस्तु को किसी विचार या विश्वास के पर्दे से नहीं देखते अपितु उसे सचमुच सीधे देखते हैं तब आप यह महसूस करेंगे कि आपके और उस वस्तु के बीच में एक अद्भुत संबंध स्थापित हो गया है। यदि आपमें ईर्ष्या नहीं है, पक्षपात नहीं है, यदि आप खुले हुए हैं, तब आपको अपने आसपास की प्रत्येक वस्तु आनंदमय और असाधारण जिवंत दिखाई देगी।

इसीलिए यह बहुत जरूरी है कि आप जब तक युवा हैं तभी से ये सारी वस्तुएँ समझ लें। आप सरिता में चलती हुई नाव के प्रति सजग हों, चलती हुई रेलगाड़ी को देखें, भारी बोझा उठाए हुए कृषक को देखें, अमीर व्यक्ति की धृष्टता को देखें, मंत्रियों, बड़े आदमियों और उन व्यक्तियों के अभिमान को देखें जो सोचते हैं कि वे बहुत कुछ जानते हैं। आप केवल देखें, आलोचना न करें। जिस क्षण आप आलोचना करने लग जाते हैं उसी क्षण उनके साथ के आपके संबंध टूट जाते हैं, आपके और उनके बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। आप यदि सिर्फ देखें तो व्यक्तियों और वस्तुओं के साथ आपके सीधे संबंध स्थापित हो जाएँगे। यदि आप सजगता से, गहराई से, बिना निर्णय और

बिना अनुमान किए देख सकते हैं तो आप महसूस करेंगे कि आपका सोचना आश्चर्य-जनक रूप से गहरा होता जा रहा है, तब आप क्षण-क्षण सीखते रहेंगे।

आपके चारों ओर जन्म और मृत्यु है। पैसे, प्रतिष्ठा और सामर्थ्य के लिए संघर्ष चल रहे हैं और इस कभी न समाप्त होनेवाली प्रक्रिया को ही हम जीवन कहते से ! यह सब क्या है ? क्या कभी आप को यह सब देखकर आश्चर्य नहीं होता, भले ही आपकी उम्र छोटी ही क्यों न हो ? आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश केवल प्रश्नों के उत्तर चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें कोई व्यक्ति ये सारी बातें बता दे, परन्तु आपको यह कोई नहीं बता सकता, क्यों कि जीवन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो पुस्तक द्वारा शमझी जा सके। इसका महत्त्व हम दूसरे के अनुकरण से अथवा किसी प्रार्थना से नहीं जान सकते। आपको और मुझे यह जीवन खुद के लिए समझना होगा। इसका महत्त्व तो हम तभी जान सकेंगे जब हम पूर्णतया जीवित हों, अत्यन्त सजग हों, सतर्क हों, सावधान हों, अपनी आसपास को प्रत्येक वस्तु में हमारी दिलचस्पी हो ! तभी हम जान सकेंगे कि सचमुच आनंदित होने का क्या अर्थ है ?

हममें से अधिकांश व्यक्ति दुखी हैं और वे दुखी इसलिए हैं कि उनके हृदय में प्रेम नहीं है। आपके हृदय में प्रेम तभी जागृत होगा जब आपके और दूसरे के बीच में कोई दीवार नहीं रह जाती है, जब आप, बिना धारणा बनाए, व्यक्तियों से मिलते हैं और उन्हें देखते हैं, जब आप पालयुक्त नौका को सरिता में देखते हैं और उसके सौन्दर्य का आनंद लेते हैं। आप अपनी पक्षपातपूर्ण मान्यताओं के बादलों से अपने निरीक्षण को ढकने न दें। वस्तुएँ जैसीं हैं उन्हें वैसी ही देखें। आप सिर्फ देखते रहें, तब आप यह महसूस करेंगे कि वृक्षों, पक्षियों और चलते व कार्य करते और हँसते हुए व्यक्तियों के सहज निरीक्षण से, उनके प्रति आपकी सजगता से, आप के अन्तर में कुछ घटित हो रहा है। इस अद्भुत घटना के घटे बिना और आपके हृदय में प्रेम के जागे बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं है ! इसीलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षक को इसके लिए शिक्षित किया जावे ताकि वह आपको ये सारी बातें समझने में सहयोग दे सके।

प्रश्नकर्ता : हम ऐश व आराम से क्यों रहना चाहते हैं ?

कृष्णमूर्ति : आप ऐशो-आराम से क्या मतलब समझते हैं ? स्वच्छ कपड़े पह-नना, शरीर को साफ रखना, अच्छा भोजन करना—क्या आप इसे ही आराम मानते हैं ? उस व्यक्ति के लिए यह आराम हो सकता है जो भूखा है, जिसने चिथड़े पहन रक्खे हैं और जो प्रतिदिन स्नान नहीं कर पाता है। अतः आराम का अर्थ व्यक्ति की इच्छा के साथ-साथ बदलता जाता है। यह सापेक्ष विषय है।

क्या आप जानते हैं कि आपमें क्या घटित होता है जब आप आराम को अधिक चाहने लग जाते हैं, जब आप आराम से बँध जाते हैं, जब आप सोफा या सुन्दर गद्देदार कुर्सी पर ही बैठना चाहते हैं ? तब आपका मन सोने लग जाता है। यह उचित है कि आप कुछ शारीरिक आराम चाहें; पर जब आप आराम पर अधिक ज़ोर देने लगते हैं अथवा इसे अत्यधिक महत्त्व देने लग जाते हैं तब इसका अर्थ यह होगा कि आपका मन खो गया है ! क्या आपने कभी देखा है कि अधिकांश मोटे व्यक्ति कितने खुश-मिजाज रहते हैं ? लगता है कोई भी वस्तु उनकी मुटाई की परतों को छेदकर उन्हें व्याकुल नहीं कर सकती ! यह एक शारीरिक अवस्था है; पर हमारा मन भी अपने पर मुटाई की परतें चढ़ा लिया करता है। वह नहीं चाहता कि उसे कोई प्रश्नों द्वारा अथवा अन्य प्रकार से क्षुब्ध करें ! इस प्रकार हमारा मन क्रमशः मंद और मूच्छित होने लगता है। आज की हमारी तथाकथित शिक्षा विद्यार्थियों को सुलाने का कार्य करती है। विद्यार्थी सचमुच यदि तीक्ष्ण और गंभीर प्रश्न करते हैं तब शिक्षक व्याकुल हो उठते हैं और यह कह कर कि "हमें अपना अभ्यासक्रम पूरा करना है", इन्हें टाल देते हैं।

अतः जब हमारा मन किसी प्रकार के आराम से अथवा किसी आदत या विश्वास से बँध जाता है, जब वह किसी विशेष स्थिति को "मेरा घर" कहने लगता है तब हमारा मन सोना आरंभ कर देता है। अतः "हम आराम से रहें या न रहें" महत्त्वपूर्ण विषय नहीं है, आवश्यकता तो इस बात की है कि हम इस 'आराम' के सत्य को समझें। वह मन, जो बहुत सृजनशील, सजग और सावधान है, कभी आराम से बँधता नहीं है; उसके लिए आराम का बहुत ज़्यादा महत्त्व नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि जो बहुत ही थोड़े कपड़े पहनता है, उसका मन सावधान है। सद्गुण को साधता हुआ एवं प्रभु और सत्य को पाने की इच्छा करता हुआ संन्यासी बाहर-बाहर से तो अत्यंत सरल लगता है फिर भी वह अन्दर से बहुत उलझा हुआ हो सकता है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि व्यक्ति अन्दर से अत्यन्त सरल हो; संयमी हो; जिसका अर्थ है कि उसका मन किसी विश्वास, भय एवम् अगणित अभिलाषाओं से बँधा हुआ न हो। यही वह मन है जो सही चिंतन, खोज और आविष्कार करने में समर्थ होता है।

प्रश्नकर्ता : जब तक हम अपनी परिस्थितियों से संघर्ष कर रहे हैं तब तक क्या हमारे जीवन में शान्ति आ सकती है ?

कृष्णमूर्ति : क्या आपको अपनी परिस्थितियों से संघर्ष नहीं करना चाहिये ? क्या आपको उन्हें खंडित नहीं करना चाहिए? और आपका यह वातावरण है क्या ? आपके माता-पिता के विश्वास, आपकी सामाजिक पृष्ठभूमि, आपकी परम्पराएँ, आपके भोजन के प्रकार, आपके आसपास की वस्तुएँ-जैसे धर्म, पादरी, अमीर, गरीब, ये ही तो आपकी

परिस्थितियाँ हैं ! क्या आपको ये परिस्थितियाँ खण्डित नहीं करनी होंगी ? यदि आप इनके खिलाफ विद्रोह नहीं करते हैं, यदि आप इन्हें स्वीकार कर लेते हैं, तो आपको शांति अवश्य प्राप्त होगी पर वह शांति मृत्यु की शांति होगी ! यदि आप इनका ध्वंस करने के लिए संघर्ष करते हैं और स्वयं के लिए यह खोज निकालते हैं कि सत्य क्या है तब महसूस करेंगे कि आप एक अद्भुत शांति को उपलब्ध हो रहे हैं, जहाँ स्थिरता नहीं है । यह बहुत ही आवश्यक है कि आप अपनी परिस्थितियों के साथ संघर्ष करें और आपको यह करना ही होगा । अतः शांति उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि आप अपनी परिस्थितियों को खंडित करें, उन्हें समझें, तब शांति अपने आप पैदा होगी । लेकिन यदि आप अपनी परिस्थितियों को स्वीकार कर शांति पा लेना चाहते हैं, तब आपका मन सो जाएगा और आप मूर्च्छित हो जाएँगे । इसीलिए बहुत ही छोटी उम्र से ही आपमें यह क्रांति की चिनगारी होना आवश्यक है, अन्यथा आपका जीवन व्यर्थ साबित होगा । क्या नहीं होगा ?

प्रश्नकर्ता : क्या आप प्रसन्न हैं अथवा नहीं ?

कृष्णमूर्ति : मैं नहीं जानता । इसके सम्बन्ध में मैंने कभी सोचा ही नहीं है । जिस क्षण आप यह सोचते हैं कि आप प्रसन्न हैं, तत्क्षण आपकी प्रसन्नता समाप्त हो जाती है । क्या नहीं हो जाती ? आप जब खेल रहे हों, आनंद से कोलाहल कर रहे हों, उस समय यदि आपको अपने आनन्द का भान हो जाए तब आप जानते हैं क्या होता है ? आपका आनंद भाग खड़ा होता है । क्या आपने कभी यह महसूस किया है ? अतः प्रसन्नता कुछ ऐसी वस्तु है जो आत्म-भान के क्षेत्र से परे है ।

जब आप अच्छे बनने का प्रयत्न करते हैं तब क्या आप अच्छे बन पाते हैं ? क्या अच्छाई साधी जा सकती है ? अथवा वह अपने आप आती है जब आप देखते हैं, निरीक्षण करते हैं, समझते हैं । इसी प्रकार जब आप अपनी प्रसन्नता को जान लेते हैं तब वह भाग खड़ी होती है । प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करना व्यर्थ है; क्योंकि जब आप इसके लिए प्रयत्न नहीं करते तभी आप प्रसन्न होते हैं ।

क्या आप जानते हैं कि 'नम्रता' शब्द का अर्थ क्या है ? क्या आप नम्रता साध सकते हैं ? यदि आप हर सुबह यह दुहराते रहें — "मैं नम्र बन रहा हूँ" तो क्या वह नम्रता होगी ? अथवा यह नम्रता अपने आप तब अंकुरित होगी जब आपमें अभि-मान न होगा, अहंकार न होगा । इसी प्रकार जब प्रसन्नता की बाधक वस्तुएँ नहीं रह जाती हैं,—जब चिंता, निराशा एवं स्वयं की सुरक्षा के लिये किये गये प्रयत्न समाप्त हो

जाते हैं, तब प्रसन्नता स्वतः उपस्थित हो जाती है। आपको तब उसके लिए प्रयत्न नहीं करने पड़ते।

आपमें से अधिकांश व्यक्ति चुप क्यों हैं? आप मेरे साथ चर्चा क्यों नहीं करते? क्या आपको यह ज्ञात है कि अपने विचारों और भावों को, चाहे वे बुरे भी क्यों न हो, प्रकट करना बहुत जरूरी है क्यों कि इसका आपके लिए बहुत महत्त्व है? मैं आपको बताऊँगा कि यह क्यों जरूरी है? यदि अभी से ही आप अपने विचारों को, अपनी भावनाओं को, चाहे संकोच के साथ ही क्यों न हो, प्रकट करना आरम्भ कर देते हैं तो जब आप बड़े होंगे, तब अपनी परिस्थितियों से, अपने माता-पिता से, समाज से, आप भयभीत नहीं होंगे। पर दुर्भाग्य से आपके शिक्षक आपको प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित नहीं करते हैं। वे आपसे यह नहीं पूछते कि आप क्या सोचते हैं?

प्रश्नकर्ता : हम क्यों रोते हैं? दुःख क्या है?

कृष्णमूर्ति : एक छोटा-सा बच्चा जानना चाहता है कि हम क्यों रोते हैं और दुख क्या है? आप तब रोते हैं जब कोई आपका खिलौना छीन लेता है, आपका दिल दुखाता है, आप खेल में हार जाते हैं, आपके माता-पिता या शिक्षक आपको फटकारते हैं या कोई आपको पीटता है। ज्यों-ज्यों आप बड़े होने लगते हैं त्यों-त्यों आप कम रोने लगते हैं क्यों कि आप स्वयम् को कठोर बना लेते हैं। बड़े हो जाने पर हममें से बहुत ही कम लोग रोते हैं क्यों कि हम तब बचपन की विलक्षण संवेदनक्षमता खो देते हैं। परन्तु दुख केवल किसी वस्तु का खो देना ही नहीं है, यह केवल स्थिरता ओर निराशा की भावना मात्र ही नहीं है, बल्कि यह कहीं ज्यादा गम्भीर वस्तु है। आप देखते हैं कि यह कुछ ऐसी वस्तु है जिसे हम बोधक्षमता का अभाव कहेंगे। यदि हममे बोधक्षमता (Understanding) नहीं है तो गहरा दुख है। यदि हमारा मन अपने घेरों से परे देखने की क्षमता नहीं रखता तो यही दुःख है।

प्रश्नकर्ता : हम बिना संघर्ष के किस प्रकार समग्रता प्राप्त करें?

कृष्णमूर्ति : आप संघर्ष का विरोध क्यों करते हैं? ऐसा ज्ञात होता है कि आप संघर्ष को बड़ी भयानक वस्तु मान बैठे हैं। मैं और आप इस समय संघर्ष में हैं, क्या नहीं हैं? मैं आपसे कुछ कहने का प्रयत्न कर रहा हूँ और आप नहीं समझ पा रहे हैं। अतः हमारे बीच एक प्रकार का टकराव है, संघर्ष है और इस संघर्ष, रगड़ और व्याकुलता में बुराई भी तो क्या है? क्या आप को क्षुब्ध होना ही नहीं चाहिए? जब तक आप संघर्ष को टालने का प्रयत्न करते रहेंगे, तब तक आपमें समग्रता नहीं आ सकती।

इस संघर्ष के माध्यम से ही, संघर्ष को पूर्णतया समझ लेने पर ही, समग्रता का आगमन हो सकता है।

यह समग्रता बड़ी ही कठिनाई से आ पाती है क्योंकि समग्रता का अर्थ है आपके व्यक्तित्व की पूर्ण एकरूपता—आपके समस्त कार्यों, कथनों और विचारों में एकता। इस समग्रता का आपमें तब तक आगमन नहीं हो सकता है जब तक कि आप अपने समस्त सम्बन्धों को नहीं समझ लेते हैं—समाज के साथ आपके सम्बन्ध, गरीब, ग्रामीण, भिखारी, लखपति और राज्यपाल के साथ आपके सम्बन्ध। इन सम्बन्धों को समझने के लिए आपको इनके साथ संघर्ष करना होगा, इन पर सन्देह करना होगा। केवल उन मूल्यों को स्वीकार करने से काम नहीं चलेगा जो धर्म, परम्परा, पादरी, आपके माता-पिता तथा समाज की आर्थिक पद्धति द्वारा स्थापित किए गए हों। अतः यह बहुत ही आवश्यक है कि आप क्रान्ति करें; अन्यथा आप कभी समग्रता को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे।



१०. प्रेम

मुझे पूरा विश्वास है कि हममें से प्रत्येक ने कभी-न-कभी यह महसूस किया ही होगा कि हरे-भरे खेतों, डूबते हुए सूरज, नीरव जल अथवा हिमाच्छादित शिखरों से एक अद्भुत शांति और सौंदर्य हमारी ओर प्रवाहित हो रहा है। परन्तु यह सौन्दर्य क्या है ? क्या यह उस वस्तु का बोध मात्र है, जिसे हम देखते हैं अथवा यह हमारी इंद्रियानुभूति से परे की वस्तु है ? यदि आप अपनी पोशाक में अच्छी रुचि रखते हैं, आप ऐसे रंगों का उपयोग करते हैं जिनमें सुमेल है, आपके आचरण गौरवपूर्ण हैं, आप गम्भीरता से बोलते हैं, आप अपने आपको सीधा (Erect) रखते हैं, तो ये सब सौन्दर्य का निर्माण करते हैं। क्या नहीं करते हैं ? लेकिन यह सब तो हमारी आंतरिक अवस्था की बाहरी अभिव्यक्ति मात्र है। यह तो उस कविता की भाँति है जिसे आपने लिखा है अथवा उस चित्र की तरह है जिसे आपने बनाया है। यदि आप एक हरे-भरे खेत को सरिता में प्रतिबिंबित होते देखते हुए भी उसके सौन्दर्य को बिना महसूस किए वहाँ से गुजर जाते हैं, यदि आप अबाबीलों को जल की सतह पर उड़ते हुए प्रतिदिन इसी प्रकार देखा करते हैं जिस प्रकार एक मछुआ देखता है, तो आपके इस देखने का आपके लिए बहुत ही नगण्य अर्थ होगा। लेकिन यदि आप इस प्रकार की प्रत्येक वस्तु के सौंदर्य के प्रति सजग रहते हैं तब आपके अन्तर में ऐसा क्या घटित होता है, जिससे आपके मुँह से यह बरबस निकल पड़ता है—"यह कितना सुन्दर है !" हमारे इस आंतरिक सौन्दर्य का रहस्य क्या है ? निःसंदेह बाहरी सौन्दर्य का भी महत्त्व है : ये सुन्दर लगनेवाले कपड़े, कलापूर्ण चित्र, आकर्षक फर्निचर या तो फर्निचर की एकदम से अनुपस्थिति, एकदम अनुरूप दीवारें, सही-सही आकार की खिड़कियाँ आदि। मैं केवल इस वाह्य सौन्दर्य के बारे में नहीं कर रहा हूँ, मैं तो आपसे यह कहना चाह रहा हूँ कि हमारे इस आन्तरिक सौन्दर्य की कीमिया क्या है ?

निःसन्देह इस आन्तरिक सौन्दर्य के लिए हममें पूर्ण-आत्म-समर्पण का होना अत्यन्त आवश्यक है—हम किसी से बँधे न हों, हममें प्रतिरोध न हो, प्रतिबंध न हो, प्रतिकार न हो। लेकिन आत्मसंयम के अभाव में यह आत्म-समर्पण गड़बड़ी पैदा कर देता है। क्या हम जानते हैं कि इस आत्म-संयम के क्या मानी हैं ? आत्म-संयम का अर्थ है—अपने पास जो थोड़ा-सा है उससे संतुष्ट रहना, "और ज्यादा" के बारे में न सोचना। हमारा आत्मसमर्पण इस प्रकार के आंतरिक आत्म-संयम से युक्त हो। यह आत्म-संयम

एक अद्‌भुत सरलता लिए होता है क्यों कि तब हमारा मन "और ज्यादा" पाने के लिए, लाभ के लिए सोचता नहीं है। यह आत्म-संयमयुक्त सरलता ही, जो आत्मसमर्पण से उत्पन्न होती है, हममें सौन्दर्य-सृजन की अवस्था को जन्म देती है। परन्तु यदि आपमें प्रेम नहीं है तो आप सरल नहीं बन सकते, संयमी नहीं बन सकते। आप भले ही सरलता और आत्म-संयम के सम्बन्ध में चर्चा कर लें; परन्तु प्रेम के अभाव में ये केवल बन्धन हैं और जहाँ बन्धन हैं वहाँ आत्म-समर्पण कहाँ ? जो प्रेम करता है केवल वही आत्म-समर्पण कर सकता है, अपने आपको पूर्णतया भूल सकता है। और वही इस सौन्दर्य-सृजन की अवस्था को उपलब्ध होता है।

निस्संदेह सौन्दर्य में बाह्य सौंन्दर्य का भी समावेश है, लेकिन आंतरिक सौन्दर्य के अभाव में केवल इन्द्रिय-जनित सौन्दर्य-बोध हमें अधःपतन और पृथकता की ओर अग्रसर करेगा। आपमें यह आंतरिक सौन्दर्य तभी पैदा होगा जब आप व्यक्तियों और वसुधा की समस्त वस्तुओं को प्रेम करेंगे और इस प्रेम के साथ ही आपमें अतिशय विचारशीलता, सजगता और धैर्य का आगमन होगा। आप भले ही संगीत और काव्य-कला के पूरे ज्ञाता हों, भले ही आप चित्रकार अथवा लेखक हों, लेकिन जब तक आपमें यह सृजनात्मक सौंदर्य नहीं है तब तक आप की योग्यता का बहुत ही कम अर्थ होगा।

दुर्भाग्य से हममें से अधिकांश व्यक्ति केवल 'कार्यपटु' हैं। हम परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेते हैं, आजीविका के लिए कोई न कोई कुशलता (Technique) प्राप्त कर लेते हैं, यदि हम अपने अन्तर की ओर बिना खयाल दिए अपनी कुशलता अथवा योग्यता को ही उन्नत करते हैं तो हम विश्व में कुरूपता और अस्तव्यस्तता का निर्माण करेंगे। लेकिन यदि हम इस आंतरिक सौंदर्य सृजनशीलता को जागृत करें तो यह हमारे बाह्य जीवन में भी प्रकट होगी और हममें एक सहज अनुशासन फलित होगा। लेकिन किसी बाहरी कुशलता को प्राप्त करने की अपेक्षा यह बहुत मुश्किल है क्यों कि इसका अर्थ है पूर्ण आत्मसमर्पण—एक ऐसा आत्मसमर्पण जहाँ न भय है, न बंधन है, न प्रतिरोध है, न अवरोध है, न चुनाव है। और हम यह आत्म-समर्पण तभी कर सकते हैं जब हममें आत्म-संयम हो, गहरी आंतरिक सरलता हो। हम बाहर से भले ही सरल हो जाएँ, हमारे पास बहुत थोड़े कपड़े हों, हम दिन में केवल एक बार भोजन करते हों, लेकिन यह आत्म-संयम नहीं है। आत्म-संयम तो तभी फलित होता है जब हमारा मन अनन्त अनुभूति के योग्य हो। वह सब कुछ अनुभव करता हुआ भी एकदम सरल हो। हममें इस अवस्था का आगमन तभी हो सकता है जब हमारा मन "मैं ज्यादा प्राप्त करूँ" इस दृष्टि से सोचता ही न हो। वह समय के माध्यम से कुछ भिन्न बनने की इच्छा ही न करता हो।

मैं आपको जो बात समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ वह आपके लिए समझने में भले ही कठिन हो, फिर भी यह आपके लिए अत्यंत आवश्यक है। आप देखते हैं कि कार्य-पटु (Technicians) कभी सृजक नहीं होते। विश्व में बहुत बड़ी मात्रा में कार्यकुशल लोग हैं, जो जानते हैं कि क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए, पर वे सृजनकर्ता नहीं हैं। अमेरिका में ऐसे-ऐसे यंत्र हैं जो कुछ ही मिनिटों में गणित के प्रश्नों को इतनी तेज़ी से हल कर लेते हैं कि इतना कार्य करने में किसी व्यक्ति को सौ वर्ष लग जाएँ, यदि वह दस घन्टे प्रतिदिन भी यह कार्य करे। परंतु ये यंत्र सृजन नहीं कर सकते और इन्सान भी ज्यादा से ज्यादा यंत्र की भाँति होते जा रहे हैं। यदि कभी ये क्रांति भी करते हैं तो वह क्रांति भी एक सीमित दायरे में ही होती है। इस प्रकार की क्रांति, क्रांति ही नहीं है।

अतः यह ज्ञात करना अत्यंत आवश्यक है कि सृजनशील होने का क्या अर्थ है ? आप सृजनशील तभी बन सकते हैं, जब आप में यह आत्म-समर्पण हो जिसका अर्थ है आप में कोई बन्धन न हो, मिट जाने का डर न हो, लोभ न हो और कहीं पहुँचने की इच्छा न हो। तब आपमें महान आत्म-संयम, सरलता और इसी के साथ प्रेम उदय होता है। यही सौंदर्य है और यही सृजन की अवस्था है।

प्रश्नकर्ता : क्या मृत्यु के बाद आत्मा जीवित रहती है ?

कृष्णमूर्ति : यदि आप यह सचमुच ही जानना चाहते हैं तो आप इसे कैसे ज्ञात करेंगे ? क्या शकराचार्य, बुद्ध अथवा ईसा की पुस्तकें पढ़कर अथवा अपने किसी विशिष्ट नेता या संत की बात सुनकर ? पर ये सब असत्य हो सकते हैं। यदि आपको यह स्वीकार है, तभी आपका मन खोज करने की अवस्था में हो सकेगा।

सर्वप्रथम आपको यह निश्चित रूप से ज्ञात कर लेना होगा कि क्या कोई आत्मा जैसी वस्तु है जो जीवित रहती है ? आत्मा क्या है ? क्या आप स्वयम् यह जानते हैं कि आत्मा क्या है ? अथवा आपने इसे केवल इसीलिए मंजूर कर लिया है कि आपको इसके सम्बन्ध में किसी ने कहा है—आपके माता-पिता ने, आपके धर्मगुरु ने अथवा किसी शास्त्र ने अथवा आपके सांस्कृतिक वातावरण ने ?

'आत्मा' शब्द से कुछ ऐसा अर्थ ध्वनित होता है जो हमारे भौतिक अस्तित्व से परे हो। ऐसा ही है न ? आपका यह भौतिक शरीर है, फिर आपका चरित्र है, आपकी वृत्तियाँ है, आपके गुण हैं और इनसे भी आगे आत्मा है जैसा कि आप कहते हैं। यदि वह आत्मा कहीं वास्तव में होगी तो अलौकिक होगी, समयातीत होगी। और आप पूछ रहे हैं कि वह दिव्य वस्तु क्या मृत्यु के बाद जीवित रहती है ? यह आपके प्रश्न का एक भाग हुआ।

दूसरा भाग है–यह मृत्यु क्या है ? क्या आप जानते हैं कि मौत क्या है ? मौत के बाद हमारा अस्तित्व रहता है अथवा नहीं ? लेकिन यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं है; वास्तविक प्रश्न तो यह है कि आप जीवित रहते हुए यह जान सकें कि मृत्यु क्या है ? यदि आपसे कोई यह कहे कि मौत के बाद अस्तित्व है अथवा यह कि मौत के बाद अस्तित्व नहीं है; तो इस बात का आपके लिए क्या महत्त्व है ? क्यों कि तब भी आप इसे जान तो नहीं सकते । लेकिन आप अपने लिए यह अवश्य जान सकते हैं कि यह मौत क्या है–मरने के बाद नहीं अपितु तब जब आप स्वास्थ्य और शक्ति के साथ जी रहे हैं, सोच रहे हैं, महसूस कर रहे हैं ।

शिक्षा का यह भी एक कार्य है । शिक्षित होने का केवल यही अर्थ नहीं कि आप गणित, इतिहास या भूगोल में कुशलता प्राप्त कर लें अपितु इसका यह भी अर्थ है कि आप इस अद्भुत वस्तु 'मौत' को भी समझने की योग्यता प्राप्त करें— तब नहीं जब आपका शरीर नष्ट होने लगा हो; लेकिन तब, जब आप हँस रहे हों, वृक्ष पर चढ़ रहे हों, नाव चला रहे हों अथवा जब आप तैर रहे हों । मौत अज्ञात है और जीते जी अज्ञात को जानना बहुत मानी रखता है ।

प्रश्नकर्ता : जब हम बीमार पड़ते हैं तब हमारे माता-पिता हमारी इतनी चिंता क्यों करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : अधिकांश माता-पिता केवल आंशिक रूप से ही अपने बच्चों की देखभाल करते हैं, उनका खयाल रखते हैं; लेकिन उनके बीमार पड़ने पर बड़ी चिंता करते हैं; इससे यह ध्वनित होता है कि उनका सम्बन्ध उनके बच्चों से उतना नहीं जितना स्वयम् से है । वे तुम्हें मरने देना नहीं चाहते, क्योंकि वे कहते हैं, "यदि हमारा बच्चा मर गया तो हमारा क्या होगा ?" यदि माता-पिता सचमुच अपने बच्चों को प्यार करते, तो आप जानते हैं, तब क्या होता ? जब सचमुच आपके माता-पिता आपसे प्रेम करते होते तो वे यह भी देखते कि विश्व में युद्ध न हों, गरीबी न हो, समाज आपको और आपके चारों ओर किसी को भी नष्ट न करे, फिर चाहे वह कोई ग्रामीण हो, नगर का हो अथवा पशु हो । चूंकि माता-पिता सचमुच अपने बच्चों से प्यार ही नहीं करते, अतः विश्व में युद्ध है, गरीब और अमीर हैं । माता-पिता अपना स्वार्थ अपने बच्चों में उंड़ेल देते हैं । वे अपने बच्चों के माध्यम से अपना अस्तित्व बनाए रखने की आशा करते हैं; इसीलिए आप जब गंभीर रूप से बीमार पड़ते हैं तब वे चिंता करते हैं । अतः वे अपने ही दुखों से सम्बन्धित हैं; लेकिन वे इस बात को मन्जूर नहीं करेंगे ।

आप देखते हैं कि संपत्ति, जमीन, नाम, धर्म और परिवार, ये सब स्वयम् को बनाए रखने के साधन हैं, जिसे आप अमरता भी कहते हैं; और जब बच्चों को कुछ हो जाता है तब माता-पिता बहुत ही भयभीत हो जाते हैं, दुखी हो जाते हैं, क्यों कि वे मूलतः स्वयम् से ही सम्बन्धित हैं। यदि माता-पिता सचमुच अपने बच्चों को प्यार करते तो पूरा समाज ही रातोंरात बदल जाता। हमारी शिक्षा दूसरे ही प्रकार की होती। हमारे घर की हालत ही दूसरी होती। विश्व में युद्ध नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : क्या मन्दिर सभी के लिए पूजा हेतु खुले होने चाहिए ?

कृष्णमूर्ति : मन्दिर क्या है ? यह एक पूजा का स्थान है, जिसमें ईश्वर का एक प्रतीक रखा है। यह प्रतीक मन द्वारा सोचा गया है और मनुष्य के हाथों द्वारा यह पत्थर से गढ़ा गया है। वह पत्थर, वह मूर्ति, ईश्वर नहीं है। क्या वह ईश्वर है ? वह तो केवल एक प्रतीक है और प्रतीक एक छाया की भाँति है, जो सूरज के प्रकाश में आपके पीछे चलती है; पर छाया 'आप' तो नहीं हो सकते; और ये मूर्तियाँ, ये प्रतीक जो मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं, ईश्वर नहीं हैं, सत्य नहीं हैं। अतः मन्दिर में कौन प्रविष्ठ होता है और कौन प्रविष्ठ नहीं होता है, इसका क्या अर्थ है ? फिर क्यों इस बात को लेकर झगड़ा होता है ? सत्य तो एक सूखी पत्ती के नीचे, रास्ते के किनारे पड़े एक पत्थर में मिल सकता है; यह उस पानी में, जो संध्या के सौंदर्य को प्रतिबिम्बित करता है, बादलों में, भारी बोझा ढोती हुई स्त्री की मुस्कान में उपलब्ध हो सकता है। यह ज़रूरी नहीं कि मन्दिर में ही सत्य हो। सत्य तो समस्त विश्व में बिखरा पड़ा है और साधारणतया मन्दिर में सत्य होता भी नहीं, क्योंकि इसका निर्माण मनुष्य के भय के कारण हुआ है, क्योंकि यह मानव की सुरक्षा की अभिलाषा और उसकी जाति और सम्प्रदाय के विभाजन पर आधारित है। यह विश्व हमारा विश्व है, हम सभी मानव एक साथ यहाँ रहते हैं। यदि कोई मन्दिर में ईश्वर की खोज कर रहा है तो वह मन्दिर को हमसे दूर ले जाता है क्यों कि वे मनुष्यों का विभाजन करते हैं। ईसाइयों का गिरजाघर, मुसलमानों की मसजिदें, आपका हिन्दू मन्दिर, ये सब मनुष्यों को बाँटते हैं। और एक व्यक्ति जो परमात्मा को खोज रहा हो, वह इनमें से किसी को भी न चाहेगा। अतः यह प्रश्न कि कोई मन्दिर में प्रवेश करे या न करे मात्र राजनैतिक विषय रह जाता है, इसमें कोई सत्य नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अनुशासन का हमारे जीवन में क्या स्थान है ?

कृष्णमूर्ति : दुर्भाग्य से हमारे जीवन में अनुशासन का बहुत ही ऊँचा स्थान है। क्या नहीं है ? आपके जीवन का एक बहुत बड़ा भाग 'यह करो', 'वह मत करो' से अनुशासित है। आपको यह कहा जाता है कि आप प्रातः कब उठें, क्या खाएँ, क्या न खाएँ, आप क्या जानें, क्या न जाने। आपको यह भी कहा जाता है कि आप पढ़ें, कक्षाओं में जाएँ, परीक्षाएँ उत्तीर्ण करें, आदि आदि। आपके माता-पिता, आपके शिक्षक, आपका समाज, आपकी परम्परा, आपके शास्त्र सभी आपको कहते हैं कि 'आप क्या करें' और 'क्या नहीं करें' ? अतः आपका पूरा जीवन ही इस अनुशासन द्वारा बाँधा जाता है और पाला जाता है ! क्या यह सच नहीं है ? 'क्या करना' और 'क्या नहीं करना' के आप बन्दी बन जाते हैं, ये आपके कारागृह की छड़ें बन जाती हैं।

अब हम यह देखें कि हमारे उस मन के साथ क्या घटित होता है जो अनुशासन से बँधा है ? निश्चित रूप से आप जब किसी वस्तु से भयभीत हैं, जब आप किसी वस्तु का प्रतिकार करना चाहते हैं तब अपने सहारे के लिए आप नियन्त्रण चाहते हैं, फिर आप या तो स्वयम् अपनी इच्छा से यह कर लेते हैं या फिर आपका समाज — आपके माता-पिता, आपके शिक्षक, आपकी परम्परा, आपके शास्त्र आपके लिए यह कर देते हैं, लेकिन यदि आप बिना किसी भय के स्वयम् जाँच करें, खोजें, सीखें और समझें तब क्या इस अनुशासन की आवश्यकता रह जाएगी ? तब आपका यह समझना ही अपने आप में एक सही अनुशासन को जन्म देगा जो, जबरदस्ती से अथवा थोपने से नहीं आता है।

आप इसपर अवश्य सोचें; क्यों कि जब आप किसी भय के माध्यम से अनुशासित किए जाते हैं, समाज की जबरदस्ती से कुचले जाते हैं, माता-पिता और शिक्षकों द्वारा निर्दयता से शासित किए जाते हैं, तब आप स्वतन्त्र नहीं रह जाते हैं, तब आपका आनन्द समाप्त हो जाता है, और सहज स्फूर्ति (Initiative) गायब हो जाती है। संस्कृति जितनी पुरानी होगी, परम्पराओं का बोझ उतना ही ज्यादा होगा। ये वे परम्पराएँ हैं जो आपको अनुशासित करती हैं कि 'आपको क्या करना चाहिए' और 'क्या न करना चाहिए'। इसीलिए आप बोझिल हो जाते हैं और मानसिक दृष्टि से सपाट कर दिए जाते हैं, मानो कोई स्टीम रोलर आपको कुचलता हुआ चला गया हो। भारत में यही घटित हुआ है। परम्पराओं का बोझ इतना ज्यादा है कि हमारी सारी सहज स्फूर्ति ही नष्ट हो गई है और हम व्यक्ति के रूप में रह ही नहीं गए हैं, हम तो समाज का एक अंग बने बैठे हैं और उसी के साथ सन्तुष्ट हैं। क्या आप मेरी बात

समझ रहे हैं ? आपके माता-पिता यह नहीं चाहते हैं कि आप क्रांति करें, आपके शिक्षक यह नहीं चाहते हैं कि आप समाज से अलग हों। अतः आजकी शिक्षा का उद्देश्य केवल यही रह गया है कि वह आपको समाज के बने बनाए ढांचे के अनुरूप करे। तब आप समग्र मानव कैसे रह सकते हैं ? क्यों कि भय आपके हृदय को विदीर्ण कर रहा होता है। और जब तक यह भय है, तब तक हमारे जीवन में न तो आनन्द उपलब्ध हो सकता है और न सृजनशीलता।

प्रश्नकर्ता : मन्दिर के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए अभी-अभी आपने बताया था कि ईश्वर का प्रतीक परछाईं के समान है; पर हम क्या वास्तविक मनुष्य की अनुपस्थिति में उसको परछाईं देख सकते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप परछाईं से संतुष्ट हो जाते हैं ? यदि आप भूखें हैं तो क्या केवल भोजन की ओर देखकर तृप्त हो जाते हैं ? फिर क्यों आप मन्दिर के अन्दर की परछाईं में संतुष्ट होते हैं ? यदि आप गहराई से सत्य को जानना चाहते हैं तो आप परछाईं को छोड़ देंगे। पर आप देखते हैं कि आप पत्थर की मूर्ति से, परछाईं से, प्रतीक से सम्मोहित हैं। देखिए, विश्व में क्या घटित हुआ है ? मानव भिन्न-भिन्न विभागों में बँट गए हैं, क्योंकि वे एक विशिष्ट परछाईं की पूजा किसी मन्दिर, किसी मसजिद या किसी गिरजाघर में करते हैं। ये छायाएँ अनेकों प्रकार की हो सकती हैं; पर सत्य तो समग्र है; वह विभाजित नहीं किया जा सकता और इस सत्य के लिए कोई भी रास्ता नहीं है—न ईसाई का है, न मुसलमान का है, न हिन्दू का है और न किसी और का।

प्रश्नकर्ता : परीक्षाएँ धनी छात्र-छात्राओं के लिए, जिनका भविष्य निश्चित है, भले ही आवश्यक न हों; लेकिन क्या वे उन गरीब विद्यार्थियों के लिए आवश्यक नहीं हैं जिन्हें आजीविका के लिए तैयार करना होता है ? और विशेष कर समाज जैसा है यदि उसे हम वैसा ही स्वीकार कर लें तो क्या ये परीक्षाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण न होंगी ?

कृष्णमूर्ति : समाज जैसा है आप उसे वैसा ही निश्चितता से स्वीकार कर लेते हैं। पर क्यों ? आप, जो गरीब नहीं हैं, जो सम्पन्न परिवार के हैं, क्यों नहीं क्रांति करते ? एक समाजवादी या साम्यवादी की तरह से नहीं अपितु समाज के इस सम्पूर्ण ढाँचे के खिलाफ ? आप ऐसा कर सकने में समर्थ हैं; फिर क्यों आप अपनी मेधा का उपयोग सत्य की खोज में नहीं करते, क्यों नहीं आप नूतन समाज का निर्माण करते ? गरीब क्रांति नहीं कर पा रहा है क्यों कि उसमें न तो सामर्थ्य है और न सोचने के लिए

समय ही। वह पूर्णतया अपनी आजीविका कमाने में लगा है, लेकिन आप के पास फुरसत है, अपनी मेधा को उपयोग में लाने के लिए समय है; फिर आप क्यों नहीं क्रांति करते ? आप क्यों नहीं खोजते कि सही समाज क्या है ? सच्चा समाज क्या है ? फिर आप एक नूतन सभ्यता का निर्माण करें। यदि आप यह क्रांति प्रारम्भ नहीं करते हैं तो स्पष्ट है कि गरीब इसे प्रारम्भ नहीं कर सकेंगे।

प्रश्नकर्ता : क्या धनी लोग गरीबों की भलाई के लिए अपनी अधिकांश सम्पत्ति दे देने के लिए कभी तैयार होंगे ?

कृष्णमूर्ति : हम यह चर्चा नहीं कर रहे हैं कि धनी गरीबों की भलाई के लिए क्या दें। वे चाहे कितना भी दें गरीब सन्तुष्ट नहीं होंगे; पर यह हमारी समस्या नहीं है। क्या आप जो धनी हैं, जिनके पास अपनी मेधा को उपयोग करने का मौका है, क्रांति के माध्यम से नूतन समाज का निर्माण नहीं कर सकते ? यह आप पर निर्भर है, किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं। यह हममें से प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर है; किसी धनी, किसी गरीब या साम्यवादी पर नहीं। आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्तियों में यह क्रांति की चेतना, यह ढाँचा तोड़ने की उत्कंठा, यह खोजने की लालसा ही नहीं है; जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।



११. ध्यान

क्या आप कभी अपनी आँखें बन्द किए एकदम शान्त बैठे हैं और क्या अपनी विचार-प्रक्रिया का निरीक्षण किया है ? क्या आपने कभी अपने मन को कार्य करते हुए अथवा आपके मन ने स्वयम् को हलन-चलन करते हुए देखा है ? इसलिए कि आप यह देख सकें–आपके विचार और आपकी भावनाएँ कैसी हैं, आप किस प्रकार वृक्षों, फूलों, पक्षियों और व्यक्तियों को देखते हैं ? आप किसी सलाह का कैसे उत्तर देते हैं ? किस प्रकार किसी नए विचार के प्रति आप में प्रतिक्रिया होती है ? यदि आप यह नहीं कर रहे हैं तो आप एक बहुत सुन्दर अवसर खो रहे हैं। यह जानना कि हमारा मन कैसे कार्य करता है, शिक्षा का मूल उद्देश्य है। यदि आप यह नहीं जानते हैं कि आपके मन में किस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है; यदि आपका मन अपने ही क्रियाकलापों से अपरिचित है तो आप कभी भी यह नहीं जान सकेंगे कि समाज क्या है ? चाहे आप इसके संबंध में पुस्तकें पढ़ लें, भले ही आप समाज-शास्त्रों का अध्ययन कर लें, लेकिन यदि आप अपने ही मन की क्रियाओं से अपरिचित हैं तो आप यह कभी नहीं जान सकते कि समाज क्या है ? क्योंकि आपका मन समाज का एक अंश है, यही समाज है। आपकी प्रतिक्रियाएँ, आपके विश्वास, आपका मन्दिर में जाना, आपका पहनावा, वे कार्य जो आप करते हैं अथवा नहीं करते हैं, आपका चिंतन—इनसे ही तो समाज बनता है। आपके मन में जो कुछ चल रहा है, उसीकी प्रतिमूर्ति यह समाज है। अतः आपका मन समाज से पृथक् नहीं है, यह आपकी संस्कृति, आपके धर्म, आपकी भिन्न-भिन्न जातियों, आपकी महत्त्वाकांक्षाओं और संघर्षों से भिन्न नहीं है। यही सारा समाज है और आप इसके अंग हैं। समाज से पृथक आपकी कोई सत्ता नहीं है।

समाज सदा से ही युवकों के विचारों को नियंत्रित करने, उन्हें आकार देने और मोड़ने का प्रयत्न कर रहा है। जन्म से ही, जब से आप पर प्रभाव पड़ने लगते हैं, आपके माता-पिता निरन्तर आपको यह कहते रहते हैं –आप क्या करें, क्या न करें, किस पर विश्वास करें, किसपर न करें। आपको यह भी कहा जाता है कि परमात्मा है अथवा परमात्मा नहीं है लेकिन एक राज्य ऐसा अवश्य है जिसका सम्राट् ईश्वर का दूत है। बचपन से ही ये सारी बातें आपके मन में ठूंसी जाती हैं; जिनसे आपका युवा, संवेदनशील, जिज्ञासु, उत्सुक और खोजी मन संस्कारों के सींकचों में कैद हो जाता है, समाज के ढांचे में ढल जाता है और आपका क्रांतिकारी रूप समाप्त हो जाता है।

चूँकि आप समाज के घरों में रह कर सोचने के अभ्यस्त हो जाते हैं, अतः यदि आप कभी क्रांति भी करते हैं तो वह भी एक घेरे में होकर रह जाती है। यह उसी प्रकार की क्रांति हुई जैसी कि कैदी अच्छे भोजन और अधिक सुविधाएँ पाने के लिए बंदीगृह में करते हैं। जब आप परमात्मा की खोज करते हैं अथवा सही शासन की स्थापना के लिए प्रयत्न करते हैं तब भी आप यह सब समाज के बने बनाए ढाँचे में ही करते हैं, जो कहता है—'यह सत्य है', 'वह झूठ है', 'अमुक अच्छा है', 'अमुक खराब है','यह सुयोग्य नेता है', 'वे संत हैं'। अतः आपकी क्रांति उस तथाकथित क्रांति के समान होकर रह जाती है जो महत्वाकांक्षी और अत्यधिक चतुर व्यक्तियों द्वारा लाई जाती है जो हमेशा भूतकाल से बंधी रहती है। न तो यह विद्रोह है और न यह क्रांति है। यह तो केवल एक अपेक्षाकृत कुछ ऊँचा और पराक्रमी कार्य है जो घेरों में सीमित है। वास्तविक बगावत और वास्तविक क्रांति तो इन घेरों को भंजित करना और उनके बाहर खोज करना है।

आप देखते हैं कि समस्त सुधारक, चाहे वे कोई भी क्यों न हों, केवल कारागृह के अन्दर की स्थितियों का सुधार करना चाहते हैं। वे आपको यह कभी नहीं कहते हैं कि आप विरोध करें। वे परम्परा और अधिकार की दीवारें तोड़ने और उन संस्कारों को समाप्त करने के लिए कभी नहीं कहते हैं, जिन्होंने आप का मन जकड़ रक्खा है। और वही सच्ची शिक्षा है; जो आपको केवल कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना अथवा कुछ लिखना ही न सिखावे जिसे आपने दिलचस्पी से सीखा है, अपितु आपको ये कारागृह की दीवारें देख सकने में सहायता करें जहाँ आपका मन कैद हो जाता है। समाज हम सभी को प्रभावित करता है और वह निरंतर हमारे सोचने को आकार देता है। समाज का यह बाहरी दबाव क्रमशः हमारे मन में गहरा उतर जाता है। यह चाहे कितनी ही गहराई तक पहुँच जाय फिर भी यह बाहरी ही रहेगा। जब तक आप संस्कारों को खंडित नहीं कर देते तब तक 'आंतरिक' नाम की कोई वस्तु नहीं है। आपको यह जानना ही होगा कि आप क्या सोच रहे हैं। क्या आप एक हिंदू या एक मुसलमान या एक ईसाई की भाँति सोच रहे हैं इसलिए कि संयोगवश आप उससे सम्बन्धित हैं? आपको यह ज्ञात करना होगा कि आप किसमें विश्वास करते हैं और किसमें नहीं करते हैं। आप जब तक इन सामाजिक घेरों के प्रति सावधान नहीं रहते और इनसे मुक्त नहीं हो जाते तब तक आप बन्दी ही बने रहेंगे, भले ही आप स्वयम् को स्वतन्त्र मान बैठे हों।

लेकिन आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्ति कारागृह में ही क्रांति करने से मतलब रखते हैं। हम कुछ अच्छा भोजन, कुछ ज़्यादा प्रकाश, कुछ बड़ी खिड़की

चाहते हैं ताकि आसमान का कुछ ज़्यादा भाग देख सकें। हम तो केवल इस बात से सम्बन्ध रखते हैं कि मन्दिर में बहिष्कृत व्यक्ति प्रवेश करें या नहीं, हम किसी जाति विशेष को तोड़कर उसके स्थान पर कुछ ज़्यादा ऊँची जाति का निर्माण करते हैं। इस प्रकार हम बन्दी बने रहना चाहते हैं। और कारागृह में स्वतन्त्रता कहाँ? स्वतंत्रता तो इन घेरों से, इन कारागृहों से बाहर है; परन्तु इन कारागृहों से मुक्ति पाने के लिए आपको इन्हें पूर्णतया समझना होगा; जिसका अर्थ है अपने ही मन को समझना। इसी मन ने इस वर्तमान सभ्यता का, इस परम्परा से आबद्ध संस्कृति और समाज का निर्माण किया है। अतः अपने मन को समझे बिना केवल साम्यवादी या अन्य किसी अन्य वादी की तरह क्रांति करने का कोई अर्थ नहीं है। इसीलिए आत्मज्ञान का होना अत्यंत आवश्यक है; जिसका अर्थ है अपने विचारों व भावों के प्रति पूर्णतया सजग रहना और यही शिक्षा है। क्यों कि जब हम अपने आपके प्रति पूर्णतया सजग हो जाते हैं, तब हमारा मन अत्यंत संवेदनक्षम और सजग बन जाता है।

आप यह करके देखें–सुदूर भविष्य में नहीं अपितु कल अथवा आज संध्या। यदि आपके कमरे में ज़्यादा व्यक्ति हों अथवा आपके घर में भीड़ हो तो आप कहीं दूर चले जावें, आप किसी वृक्ष के तले या सरिता के किनारे बैठ जाएँ और शांति से निरीक्षण करें कि आपका मन किस प्रकार कार्य कर रहा है। आप इसे सुधारें नहीं। आप यह न कहें, "अमुक सत्य है, अमुक गलत है।" आप इसी तरह इसे देखें मानो आप कोई चित्रपट देख रहे हों। आप जब चित्रपट देखने जाते हैं, तब आप स्वयं इसमें भाग नहीं लेते, इसमें अभिनेता और अभिनेत्रियाँ भाग लेती हैं। आपतो केवल दर्शक होते हैं। ठीक इसी प्रकार आप अपने मन का निरीक्षण करें। सचमुच, यह बड़ा ही आनंदप्रद होगा—चित्रपट से भी ज्यादा आनंदप्रद— क्यों कि यह मन समस्त विश्व का एक अंश है; इसमें वह सब कुछ विद्यमान है, जो अखिल मानव समाज ने अनुभव किया है। क्या आप समझ रहे हैं? आपका मन ही मानवता है और जब आप इसे होश में देखेंगे तब आपमें अनंत करुणा का प्रादुर्भाव होगा। इसी बोध से आपमें असीम प्रेम का उदय होगा और तभी आप सुन्दर वस्तुओं को देखकर यह जानेंगे कि सौन्दर्य क्या है?

प्रश्नकर्ता : आपने यह सब कैसे सीखा जिसके सम्बन्ध में आप चर्चा कर रहे हैं? हम यह सब कैसे सीख सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : यह एक अच्छा प्रश्न है, है न? अब यदि मैं अपने सम्बन्ध में कुछ बताऊँ तो मैं यह कहूँगा कि मैंने इसके लिए कोई पुस्तक नहीं पढ़ी है। मैंने न तो

उपनिषद पढ़े हैं, न भगवद्गीता और न मानसशास्त्र के सम्बन्ध में ही कुछ अध्ययन किया है। लेकिन जैसा कि मैंने आपसे कहा—यदि आप अपने ही मन का निरीक्षण करें तो आपको ज्ञात होगा कि वहाँ यह सब कुछ विद्यमान है। जब आप आत्म-ज्ञान की यात्रा पर निकल पड़ते हैं तब पुस्तकों का महत्त्व ही नहीं रह जाता। यह एक अद्भुत प्रदेश में प्रवेश करने के समान है, जहाँ आप नई वस्तुएँ खोजना आरम्भ करते हैं और आश्चर्यजनक अनुसन्धान करते हैं। लेकिन यदि आप स्वयं को महत्त्व देने लगते हैं, तब यह सब नष्ट हो जाता है। जिस क्षण आप यह कहते हैं – मैंने यह खोज की है, मैं बड़ा आदमी हूँ, क्योंकि मैंने अमुक-अमुक अनुसन्धान किए हैं – उसी क्षण आप भटक जाते हैं। यदि आपको लम्बी यात्रा करनी है तो आपको बहुत कम वस्तुएँ ले जानी होंगी, यदि आप अनन्त ऊँचाइयों पर चढ़ना चाहते हैं तो आपको निर्भार होना होगा।

अतः यह प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आत्मज्ञान और मन के निरीक्षण से अनुसन्धान और बोधक्षमता का उद्गम होता है। आप अपने पड़ोसी के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, आप क्या बातें करते हैं, आप कैसे चलते हैं, व्यक्तियों के साथ कैसे व्यवहार हैं, कैसे आप वृक्ष की शाखा काटते हैं, ये समस्त बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये समस्त बातें दर्पण के समान हैं, जिसमें आप अपने वास्तविक रूप का दर्शन कर सकते हैं। यदि आप होश में हों तो आप क्षण-क्षण नवीन वस्तु का आविष्कार कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : हम किसी के सम्बन्ध में धारणा बनावें या नहीं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आपको व्यक्तियों के सम्बन्ध में धारणायें बनानी चाहिए ? क्या किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में मान्यताएँ या अनुमान बनाने चाहिए ? जब आप अपने शिक्षक के सम्बन्ध में कोई मान्यता बना लेते हैं तब आपके लिए किसका महत्त्व रह जाता है ? शिक्षक का नहीं अपितु आपकी उस मान्यता का जो आपने उनके सम्बन्ध में बनाई है और हमारे जीवन में यह नित्य घटित होता है। क्या नहीं होता ? हम अनेकों व्यक्तियों के सम्बन्ध में अपनी मान्यताएँ रखते हैं। हम कहा करते हैं –अमुक अच्छा है, अमुक झूठा है, अमुक अन्धविश्वासी है, अमुक यह करता है, अमुक वह करता है। इस प्रकार हम अपने और व्यक्तियों के बीच में विचारों का पर्दा बना लेते हैं। अतः हम सचमुच कभी किसी व्यक्ति से मिलते ही नहीं हैं।

आज हम कह देते हैं कि अमुक व्यक्ति इस वस्तु का निर्माता है, क्योंकि हमने पहले कभी उसे यह वस्तु बनाते देखा था। अतः हमारे लिए आज पिछली घटना महत्त्वपूर्ण हो जाती है। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? आप जब किसी व्यक्ति को

वस्तु बनाते देखते हैं और आप उस वस्तु को या तो अच्छी या बुरी समझते हैं तब आप उस व्यक्ति के सम्बन्ध में भी अच्छी या बुरी मान्यता बना लेते हैं। अब यदि आप उस व्यक्ति से दस दिनों या एक वर्ष के बाद मिलते हैं तब भी आप उससे अपनी इन्हीं मान्यताओं के माध्यम से मिलते हैं। हो सकता है, तब तक वह व्यक्ति बदल गया हो। अतः "वह ऐसा व्यक्ति है" यह कहना असत्य है। हाँ, आप यह कह सकते हैं "वह गत फरवरी में इस प्रकार का था" क्योंकि एक वर्ष में वह पूर्णरूप से परिवर्तित हो सकता है। "मैं उसे जानता हूँ" आपका यह कहना भी बिलकुल गलत हो सकता है क्योंकि आप उसे केवल कुछ सीमा तक जानते हैं। पर इससे ज़्यादा कुछ नहीं। अतः यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आप व्यक्ति से सदैव ताज़गी से मिलें, अपने पक्षपातों, निश्चित मान्यताओं और धारणाओं के माध्यम से नहीं।

प्रश्नकर्ता : महसूस करना क्या है ? हम कैसे महसूस करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : यदि आपने कभी मानसशास्त्र पढ़ा है तो सम्भवतः आपके शिक्षक ने यह बताया होगा कि हमारे स्नायु-मंडल की रचना किस प्रकार की है। जब कोई आपको चिकोटी काटता है, तब आप पीड़ा महसूस करते हैं। इसका क्या अर्थ है ? आपके स्नायु यह बोध मस्तिष्क में ले जाते हैं और मस्तिष्क इसे पीड़ा का नाम देता है और तब आप कहते हैं "तुमने मुझे दुख पहुँचाया है।" यह हमारा शारीरिक स्तर पर महसूस करना हुआ।

इसी प्रकार एक मानसिक अनुभव भी है, क्या नहीं है ? यदि आप स्वयं को अत्यधिक सुन्दर समझते हैं और किसी ने यदि आपको कुरूप कह दिया तब आपको आघात पहुँचता है। इसका क्या अर्थ है। आप कुछ शब्द सुनते हैं और मस्तिष्क उन्हें दुखद अथवा अपमानास्पद नाम देता है और तब आप व्याकुल हो उठते हैं। अथवा कोई व्यक्ति जब आप की खुशामद करता है तब आप कहते हैं—ये शब्द कितने सुहावने हैं ! अतः महसूस करना, सोचना, एक प्रकार की प्रतिक्रिया है--सुई की चुभन से, अपमान से, खुशामद से उत्पन्न प्रतिक्रिया। महसूस करने की, सोचने की, ये सारी प्रक्रियायें केवल यहीं तक सीमित नहीं हैं। यह और भी गहरी और उलझी हुई हैं। आप इसमें और गहरे प्रवेश कर सकते हैं। आपने देखा होगा कि जब आप कुछ अनुभव करते हैं तब उसे नाम दे देते हैं ! देते हैं न ? हम कहते हैं—यह सुखद है, वह दुखद है। जब हम क्रुद्ध होते हैं तब हम इस अनुभव को 'क्रोध' नाम देते हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि यदि आप नाम नहीं देंगे तो क्या घटित होगा ? आप यह करके

देखें। अगली बार जब आप क्रुद्ध हों तब इसे कोई नाम न दें, इसे 'क्रोध' न कहें। इसके प्रति आप केवल सजग रहें और देखें क्या घटित होता है।

प्रश्नकर्ता : भारतीय और अमरीकी संस्कृति में क्या फर्क है ?

कृष्णमूर्ति : जब हम अमरीकी संस्कृति के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं तब हमारा अर्थ यूरोपीय संस्कृति से होता है जो अमेरिका में प्रतिष्ठित की गई थी। यही संस्कृति परिवर्तित होते-होते इतनी विस्तृत हो गई कि यह भौतिक व मानसिक विज्ञान की नवीन सीमाओं को छू सकी।

और भारतीय संस्कृति क्या है ? वह कौन-सी संस्कृति है जो आपके यहाँ प्रतिष्ठित है ? संस्कृति शब्द से आपका अभिप्राय क्या है ? यदि आपने कभी बगीचे में कार्य किया है तो आपने देखा होगा कि किस प्रकार ज़मीन जोती जाती है, कैसे तैयार की जाती है। आप ज़मीन को खोदते हैं, वहाँ की चट्टानें हटाते हैं और यदि आवश्यकता हुई तो ज़मीन को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए उसमें पत्तियाँ, सूखी घास, खाद और अन्य जीवनसत्वोंयुक्त रसायनों से तैयार किया गया मिश्रण मिलाते हैं। तब आप पौधे लगाते हैं। यह उपजाऊ जमीन पौधे को पौष्टिक खाद्य देती है और यह पौधा धीरे-धीरे एक अद्भुत सुन्दर वस्तु पैदा करता है जिसे आप गुलाब कहते हैं।

भारतीय संस्कृति भी कुछ इसी प्रकार की है। लाखों व्यक्तियों ने अपने संघर्षों और अपनी इच्छाओं द्वारा, किसी वस्तु को चाहकर तो किसीका प्रतिकार कर, दुखी और भयभीत होते, टालते और आनन्दित होते, सतत विचार करते, इस संस्कृति का निर्माण किया है। जलवायु, भोजन और पहनावे ने इसे प्रभावित किया है। हमारा यह मन इसी विलक्षण भूमि की भाँति है। परम्पराओं के घेरों में पूर्णतया बंदी हो जाने के पूर्व भारतवर्ष में कुछ महान सृजनशील व्यक्ति थे, जिन्होंने समस्त एशिया को कंपित कर दिया था। उन्होंने आपकी भाँति यह नहीं कहा था—"मुझे समाज का आदेश मानना ही चाहिए अन्यथा मेरे पिता क्या सोचेंगे"। इसके विपरीत ये ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने जीवन में कुछ उपलब्ध किया था, वे इसके संबंध में उत्साही थे, उदासीन नहीं। यह सब आपकी संस्कृति है। आपके विचार, आपका भोजन, आपके कपड़े, आपके व्यवहार, आपकी परम्पराएँ, आपके संभाषण, आपके चित्र, आपकी मूर्तियाँ, आपके देवता, आपके पुजारी, आपकी पवित्र पुस्तकें, यह सब कुछ आपकी संस्कृति है।

अतः भारतीय संस्कृति यूरोपीय संस्कृति से कुछ भिन्न है; पर इसके गर्भ में वही चेतना विद्यमान है। यह चेतना भले ही अमरीका में भिन्न रूप में प्रकट हो, इसलिए

कि वहाँ आवश्यकताएँ भिन्न हैं, परंपराओं का बोझ कम है, रेफ्रीजरेटर, मोटरें ज्यादा हैं; परन्तु दोनों संस्कृतियों में चेतना एक ही है, वह है आनन्द, सत्य और परमात्मा को उपलब्ध करने की अभीप्सा। जब यह चेतना रुक जाती है तब संस्कृति का ह्रास होने लगता है। इस देश के साथ भी यही हुआ है। जब यह चेतना, अधिकारी एवं परंपरा एवं भय द्वारा रोक दी जाती है, तब संस्कृति का क्षय होता है, नाश होता है।

सत्य क्या है ? परमात्मा क्या है ? यह खोजने की अभीप्सा ही एकमात्र वास्तविक अभीप्सा है और बाकी सारी इच्छाएँ इसी की सहायक हैं। यदि आप शांत पानी में एक पत्थर फेंकते हैं तो दूर-दूर तक परिधियाँ फैल जाती हैं। ये दूर-दूर तक फैली हुई समस्त परिधियाँ सहायक परिधियाँ हैं। वास्तविक चेतना तो एक ही है जो केन्द्र पर है और यही चेतना आनन्द, सत्य और परमात्मा को उपलब्ध करने की अभीप्सा है। आप यह तब तक नहीं प्राप्त कर सकते जब तक कि आप भय और धमकियों से बँधे हैं। जिस क्षण भय और धमकी प्रारम्भ हो जाते हैं उसी क्षण से संस्कृति का नाश प्रारंभ हो जाता है।

इसीलिए यह बहुत आवश्यक है कि आप युवावस्था से ही प्रतिबद्ध न बनें बल्कि बेशर्त बनें। आप समाज और माता-पिता से भयभीत न हों ताकि आपमें यह सत्य खोजने की अनन्त अभीप्सा जागृत हो सके। परम्पराएँ स्वीकार करनेवाले अथवा पुरातन संस्कारों के कारागृहों में क्रांति करनेवाले मानव नूतन संस्कृति और नूतन सभ्यता का निर्माण नहीं कर सकते; इनका निर्माण तो वे करते हैं जो सत्य और ईश्वर की खोज करते हैं। आप भले ही संन्यासी के कपड़े धारण कर लें, किसी सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी बन जाएँ, एक धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को अंगीकार कर लें, मुक्ति पाने के लिए विभिन्न प्रयत्न कर लें, लेकिन जब तक आपमें यह परमात्मा, सत्य और प्रेम खोजने की अभीप्सा नहीं है तब तक आपके समस्त प्रयत्न वृथा हैं। आप भले ही बड़े विद्वान बन जाएँ और ऐसे कार्य करें, जिनकी समाज प्रशंसा करें फिर भी ये सारे प्रयत्न परम्पराओं के कारागृहों की दीवारों के भीतर होंगे। अतः उत्क्रांति की दृष्टि से इनका कोई महत्त्व नहीं।

प्रश्नकर्ता : आप भारतवासियों के सम्बन्ध में क्या सोचते हैं ?

कृष्णमूर्ति : यह सचमुच बड़ा ही सहज प्रश्न है ! क्या नहीं है ? मान्यताओं के बिना सत्य को देखना एक बात है और सत्य के सम्बन्ध में मान्यताओं को रखना बिलकुल ही दूसरी बात है। समस्त मानव समाज भयभीत और अंध-विश्वासी है। इस सत्य को देखना एक बात है लेकिन इस सत्य को देखकर इसकी निंदा करना एकदम

दूसरी बात है। मान्यताएँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं; क्योंकि मेरी मान्यता एक प्रकार की है, आपकी दूसरे प्रकार की और किसी अन्य की तीसरे प्रकार की। केवल मान्यताओं से सम्बन्धित होने से हमारा चिंतन मन्द हो जाता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम विचार, अनुमान और तुलना से मुक्त होकर जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में देखें।

मान्यता-रहित होकर सौंदर्य को महसूस करना ही सौंदर्य का वास्तविक बोध है। इसी प्रकार यदि आप अपनी निश्चित मान्यताओं और अनुमानों के बिना भारतवासियों को उनके वास्तविक रूप में एकदम स्पष्टता से देखें तो जो कुछ आप देखेंगे वह सत्य होगा।

भारतवासियों के भी निश्चित आचार हैं; उनके भी रीति-रिवाज़ हैं। परन्तु मूल रूप में वे भी विश्व की अन्य जातियों के ही समान हैं, वे भी दुखी हैं, क्रूर हैं, भयभीत हैं; वे भी समाज के कारागृह में क्रांन्ति करते हैं जैसे कि विश्व की अन्य जातियाँ कर रही हैं। वे भी अमरीकियों की तरह आराम चाहते हैं, भले ही वे इस समय उनकी भाँति उतना आराम न कर पाते हों। उनमें संसार-त्याग की भारी परम्पराएँ हैं। वे सन्यास के लिए प्रयत्नशील हैं, लेकिन उनमें भी महत्वाकांक्षा, पाखंड, लोभ और ईर्ष्या की जड़े जमी हुई हैं। वे भी अन्य मानव समाज की ही भांति भिन्न-भिन्न जातियों में बंटे हुए हैं। अन्तर इतना ही है कि यहाँ यह ज़्यादा क्रूरतापूर्ण है। समस्त विश्व में जो कुछ घटित हो रहा है उसे ज्यादा करीब आप यहाँ देख सकते हैं। हम चाहते हैं कि दूसरे हमें प्यार करें; पर हम नहीं जानते हैं कि यह प्यार क्या है? हम दुखी हैं, किसी सत्य के लिए प्यासे हैं! उसे पाने के लिए हम उपनिषदों की ओर या गीता या बाइबल की ओर मुड़ते हैं और इस प्रकार हम शब्दों और सिद्धांतों में ही भटक जाते हैं। चाहे भारत हो, चाहे अमेरिका या रूस हो, मानव मन सर्वत्र समान है। केवल यह स्वयम् को भिन्न-भिन्न मुल्कों और भिन्न-भिन्न शासनों के तले भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट करता है।

१२. विश्वास

हम कारागृह के अंदर की क्रांति के सम्बंध में चर्चा कर रहे थे। हमने देखा कि समस्त समाज सुधारक, आदर्शवादी तथा वे व्यक्ति जो किन्हीं परिणामों पर पहुँचने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं, किस प्रकार अपने ही संस्कारों के घेरों, अपनी ही सामाजिक रचना की दीवारों एवं सामूहिक इच्छा को प्रतीक अपनी ही सभ्यता एवम् संस्कृति के सीकचों में क्रांति कर रहे हैं। मैं सोचता हूँ, अब यह उचित होगा कि हम इस विश्वासों को समझें और देखें कि इसका आगमन किस प्रकार होता है।

सहजस्फूर्ति (Initiative) के माध्यम से इस विश्वास का आगमन होता है, लेकिन किसी सिद्धांत के अनुसार साधी गई यह स्फूर्ति केवल अहंपूर्ण विश्वास को जन्म देती है, जो अहंशून्य विश्वास से एकदम भिन्न है। क्या आपको ज्ञात है कि इस अहंशून्य विश्वास का क्या अर्थ है? यदि आप कोई कार्य स्वयम् करते हैं, स्वयम् कोई वृक्ष लगाते हैं और उसे बढ़ते हुए देखते हैं, आप कोई चित्र बनाते हैं या कविता लिखते हैं या बड़े होने पर आप कोई पुल बनाते हैं या कोई शासन कार्य बड़ी कुशलता से करते हैं, तो इससे, आपमें एक विश्वास पैदा होता है कि अमुक कार्य करने में आप कुशल हैं; लेकिन आप देखते हैं कि हमारा यह विश्वास हमेशा उन कारागृहों तक ही सीमित रहता है जो हमारे चारों ओर हिन्दू, ईसाई या साम्यवादी समाज द्वारा निर्मित किया गया है। कारागृहों के अन्दर की यह स्फूर्ति अनिवार्यतः एक प्रकार के विश्वास को पैदा करती है, क्योंकि तब आप यह महसूस करने लगते हैं कि आप अमुक-अमुक कार्य कर सकते हैं—आप मोटर बना सकते हैं, आप एक बहुत अच्छे डॉक्टर या महान् वैज्ञानिक या और कुछ बन सकते हैं, लेकिन यह विश्वास जो सामाजिक घेरे में सफलता पाने से, इसे सुधारने, या ज्यादा प्रकाशित करने अथवा सजाने से पैदा होता है, वह सचमुच अहंपूर्ण विश्वास है—अर्थात् आपका यह जानना कि आप अमुक कार्य कर सकते हैं और उसे करने में आप आत्म-गौरव महसूस करते हैं। इसके विपरीत जब आप अनुसंधान एवं बोधक्षमता के माध्यम से अपने समाज के कारागृहों को समझकर, उनसे मुक्त हो जाते हैं, तब आपमें एक भिन्न प्रकार के विश्वास का आगमन होता है जो आत्म-गौरव की भावना से एकदम शून्य होता है और यदि हम इस अहंपूर्ण विश्वास और अहंशून्य विश्वास का अन्तर समझ सकें तो मैं सोचता हूँ यह हमारे लिए महान् अर्थमय होगा।

जब आप बेडमिंटन, क्रिकेट या फुटबाल की तरह कोई खेल अत्यधिक कुशलता से खेलते हैं तब आपमें एक प्रकार का विश्वास पैदा होता है; क्या नहीं होता? इससे

आप यह महसूस करने लगते हैं कि आप अमुक कार्य में अत्यन्त प्रवीण हैं। इसी भाँति जब आप गणित के प्रश्न बड़ी शीघ्रता से हल कर लेते हैं, तब भी आपमें यही आत्मविश्वास पैदा होता है। इस प्रकार हमने देखा कि समाज-रचना की सीमाओं में किसी कार्य के माध्यम से जो आत्मविश्वास पैदा होता है, उसके साथ एक अजीब-सा अभिमान भी आता है; क्या नहीं आता है ? जो व्यक्ति कुछ कार्य करता है, जो सफलता पाने में समर्थ है, उसका आत्मविश्वास इस अभिमान से रंगा रहता है- "यह कार्य मैंने किया है" । अतः यह आत्माभिमान—"यह कार्य मैंने किया है," "मेरा आदर्श महत्त्वपूर्ण है," "मेरा समुदाय सफल हुआ है,"— हमारे सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से किए गए प्रत्येक कार्य में विद्यमान है। यह 'मैं' और 'मेरे' की भावना हमारे उस प्रत्येक कार्य का अनुगमन करती है जो हम सामाजिक बन्धनों में किया करते हैं।

क्या आपने कभी देखा है कि ये आदर्शवादी लोग कितने अभिमानी होते हैं ? क्या आपने कभी यह महसूस नहीं किया है कि ये राजनीतिक नेता, जो कुछ परिणामों पर पहुँच जाते हैं, जो समाज में बड़े सुधार कर लेते हैं, अपने आपसे कितने भरे हुए होते हैं ? उन्हें अपनी सफलताओं और अपने आदर्शों पर कितना अभिमान होता है ? वे अपने ही खयालों में स्वयं को कितना महत्त्वपूर्ण मान लेते हैं ? यदि आप कुछ राजनैतिक भाषण पढ़ें अथवा उन तथाकथित कुछ सुधारकों का निरीक्षण करें तो आपको ज्ञात होगा कि इस सुधार की प्रक्रिया में ही वे अपने अहंकार को पोषित कर रहे हैं। उनके ये सुधार चाहे कितने ही व्यापक क्यों न हों फिर भी वे बन्धनों के अन्दर के होने के कारण विनाशकारी हैं और अन्त में मानव समाज में और अधिक पीड़ाएँ तथा और अधिक संघर्ष पैदा करनेवाले हैं।

अब यदि आप इस सम्पूर्ण समाज-रचना को देख सकें, इसकी उस सभ्यता का अवलोकन कर सकें, जो इसकी सामूहिक इच्छा का सांस्कृतिक रूप है, यदि आप यह सब समझ सकें और स्वयं को अपने समाज की समस्त काराओं से, चाहे वे हिंदू समाज की हों या साम्यवादी या ईसाई समाज की हों, मुक्त कर सकें तब आप महसूस करेंगे कि आपमें एक ऐसे विश्वास का आगमन हो रहा है जो इस अहंकार से एकदम शून्य है। यह विश्वास एक मासूम विश्वास है—उस मासूम बालक के विश्वास की तरह जो अपनी सहज सरलता में कोई भी कार्य करने को तत्पर है। यही वह मासूम विश्वास है जो नूतन सभ्यता का निर्माण कर सकता है। लेकिन जहाँ तक आप सामाजिक काराओं से मुक्त नहीं हो जाते वहाँ तक यह सहज विश्वास असम्भव है।

कृपया आप यह ध्यान से सुनें। यहाँ वक्ता का महत्त्व नगण्य है, महत्त्व तो इस बात का है कि आपसे जो कुछ कहा जा रहा है उसके सत्य को समझें। आखिर यही तो

शिक्षा का अर्थ है; क्या नहीं है ? आपको समाज के ढाँचे के अनुकूल बनाना शिक्षा का कार्य नहीं है बल्कि इसके विपरीत शिक्षा का कार्य है कि वह आपको इस सम्पूर्ण समाज-रचना को गहराई व समग्रता से भली-भाँति समझने में सहायता करे ताकि आप सामाजिक घेरों से मुक्त होकर एक ऐसी इकाई बन सकें जो इस अहंकारपूर्ण विश्वास से परे हो। आपमें ऐसा विश्वास तभी आ सकता है जब आप सचमुच बच्चे की भाँति मासूम हों।

क्या यह एक गहरे दुःख का विषय नहीं है कि हममें से अधिकांश व्यक्ति समाज के अनुकूल बनना अथवा उसमें कुछ सुधार करना मात्र चाहते हैं ? क्या आपने यह देखा कि आपके द्वारा पूछे गए अधिकांश प्रश्नों से भी केवल यही भावना व्यक्त हो रही है ? आप पूछ रहे हैं – "मैं किस प्रकार समाज के अनुकूल बनूँ ? यदि मैं ऐसा नहीं करता हूँ तो मेरे माता-पिता क्या कहेंगे और मेरा क्या होगा ?" इस प्रकार की वृत्ति आपमें जो कुछ स्फूर्ति है, जो कुछ विश्वास है उसे नष्ट कर देती है, और जब आप विद्यालय तथा महाविद्यालय से बाहर निकलते हैं तब आप उन स्वयंचालित यन्त्रों की भाँति होते हैं जो सम्भवतः अत्यन्त कुशल तो हैं, परन्तु जिनमें सृजनशीलता की लौ कतई नहीं है। अतः व्यक्ति के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि वह अपने समाज और अपनी परिस्थितियों को समझें क्योंकि इसी समझने की प्रक्रिया से वह इनसे मुक्त हो जाता है।

आप देखते हैं कि यह समस्या अखिल विश्व की समस्या है। चाहे भारत हो या यूरोप हो अथवा रूस, चूँकि सर्वत्र जीवन के पुरातन मूल्य नष्ट होते जा रहे हैं, अतः मानव नवीन मूल्यों की, नवीन दृष्टियों को खोज कर रहा है। जीवन एक अविराम चुनौती है और आप केवल कुछ आर्थिक सुधारों द्वारा इस महान चुनौती का जो क्षण-क्षण नवीन है, समग्रता से उत्तर नहीं दे सकते। जब संस्कृतियाँ, सभ्यताएँ और इन्सान इस चिरंतन नवीन चुनौती का समग्रता से प्रत्युत्तर देने का सामर्थ्य नहीं रखते तब वे विनष्ट हो जाते हैं।

अतः जहाँ तक आप समुचित रूप से शिक्षित नहीं किए जाते हैं, जहाँ तक आपमें यह अद्भुत "मासूम विश्वास" नहीं आ जाता है, वहाँ तक अनिवार्यतः समुदाय आपको निगलता रहेगा, उदासीनता आपको नष्ट करती रहेगी। भले ही आप कुछ उपाधियाँ पा लें, विवाह कर लें, बच्चे पैदा कर लें, और वही आपके जीवन का अन्त होगा।

आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्ति भयभीत हैं, आपके माता-पिता भयभीत हैं, आपके शिक्षक भयभीत हैं। आपके धर्म और आपके राज्य इस बात से भय-

भोत हैं कि कहीं आप समग्र मानव न बन जाएँ! क्योंकि ये सब चाहते हैं कि आप अपनी परिस्थितियों और संस्कृतियों के संस्कारों के बन्धनों में सुरक्षित रहें। अतः जो इन सामाजिक काराओं को समझकर इनसे मुक्त हो जाते हैं, जो अपने समस्त मानसिक संस्कारों को विसर्जित कर देते हैं, ऐसे ही मानव नूतन सभ्यता का निर्माण कर सकते हैं, वे नहीं जो स्वीकार कर लेते हैं अथवा किसी विशेष ढाँचे का इसलिए विरोध करते हैं कि वे किसी दूसरे ढाँचे में ढल चुके हैं। ईश्वर या सत्य की खोज बन्धनों के भीतर नहीं हो सकती अपितु यह खोज तो इन बन्धनों को समझने और इनकी दीवारों को धराशायी करने में निहित है। और यही मुक्ति के मार्ग में उठाया गया वह सही कदम होगा जो नूतन संस्कृति और नवीन विश्व का निर्माण करेगा।

प्रश्नकर्ता : श्रीमानजी, हम कोई साथी क्यों चाहते हैं?

कृष्णमूर्ति : एक लड़की प्रश्न कर रही है कि वह कोई साथी क्यों चाहती है? कोई व्यक्ति साथी क्यों चाहता है? क्या आप इस विश्व में अकेले रह सकते हैं—बिना पति, बिना पत्नी, बिना बच्चों, बिना मित्रों के? अधिकांश व्यक्ति चूँकि अकेले नहीं रह सकते हैं, अतः वे साथी चाहते हैं, क्योंकि अकेले रह सकने के लिए अतिशय बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होती है। और परमात्मा और सत्य की खोज के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप अकेले हों। इसमें कोई हर्ज नहीं कि अपना कोई साथी हो, अपना पति या अपनी पत्नी हो, अपने बच्चे हों, लेकिन आप देखते हैं कि हम इनमें स्वयम् को खो देते हैं। हम अपने परिवार में, अपने उद्योग में, अपने ह्रासोन्मुख जीवन की नीरस दिनचर्या में खो जाते हैं और हम इनके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि हमारे लिए अकेले रहने का विचार ही डरावना बन जाता है, यह अकेलापन एक भयानक वस्तु बन जाती है। हममें से अधिकांश व्यक्ति अपना सम्पूर्ण विश्वास, अपनी समस्त इच्छाएँ किसी एक ही वस्तु में केन्द्रित कर लेते हैं और इस प्रकार हमारे साथी, हमारे परिवार और हमारे उद्योग के अतिरिक्त हमारे जीवन में कोई समृद्धि ही नहीं रह जाती है। लेकिन यदि हमारे जीवन में यह समृद्धि हो—दौलत अथवा ज्ञान की समृद्धि नहीं जो हर कोई प्राप्त कर सकता है—अपितु निरन्तर जीवन्त सत्य की समृद्धि, जिसका न आरम्भ है, न अन्त है; तब हमारे लिए साथी गौण रह जाता है।

लेकिन आप देखते हैं कि आप अकेले रहने के लिए शिक्षित ही नहीं किए जाते हैं। क्या आप कभी घूमने के लिए अकेले जाते हैं? यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आप अकेले घूमने जाएँ, आप किसी वृक्ष के तले जब आपके पास कोई पुस्तक या कोई साथी न हो, बिलकुल अकेले बैठें और किसी गिरती हुई पत्ती का अवलोकन करें, पानी की हिलोरों और मछुआ के संगीत को सुनें, किसी पक्षी की उड़ान देखें और देखें कि आप

के स्वयम् के विचार आप के मन की सतह पर एक दूसरे का किस प्रकार पीछा कर रहे हैं। यदि आप अकेले रह सकने में समर्थ हो सकें और इन समस्त वस्तुओं का निरीक्षण कर सकें तो आप जीवन के एक ऐसे अद्भुत वैभव की खोज कर सकेंगे जिसपर कोई सरकार कर नहीं लगा सकती है, जिसे कोई जनसमुदाय दूषित नहीं कर सकता है, जो कभी नष्ट नहीं हो सकता है।

प्रश्नकर्त्ता : क्या व्याख्यान देना आपका प्रिय विषय है ? क्या आप चर्चा करते-करते थकते नहीं हैं ? आप यह सब क्यों कर रहे हैं ?

कृष्णमूर्ति : मुझे प्रसन्नता है कि आपने यह प्रश्न पूछा। आप जानते हैं कि जब आप किसी वस्तु से सचमुच प्रेम करते हैं तब उससे आप कभी थकते नहीं हैं। मैं उस प्रेम के सम्बन्ध में कह रहा हूँ जिसका कोई उद्देश्य न हो, जिसमें किसी भी प्रकार का स्वार्थ न हो। जब आप किसी वस्तु को सही अर्थों में प्रेम करते हैं तब उससे आप कुछ आत्मतुष्टि नहीं चाहते हैं; अतः वहाँ न तो निराशा होती है और न अन्त होता है। आपका यह पूछना कि मैं यह क्यों कर रहा हूँ ठीक वैसा ही होगा जैसे आप पूछें — "गुलाब क्यों खिलता है, चमेली क्यों खुशबू बिखेरती है, पक्षी क्यों उड़ते हैं ?"

आप देखते हैं न, यह ज्ञात करने के लिए कि यदि मैं चर्चा न करूँ तो क्या होगा, मैंने चुप रहकर भी देखा है, लेकिन वह स्थिति भी एकदम ठीक थी। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? यदि आप केवल इसलिए चर्चा करते हैं कि आपको धन, पुरस्कार और आत्मगौरव प्राप्त हो तब आप थकेंगे और आपकी चर्चा विनाशकारी साबित होगी। उसका कुछ भी अर्थ न होगा इसलिए कि आप उससे आत्मतुष्टि चाहते हैं। लेकिन यदि आपका हृदय मन के स्तर की समस्त वस्तुओं से रिक्त है, उसमें प्रेम है, तब वह एक निर्झर या एक सोते की भाँति सदैव ताज़ा पानी देता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : जिसे मैं प्रेम करता हूँ वह व्यक्ति यदि क्रोध करता है तो उसके क्रोध में इतनी तीव्रता क्यों होती है ?

कृष्णमूर्ति : सर्वप्रथम बात तो यह है कि, क्या आप किसी व्यक्ति को प्रेम करते हैं ? क्या आप जानते हैं कि प्रेम करने का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है—आप अपना सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण हृदय, अपना सब कुछ दे दें और बदले में कुछ भी न चाहें। प्रेम के लिए भिक्षापात्र न फैलावें। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? क्या इस प्रकार के प्रेम में क्रोध सम्भव है ? लेकिन जब हम किसी व्यक्ति से यह तथाकथित साधारण प्रेम करते हैं, तब हम क्रोध क्यों करते हैं ? केवल इसलिए कि, हम उस व्यक्ति से प्रेम की कीमत नहीं पा रहे हैं। क्या यह सच नहीं है ? मैं अपनी पत्नी, अपने पति, अपने पुत्र या पुत्रों

से प्रेम करता हूँ; परन्तु ज्यों हो वे कुछ गलत कार्य करते हैं, त्यों ही मैं क्रोध कर बैठता हूँ, आखिर क्यों ?

पिता अपने पुत्र या अपनी पुत्री पर क्यों क्रोध करते हैं ? क्योंकि वे चाहते हैं कि उनका बच्चा एक विशिष्ठ ढाँचे के अनुकूल बने, एक विशिष्ठ कार्य करे; लेकिन बच्चा विद्रोह करता है। माता-पिता अपनी दौलत और अपने बच्चों के माध्यम से अपनी इच्छाएँ पूरी करना चाहते हैं, अमरता चाहते हैं और बच्चा जब उनकी इच्छा के विपरीत कार्य करता है तब वे भयंकर क्रोध करते हैं। वे अपने बच्चे को एक आदर्श के अनुसार ढालना चाहते हैं और उस आदर्श से वे अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं, अतः बच्चा जब उस आदर्श के प्रतिकूल आचरण करता है, तब वे क्रुद्ध होते हैं।

क्या आपने कभी देखा है कि आप कभी-कभी अपने मित्र पर कितने क्रुद्ध हो जाते हैं ? यहाँ भी वही प्रक्रिया चल रही है। आप उससे कुछ पाना चाह रहे हैं। जब आपकी यह अपेक्षा पूरी नहीं होती तब आप निराश होते हैं—जिसका अर्थ है आप सचमुच अन्दर-ही-अन्दर मानसिक दृष्टि से उसपर आश्रित हैं और जहाँ यह मानसिक पराधीनता है वहाँ निश्चित ही निराशा होगी और यही वह निराशा है, जिससे अनिवार्यतः क्रोध, कटुता, ईर्ष्या एवं संघर्ष के विविध रूप प्रकट होते हैं। अतः यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि जब आप बचपन से ही किसी वस्तु को, किसी वृक्ष या किसी पशु को, अपने माता-पिता अथवा अपने शिक्षकों को, अपनी समग्रता से प्रेम करें तभी आप अपने लिए यह जान सकेंगे कि संघर्ष और भय के बिना जीने का क्या अर्थ है ?

लेकिन आप देखते हैं कि आपके शिक्षक बहुधा अपने ही संबन्ध में सोचा करते हैं। वे अपनी ही निजी चिंताओं, अपने ही परिवार, अपनी ही दौलत और अपनी ही प्रतिष्ठा में उलझे हुए हैं। उनके हृदय में प्यार नहीं है और शिक्षा के मार्ग में यह एक बहुत बड़ी कठिनाई है। आपके हृदय में तो प्रेम वैसे भी हो सकता है क्योंकि बचपन में प्रेम का होना स्वाभाविक है, लेकिन यह प्रेम माता-पिता, शिक्षक एवं सामाजिक वातावरण द्वारा शीघ्र ही कुचल दिया जाता है। इस सरलता और इस प्रेम को, जो जीवन का सुवास है, संजोए रखना अत्यन्त मुश्किल है, इसके लिए अत्यधिक बुद्धिमत्ता और गहरी अन्तरदृष्टि की आवश्यकता होती है।

प्रश्नकर्ता : मन अपने ही अवरोधों से कैसे ऊपर उठता है ?

कृष्णमूर्ति : मन अपने अवरोधों से ऊपर उठ सके इसके लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि मन इनके प्रति जागरूक हो, क्या नहीं हो ? आपको अपने मन की सीमाओं, इसकी दीवारों और इसके तटीय प्रदेशों को समझना होगा। लेकिन हममें

से बहुत ही कम व्यक्ति इन्हें समझते हैं। यदि यह कहें कि हम इन्हें जानते हैं तो यह केवल शाब्दिक कथन होगा। हम यह कभी नहीं कहते—"मुझमें यह अवरोध है, यह बंधन है और चूंकि मुझे यह समझना है, अतः मैं इसके साथ एकरूप होकर देखना चाहता हूँ कि यह कैसे उत्पन्न होता है, इसकी संपूर्ण रचना किस प्रकार की है ?" बीमारी का उपचार तब संभव हो पाता है जब हम उसे समझ लेते हैं। लेकिन बीमारी को जानने के लिए और यह समझने के लिए कि मन की विशिष्ठ सीमाएँ क्या हैं, इसके बंधन और इसके अवरोध क्या हैं, यह आवश्यक है कि हम निंदा न करें, सही या गलत न कहें। हमें अपने मन का, बिना पक्षपात और बिना अनुमान के, बिना पूर्वाग्रह और बिना कोई निश्चित राय के, निरीक्षण करना होगा जो अत्यन्त ही कठिन है, क्योंकि हमें निंदा करना सिखाया जाता है।

किसी बच्चे को समझने के लिए यह बहुत जरूरी है कि हम उसकी निंदा न करें। बच्चे की बुराई करने का कुछ भी अर्थ न होगा। लेकिन आपको उसे खेलते हुए, शोर करते हुए, भोजन करते हुए देखना होगा। आपको उसे उसकी समस्त चित्तवृत्तियों में देखना होगा। लेकिन ऐसा न कर आप यदि उसे कुरूप अथवा मूर्ख अथवा और कुछ कह देते हैं तब आप उसे कभी नहीं समझ सकेंगे। ठीक इसी प्रकार यदि आप अपने मन के समस्त अवरोधों को देख सकें—केवल ऊपरी-ऊपरी अवरोधों को ही नहीं अपितु अवचेतन मनके गहरे अवरोधों को भी, उन्हें बिना निंदा किये देख सकें तब आपका मन इन अवरोधों के पार जा सकता है और यह पार जाने की गति ही सत्य को पाने का मार्ग है।

प्रश्नकर्ता: ईश्वर ने इतने अधिक पुरुषों एवं स्त्रियों का क्यों निर्माण किया ?

कृष्णमूर्ति : आप यह मान कर क्यों चलते हैं कि हमारा निर्माण ईश्वर ने किया है। इसका सीधा-सादा कारण है हमारी प्राणीज्ञान-सम्बन्धी सहज प्रवृत्ति। यह सहज प्रवृत्ति, यह इच्छा, यह अनुराग, यह काम वासना, ये सब हमारे जीवन के अंग हैं। "जीवन परमात्मा है" यदि आप ऐसा कहते हैं तो यह विषय ही भिन्न है, तब तो अनुराग, कामवासना, ईर्ष्या, भय आदि प्रत्येक वस्तु ही परमात्मा होगी। इन्हीं सब कारणों से भीषण मात्रा में मानव समाज की उत्पत्ति हुई है। इसीलिए विश्व में अधिक आबादी की समस्या बन गई है, जो इस देश के लिए एक बहुत बड़ा अभिशाप है। लेकिन आप देख रहे हैं कि यह समस्या इतनी आसानी से नहीं सुलझाई जा सकती। मानव को परम्परा से अनेकों उत्तेजनाएँ और दबाव वसीयत में मिले हैं और इस समूची उलझी हुई प्रक्रिया को समझे बिना ही जन्मदर को नियंत्रित करने का कोई विशेष

अर्थ नहीं है । चूंकि हम नहीं जानते हैं कि जीवन क्या है, हमने इस विश्व को कुरूप बना दिया है । यह पाखंडो, यह उदासीन, यह नियंत्रित वस्तु जिसे हम जीवन माने बैठे हैं, सचमुच जीवन ही नहीं है । जीवन तो एकदम भिन्न वस्तु है; यह अनंत ऐश्वर्य सम्पन्न एवं क्षण-क्षण परिवर्तनशील है और जहाँ तक हम उस सनातन चेतना को नहीं समझ लेते हैं, वहाँ तक यह जरूरी है कि हमारा जीवन बहुत कम अर्थमय होगा ।

१३. समानता

सूखी भूमि पर हुई बरसात बड़ी ही अद्भुत होती है; क्या नहीं होती ? वह पत्तियों को धोकर उन्हें स्वच्छ कर देती है, वसुधा पुनः हरी-भरी हो जाती है। और मैं सोचता हूँ; जिस प्रकार वृष्टि वृक्षों को धोकर उन्हें स्वच्छ कर देती है, उसी प्रकार हमें अपना मन भी पूर्णतया स्वच्छ कर लेना होगा; क्यों कि वह शताब्दियों के ज्ञान और अनुभवों के धूलिकणों से अत्यंत बोझिल हो गया है। यदि आप और मैं अपने मन को प्रतिदिन स्वच्छ कर सकें तो हममें से प्रत्येक का मन सर्वथा नवीन हो जाएगा और ऐसा मन ही जीवन की विविध समस्याओं को सुलझाने में समर्थ हो सकेगा।

जिन बड़ी समस्याओं ने आज के विश्व को विक्षुब्ध कर रक्खा है उनमें से एक समस्या 'समानता' की है। एक पहलू से तो समानता जैसी कोई वस्तु है ही नहीं, क्योंकि हममें से प्रत्येक में भिन्न-भिन्न योग्यताएँ हैं। लेकिन यहाँ हम जिस समानता के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे हैं, उसका अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार करना। उदाहरण के लिए एक विद्यालय में प्राचार्य, अध्यापक एवम् गृहपति के पद के यद्यपि भिन्न-भिन्न कार्य हैं फिर भी आप देखते हैं कि किसी विशेष पेशे अथवा कार्य के साथ-साथ रुतबा भी बढ़ जाता है और यह रुतबा सम्माननीय समझा जाता है। इसलिए उसमें शक्ति और प्रतिष्ठा निहित है; जिसका अर्थ है–चूंकि आप उस पद पर आसीन हैं अतः आप व्यक्तियों को दूर हटने के लिए या उन्हें किसी आदेश का पालन करने के लिए कह सकते हैं या अपने मित्रों या पारिवारिक जनों को नौकरी देने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार हमने देखा कि कार्य के साथ-साथ रुतबा भी बढ़ता है। लेकिन यदि हम पद, शक्ति, रुतबा, प्रतिष्ठा, दूसरों को लाभ पहुँचाना आदि की भावनाओं को कार्य से दूर कर दें तो फिर हमारे लिए कार्य का एक दूसरा ही सहज अर्थ होगा; फिर भले ही व्यक्ति राज्यपाल हो, प्रधान मन्त्री हो, रसोइया हो अथवा गरीब शिक्षक—सभी के साथ समान रूप से आदर-पूर्ण व्यवहार होगा क्योंकि उस समय सभी व्यक्ति समाज में भिन्न-भिन्न आवश्यक कार्य कर रहे होंगे।

कहीं भी विशेषकर किसी विद्यालय में, यदि हम सचमुच इस शक्ति, बड़प्पन और प्रतिष्ठा के विचारों को और इन भावनाओं को कि "मैं प्रमुख हूँ", "मैं महत्त्वपूर्ण हूँ" अपने कार्य से एकदम पोंछ लें तो क्या आप जानते हैं कि क्या घटित होगा ? तब हम सचमुच एक दूसरे ही वातावरण में निवास करेंगे, क्या नहीं करेंगे ? तब न कोई अधिकारी रहेगा, तब न कोई ऊँच-नीच या लघु-गुरु का अन्तर होगा, सर्वत्र स्वतन्त्रता

होगी और यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम विद्यालय में एक ऐसे वातावरण का निर्माण करें, जहाँ स्वतंत्रता हो, प्रेम हो, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अतिशय विश्वास महसूस करता हो। आप देखते हैं कि इस विश्वास का आगमन तभी हो सकता है जब आप पूर्णतया सुरक्षा और आनंद महसूस करते हों। क्या आप अपने घर पर उस अवस्था में आनंद से रह सकेंगे जब आपके पिता, आपकी माता, आपकी दादी सभी आपको हर समय यह कहते रहें कि आप क्या करें ? तब क्या होगा ? तब आप धीरे-धीरे स्वतः की इच्छा से कार्य करने का विश्वास ही खो बैठेंगे। अतः बड़े होने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि आप इसपर चर्चा करने और यह खोजने में भी समर्थ हो सकें कि आप के लिए सत्य क्या है ? जिस कार्य को आप सही समझते हैं उसे दृढ़ता से करने में समर्थ हों, फिर भले ही इसके कारण आपको कष्ट, पीड़ा, आर्थिक नुकसान या और कुछ सहन करना पड़े और इसके लिए यह आवश्यक है कि आप बचपन से ही पूर्णतया स्वयम् को विश्वस्त और आनंदपूर्ण महसूस करें।

अधिकांश युवक चूंकि भयभीत हैं, अतः वे अपने आपको विश्वस्त ही महसूस नहीं करते। वे हमेशा बड़ों से, अपने माता-पिता से, अपने शिक्षकों से डरते हैं। अतः वे कभी भी आनंद नहीं महसूस कर पाते। लेकिन जब आप यह आनन्द महसूस कर पाते हैं तब एक विलक्षण वस्तु का उद्घाटन होता है। तब आप अपनी इच्छा से अपने कमरे में जा सकते हैं, दरवाज़ा बन्द कर आप उसमें निश्चिन्त अकेले रह सकते हैं। चूंकि तब आपको कोई भी व्यक्ति कुछ कार्य करने के लिए नहीं कहता है, अतः आप पूर्णतया आश्वस्त होते हैं। यही एक ऐसा अवसर होता है जब आप फूल के समान खिलना, समझना, उद्घाटित होना, आरम्भ करते हैं। विद्यालय का कार्य है कि वह आपको उद्घाटित होने में सहायाता करे, यदि विद्यालय ऐसा नहीं करता तब तो यह विद्यालय ही नहीं है।

जब आप किसी स्थल पर इस प्रकार आराम से रह पाते हैं कि आपको कोई चोट नहीं पहुँचायेगा, किसी कार्य को करने के लिए कोई आपको बाध्य नहीं करेगा, जब आप अत्यधिक आनंद महसूस करते हैं, पूर्णतया विश्राम में रहते हैं, तब आप महसूस करेंगे कि आपकी उद्दण्डता ही विसर्जित हो गई है, क्या यह सच नहीं है ? जब आप सचमुच प्रसन्न रहते हैं तब आप किसी को दुख नहीं पहुँचाते, किसी वस्तु को नष्ट नहीं करना चाहते। लेकिन विद्यार्थी को इस योग्य बनाना कि वह पूर्णतया आनंद महसूस कर सके, यह अत्यन्त कठिन है, क्योंकि विद्यालय में आते समय वह पहले से ही यह सोचकर आता है कि उसके प्राचार्य, उसके शिक्षक और उसके गृहपति उसे यह बताएँगे कि वह क्या करे, वे उसे हर तरह से प्रवृत्त करेंगे और यहीं से भय प्रारम्भ होता है।

आपमें से अधिकांश व्यक्ति उन परिवारों या उन विद्यालयों से आते हैं जहाँ आपको यह सिखाया जाता है कि आप ऊँचे स्तरवालों का सम्मान करें क्योंकि आपके माता-पिता, आपके प्राचार्य, यही प्रतिष्ठा लिए हुए हैं। अतः आप प्रतिष्ठा के प्रति सम्मान की भावना के साथ डरते-डरते यहाँ प्रवेश करते हैं। लेकिन हमें विद्यालय में स्वतन्त्रतापूर्ण वातावरण तैयार करना ही होगा और यह तभी सम्भव है जब हमारा कार्य प्रतिष्ठा की भावना से रहित हो। अर्थात् हममें समानता की भावना हो। सही शिक्षा का वास्तविक सम्बन्ध तो इस बात से है कि वह आपको गतिशील और संवेदनक्षम मानव बनने में सहायता दे—ऐसे मानव जो अभय हों और जिनमें प्रतिष्ठा या ऊँचे स्तर वालों के प्रति झूठे सम्मान की भावना न हो।

प्रश्नकर्ता : हमें अपने खेलों में तो आनन्द आता है पर अध्ययन में नहीं। इसका क्या कारण है ?

कृष्णमूर्ति : इसका स्पष्ट कारण यह है कि आपके शिक्षक अच्छी तरह पढ़ाना नहीं जानते। इसका कोई गहरा कारण नहीं है, बस, यही एक सीधा-सा कारण है। आप यह जानते हैं कि जब कोई शिक्षक गणित, इतिहास अथवा अन्य कोई विषय, जिसे वह सचमुच प्रेम करता है, पढ़ाता है तब आप भी उस विषय से प्रेम करने लग जाते हैं; क्योंकि प्रेम स्वयं अपनी बात कहता है। क्या आप यह नहीं जानते हैं ? जब कोई गायक प्रेम से गाता है तो वह उस संगीत में अपनी समग्रता उड़ेल देता है, तब क्या आपमें भी वही भावना नहीं पैदा होती है ? तब क्या आप स्वयं भी संगीत सीखने का नहीं सोचते? परन्तु अधिकांश शिक्षक अपने विषयों को प्यार ही नहीं करते। विषय उनके लिए बोझ बन जाते हैं; पढ़ाना उनकी आदत बन जाती है, जिसके माध्यम से वे अपनी आजीविका कमाते हैं। यदि आपके शिक्षक प्यार से अपना विषय पढ़ाते तो क्या आप जानते हैं कि क्या होता ? तब आप बड़े अद्भुत मानव बनते ! तब आप न केवल अपने खेलों और पढ़ाई को ही प्रेम करते अपितु फूलों, सरिताओं, पक्षियों और वसुधा को भी प्रेम करते ! तब आपके हृदय में इस प्रेम की तरंगें होतीं और इससे आप सभी चीजें शीघ्रता से सीख पाते ! तब आपका मन उदासीन या मध्यम न होकर एकदम आनन्दित होता।

इसीलिए शिक्षक को शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है और यह अत्यन्त कठिन है क्यों कि अधिकांश शिक्षक पहले से ही अपनी आदतों में बँध जाते हैं, लेकिन आप युवकों पर आदत इतनी हावी नहीं हुई है, अतः यदि आप किसी एक भी चीज को निरुद्देश्य सीख सकें, यदि आप सचमुच खेल अथवा गणित अथवा इतिहास अथवा चित्रकारी या संगीत से प्रेम कर सकें, तब आप यह महसूस करेंगे कि आप मानसिक दृष्टि से जागरूक एवं जीवंत होते जा रहे हैं, तब आप समस्त विषयों में अच्छे हो जाएँगे।

आखिर यह मन क्या चाहता है ? मन चूँकि जिज्ञासु है अतः यह खोजना चाहता है, जानना चाहता है । लेकिन यह जिज्ञासा गलत शिक्षा से नष्ट हो जाती है । अतः केवल छात्रों के लिए ही नहीं अपितु शिक्षकों के लिए भी शिक्षित होना बहुत जरूरी है । 'जीना' स्वयं शिक्षा की प्रक्रिया है, सीखने की प्रक्रिया है । परीक्षाओं का तो अन्त है पर सीखने का नहीं, और आप प्रत्येक वस्तु से सीख सकते हैं यदि आपका मन जिज्ञासु हो, सावधान हो !

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था कि जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु को व्यर्थ समझता है तब वह व्यर्थ वस्तु विसर्जित हो जाती है । मैं प्रतिदिन धूम्रपान की व्यर्थता का अनुभव करता हूँ, फिर भी यह विसर्जित क्यों नहीं होती ।

कृष्णमूर्ति : क्या आपने प्रौढ़ व्यक्तियों को, अपने माता-पिता को, अपने शिक्षकों, अपने पड़ोसियों अथवा अन्य किसी व्यक्ति को धूम्रपान करते हुए देखा है ? धूम्रपान उनके लिए आदत बन जाती है; क्या नहीं बन जाती ? वे दिन-प्रतिदिन, वर्ष-प्रतिवर्ष, धूम्रपान किए चले जाते हैं । इस प्रकार वे आदत के दास बन जाते हैं । उनमें से बहुत-से व्यक्ति जब यह महसूस करते हैं कि किसी आदत का दास बनना कितना मूर्खतापूर्ण है, तब वे इस आदत से छुटकारा पाने के लिए इससे लड़ने लगते हैं, इसके विरुद्ध स्वयम् को नियन्त्रित करते हैं इसका प्रतिरोध करते हैं और अन्य कितने ही मार्ग अपनाते हैं । लेकिन आप देखते हैं कि आदत एक निर्जीव वस्तु है और यह एक ऐसा कार्य है जो अपने आप होता रहता है । आप इससे जितना ज्यादा लड़ते हैं, आप उतनी ही ज़्यादा शक्ति उसे देते हैं । लेकिन धूम्रपान करनेवाला व्यक्ति यदि इस आदत के प्रति सचेत हो, वह पूरे होश में यह देखे कि उसका हाथ किस प्रकार उसकी जेब में जा रहा है, कैसे वह सिगरेट निकाल रहा है, उसे वह किस करीने से थपकी दे रहा है, कैसे वह उसे मुँह में पकड़कर जला रहा है और किस प्रकार पहला कश खींच रहा है—प्रत्येक बार यदि वह इस क्रम का बिना निंदा किए, और बिना यह कहे कि धूम्रपान कितनी भयंकर वस्तु है निरीक्षण करें तब इस आदत को नया खाद्य मिलना बन्द हो जाएगा । लेकिन सचमुच ही किसी आदत से मुक्ति पाने के लिए आपको इससे कहीं ज्यादा खोज करनी होगी । आपको इस समस्या की गहराई में उतरना होगा कि वह मन आदतें बनाता ही क्यों है । दूसरे अर्थों में मन असावधान क्यों है ? यदि आप खिड़की से बाहर देखते-देखते दाँत साफ करते हैं तो दाँतों को साफ करने की आपकी आदत पड़ जाएगी । लेकिन यदि आप अपने दाँत प्रतिदिन बड़ी सजगता से स्वच्छ करें, इनकी ओर पूरा ध्यान दें, तब यह आदत नहीं बनेगी जो अनजाने में ही पुनः-पुनः होती रहती है ।

आप इसका परीक्षण करें, आप यह खोजें कि आपका मन किस प्रकार इस आदत के माध्यम से निश्चित और बेहोश बने रहना चाहता है। अधिकांश व्यक्तियों के मन निरन्तर अपनी आदतों के घेरों में कार्य करते रहते हैं और ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं त्यों-त्यों उनकी स्थिति और खराब होती जाती है। सम्भवतः आपने अभी तक पचीसों आदतें बना ली होंगी। आपको भय है कि यदि आप अपने माता-पिता की आज्ञानुसार कार्य नहीं करेंगे, उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करेंगे तो क्या होगा? इस प्रकार आपका मन पहले से ही घेरे में कार्य कर रहा है और जब आप किसी घेरे में कार्य करने लगते हैं तब आपका अन्दर ही अन्दर से ह्रास आरम्भ हो जाता है, आप वृद्ध होने लगते हैं, भले ही उम्र से आप दस या पन्द्रह वर्ष के हों, आपका शरीर भले ही सुन्दर हो, पर आप अभी से बूढ़े हो गये, अन्दर से सड़ रहे हैं। आपका शरीर चाहे युवा हो, तना हुआ हो, लेकिन आपका मन अपने ही बोझ से भारी हो गया है।

अतः मन की इस समस्या को पूर्ण रूप से समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि क्यों यह सदैव आदतों में जीता है, क्यों यह घेरों में चक्कर लगाता है, क्यों वह लीक पर ही चलना चाहता है, और क्यों यह प्रश्न पूछने और खोज करने में भयभीत है। चूंकि आपके पिता सिक्ख हैं, अतः आप भी यदि यह कहते हैं कि "मैं भी सिक्ख हूँ, [illegible] बाल बढ़ाऊँगा और साफा बाँधूँगा"—यदि आप यह सब बिना खोज किए, [illegible] बिना इससे छुटकारा पाने का विचार किए कह देते हैं तो इसका अर्थ [illegible] कि आप एक यन्त्र की भाँति हो गए हैं। धूम्रपान भी आपको यन्त्रवत् बना देता है। आपको अपना दास बना देता है। जब आप यह सब समझ लेते हैं तभी आपका मन एकदम नवीन, युवा, कार्यशील और गतिमान बन सकता है। फिर आप महसूस करेंगे कि आपके लिए प्रत्येक दिन नया दिन और सरिता में प्रतिबिंबित होने-वाली प्रत्येक उषा आनन्दमय बनती जा रही है।

प्रश्नकर्त्ता : जब हमारे पारिवारिक जन गम्भीर होते हैं तब हम क्यों डर जाते हैं? वह कौन-सी बात है जो उन्हें गम्भीर बनाती है?

कृष्णमूर्ति : क्या आपने कभी सोचा है कि गम्भीर होने का क्या अर्थ है? क्या आप कभी गम्भीर होते हैं? क्या आप सदैव प्रसन्न, खुशमिजाज, और हँसते रहते हैं अथवा आपके जीवन में कुछ ऐसे क्षण भी आते हैं जब आप किसी विशेष कारण से नहीं अपितु सहज गम्भीर हों, शान्त हों। आप बड़ों के गंभीर होने से डरते क्यों हैं? इसमें डरने जैसी कौन-सी बात है? क्या आप इसलिए डरते हैं कि जिस वस्तु को आप

स्वयं नापसन्द करते हैं, कहीं वही वस्तु वे आपमें न देख लें ? आप देखते हैं कि इन विषयों के सम्बन्ध में आप कभी सोचते ही नहीं हैं। जब हम अपने गम्भीर, उदास पारिवारिक व्यक्ति की उपस्थिति में भयभीत होते हैं, तब हम यह खोज नहीं करते हैं, अपने आपसे प्रश्न नहीं करते हैं कि "हम आखिर क्यों डरते-हैं ?"

अब हम देखें कि गम्भीर होने का क्या अर्थ है ? आइए, हम इसकी खोज करें। आप कभी-कभी अत्यन्त तुच्छ बातों पर भी गम्भीर हो जाते हैं। उदाहरण के लिए साड़ी खरीदते समय आप अपना पूरा खयाल केवल इसी ओर केंद्रित कर लेते हैं, चिंता करते हैं, भिन्न-भिन्न दस दूकानों पर जाते हैं और प्रातः का पूरा समय ही विभिन्न नमूने देखने में बिता देते हैं। यह भी एक प्रकार की गम्भीरता है लेकिन यह अत्यन्त उथली गम्भीरता है। आप प्रतिदिन मन्दिर जाने में, माला चढ़ाने में, पुजारी को पैसे देने में गम्भीर हो सकते हैं लेकिन ये सब छिछली बातें हैं, क्यों कि सचाई या ईश्वर किसी मन्दिर में नहीं है। आप राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में काफी गम्भीर हो जाते हैं, जो कृत्रिम वस्तु है।

क्या आप जानते हैं कि यह राष्ट्रीयता क्या है ? यह भावना कि—"यह मेरा भारत है, मेरा देश है; फिर यह चाहे सही हो या गलत" अथवा यह सोचना कि "भारत आध्यात्मिक ज्ञान का अखण्ड भंडार है और इसीलिए यह समस्त देशों से बड़ा है,"—राष्ट्रीयता है। जब हम किसी देश के साथ पहचाने जाते हैं और हम उसपर अभिमान करते हैं तब विश्व में राष्ट्रीयता की भावना का जन्म होता है। राष्ट्रीयता एक झूठा देवता है। लेकिन कोटि-कोटि लोग इस सम्बन्ध में बड़े गम्भीर हैं, वे देश के नामपर युद्ध करते हैं, मरते हैं, मारते हैं और विनाश करते हैं और इसी गम्भीरता का उपयोग राजनेता अपने स्वार्थ के लिए करते हैं।

अतः आपने देखा कि असत्य बातों पर भी आप गंभीर होते हैं। लेकिन यदि आप सचमुच इस गंभीरता के अर्थ की खोज करें तो आपको ज्ञात होगा कि एक अन्य प्रकार की गंभीरता भी है जो किसी असत्य कार्य से नहीं नापी जा सकती है, जो किसी विशेष ढांचे में नहीं ढाली जा सकती है—इस प्रकार की गंभीरता का आगमन तब होता है जब आपका मन किसी परिणाम अथवा किसी स्वार्थ की कामना नहीं कर रहा होता है।

प्रश्नकर्ता : यह भाग्य क्या है ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप सचमुच इस समस्या में गहरे उतरना चाहते हैं ? प्रश्न पूछना सबसे आसान काम है। आपका प्रश्न पूछना तो तभी सार्थक हो सकता है जब आप इससे सीधे प्रभावित हों, उसके सम्बन्ध में गम्भीर हों। क्या आपने कभी महसूस किया है कि एक बार प्रश्न पूछने के बाद अधिकांश व्यक्तियों की दिलचस्पी ही समाप्त हो जाती है। कल एक व्यक्ति ने प्रश्न पूछा और बाद में वह जंभाइयाँ लेने लगा, सिर खुजलाने लगा और अपने पड़ोसी से बातचीत करने में लग गया। उसकी पूरी दिलचस्पी ही जाती रही। अतः मेरा सुझाव है कि आप तब तक कोई प्रश्न ही न पूछें जब तक कि आप स्वयं उसके संबंध में गंभीर न हो उठें।

यह भाग्य की समस्या अत्यन्त पेचीदी और कठिन समस्या है। आप देखते हैं कि जहाँ कारण है वहाँ निश्चित रूप से कार्य होगा ही। यदि अनगिनत व्यक्ति, फिर चाहे वे रूसी हों, अमरीकी हों या हिन्दू हों, युद्ध की तैयारी कर रहे हों, तब उनका भाग्य अनिवार्य रूप से युद्ध होगा; भले ही वे शांति की बातें करते हों अथवा यह कहते हों कि वे अपनी सुरक्षा के लिए यह सब कर रहे हैं। सत्य तो यह है कि उन्होंने कारण निर्मित कर दिये हैं, और इनका परिणाम निश्चित युद्ध होगा। इसी प्रकार जब लाखों व्यक्तियों ने इस सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण करने में शताब्दियाँ लगा दो हैं तब यह आवश्यक है कि व्यक्ति इनके प्रवाह में फँसे और इनके साथ बहें; भले ही कोई चाहे या न चाहे। और यह भाग्य क्या है ? यह एक विशिष्ट सभ्यता या संस्कृति की धारा में फँसने और बहने की प्रक्रिया का ही दूसरा नाम है।

मान लीजिए, आप किसी वकील के घर में जन्मे हैं और आपके पिता आपको भी वकील बनने के लिए बाध्य करते हैं। अब यदि आप यह मान लेते हैं तो आपका भाग्य स्पष्ट रूप से वकील बनने का हुआ फिर भले ही आपकी इच्छा कुछ और बनने की हो। लेकिन यदि आप वकील बनने से इन्कार कर देते हैं और आप वही कार्य करने पर दृढ़ रहते हैं जिसे आप अपने लिए सही समझते हैं जिसे आप प्रेम से करना चाहते हैं—फिर यह कार्य चाहे लेखन का हो अथवा चित्रकारी का, भले ही उस काम में आपको पैसे न मिलें, भले ही आपको भीख माँगनी पड़े – इसका अर्थ होगा कि आपने संस्कृति के प्रवाह से अपना अलग कदम रक्खा है। आपने उस भाग्य से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है जो आपके पिता आपके लिए चाहते थे। संस्कृति अथवा सभ्यता के साथ भी यही बात चरितार्थ होती है।

इसीलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम योग्य रीति से शिक्षित किये जाएँ हम इस प्रकार शिक्षित हों कि हम किसी जातीय, सांस्कृतिक अथवा पारिवारिक समुदाय की परम्परा से कुंठित न हो जाएँ! हम उस चलती-फिरती मशीन की भाँति न बन जाएँ जो पूर्व निश्चित परिणाम पर पहुँचती है। वह व्यक्ति, जो यह सम्पूर्ण प्रक्रिया समझ लेता है, इससे छुटकारा पाकर अकेला खड़ा होता है, वही अपनी राह स्वयं बनाता है; जब उसका कार्य असत्य से मुक्त होकर सत्य की ओर बढ़ता है, तब उसका यह मार्ग ही सत्य बन जाता है। ऐसा मानव भाग्य से मुक्त हो जाता है।

१४. अनुशासन

क्या आपने कभी इस विषय पर सोचा है कि हम अनुशासित क्यों हैं ? अथवा हम स्वयम् को अनुशासित क्यों करते हैं ? विश्व की समस्त राजनैतिक पार्टियाँ इस बातपर ज़ोर देती हैं कि पार्टी के अनुशासन का पालन किया जाए। आपके माता-पिता, आपके शिक्षक, आपका समाज—सभी आपसे कहते हैं कि आप अनिवार्य रूप से अनुशासित हों, नियंत्रित हों। पर क्यों ? क्या सचमुच ही अनुशासन की कुछ आवश्यकता है ? मैं जानता हूँ, आप यह सोचने के अभ्यस्त हो गए हैं कि वह अनुशासन जो आपपर समाज, धर्मगुरु, नीतिशास्त्र या आपके स्वयम् के अनुभवों द्वारा, थोपा गया है, आवश्यक है। एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति जो कहीं पहुँचना चाहता है, ढेरों रुपये कमाना चाहता है, अथवा महान् राजनीतिज्ञ बनना चाहता है—तब उसकी यह महत्त्वाकांक्षा ही उसे अनुशासित करती है। अतः आपके चारों ओर प्रत्येक व्यक्ति यही कह रहा है—अनुशासन आवश्यक है, आप निश्चित समय पर सोवें, निश्चित समय पर जागें, आप अनिवार्यतः अध्ययन करें, परीक्षाएँ उत्तीर्ण करें, माता-पिता की आज्ञा मानें आदि-आदि।

अब हम यह देखें कि हम अनुशासित ही क्यों होते हैं ? इस अनुशासन का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है, किसी वस्तु के अनुसार स्वयम् को बनाना। क्या यह सच नहीं है ? आप अपना सोचना किसी अन्य व्यक्ति के अनुसार बनावें, किसी कार्य को किसी विशेष तरीके से ही पूरा करें, दूसरे तरीके से नहीं, आप किसी एक प्रकार की इच्छा का प्रतिरोध करें, दूसरी को स्वीकारें, केवल ऊपरी-ऊपरी सतह से ही नहीं अपितु अपने मन की गहराई से, किसी वस्तु को बिना सोचे-समझे मानें, किसी इच्छा का दमन करें, किसी का अनुसरण करें। हमें सम्पूर्ण समाज द्वारा, हमारे शिक्षकों, पुजारियों, राजनीतिज्ञों, राजाओं, वकीलों द्वारा शताब्दियों, युगों-युगों से बताया गया है कि अनुशासन अत्यन्त आवश्यक है।

अतः मैं अपने आपसे पूछ रहा हूँ और मुझे आशा है, आप भी अपने आपसे पूछ रहे होंगे—क्या अनुशासन का होना सचमुच आवश्यक है ? अथवा क्या इस समस्या का निराकरण किसी दूसरे ही मार्ग से नहीं किया जा सकता है ? मेरा सोचना है कि इस समस्या को समझने का एक दूसरा भी मार्ग है और यही वह समस्या है जिसका सामना केवल विद्यालय ही नहीं, अपितु समस्त विश्व कर रहा है। जैसा कि आप देखते हैं कि यह साधारणतया मान लिया गया है कि निपुणता हासिल करने के लिए किसी नीति-शास्त्र या राजनैतिक संप्रदाय अथवा किसी प्रशिक्षण द्वारा अनुशासित होना अत्यन्त

आवश्यक है ताकि आप यन्त्रवत कार्य कर सकें। लेकिन अनुसरण के माध्यम से यह अनुशासन की प्रक्रिया हमारे मन को जड़ बना देती है।

अब हम यह देखें कि क्या यह अनुशासन आपको स्वतंत्र भी कर सकता है ? या यह केवल आपको किसी आदर्श नमूने का अनुकरण करना सिखाता है ? फिर यह नमूना चाहे साम्यवादियों की स्वप्निल दुनिया का हो अथवा कोई नैतिक या धार्मिक नमूना हो। क्या अनुशासन आपको कभी स्वतंत्र कर सकता है ? क्या वही अनुशासन जो अनेकों तरह से आपको बाँधता है, बंदी बनाता है, आपको मुक्त कर सकता है ? यह कैसे मुक्त कर सकेगा ? क्या एक बिलकुल ही दूसरे मार्ग से हम सचमुच इस संपूर्ण अनुशासन की समस्या के प्रति अपनी गहरी अंतर्दृष्टि जगा सकते हैं ? इसका अर्थ है, क्या आप एक ही साथ दो या दो से अधिक परस्पर विरोधी इच्छाएँ नहीं रखते हुए केवल एक ही इच्छा रख सकते हैं ? क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? अनुशासन की समस्या उसी समय उपस्थित हो जाती है जब आप एक ही साथ दो, तीन या दस इच्छाएँ रखते हैं। क्या यह सत्य नहीं है ? एक ओर आप धनी बनना चाहते हैं, मोटर या मकान चाहते हैं और दूसरी ओर आप इन वस्तुओं को त्यागना भी चाहते हैं, क्योंकि आप सोचते हैं कि बहुत थोड़ी वस्तुएँ रखना या कुछ भी नहीं रखना धार्मिक, नैतिक व न्याय्य है। और क्या यह सम्भव है कि आप योग्य रीति से शिक्षित हों ताकि आप परस्पर विरोधों से रहित पूर्णतया समग्र मानव बनें और अनुशासन की आवश्यकता ही न रह जाए ? इस समग्रता में ही स्वतंत्रता की भावना निहित है। और जब इस समग्रता का आगमन होता है तब अनुशासन अनावश्यक हो जाता है। समग्रता का अर्थ है—एक समय केवल एक होना, समस्त स्तरों पर पूर्णतया एक होना।

आप देखते हैं कि यदि आप अपनी नन्हीं-सी उम्र से ही सही रूप में शिक्षित किए जाएँ तब आपमें एक ऐसी अवस्था का आगमन होगा जिसमें न तो बाह्य विसंगति है और न तो आंतरिक। तब अनुशासन या जबरदस्ती की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी क्योंकि तब आप कोई कार्य पूर्णता, स्वतंत्रता और समग्रता से कर रहे होंगे। अनुशासन का आगमन तो तभी होता है जब हममें विसंगति हो। नेता, सरकार, संगठित धर्म यह चाहते हैं कि आप एक ही प्रकार के विचार करें, क्यों कि आप पक्के साम्यवादी, पक्के कैथालिक या और कुछ और पक्के बन सकें तब आप समस्या के रूप में नहीं रह जाएँगे, तब आप केवल श्रद्धा करेंगे और यंत्रवत् कार्य करेंगे। तब विसंगति का प्रश्न ही नहीं उठेगा क्यों कि आप किसी का अनुकरण कर रहे हैं। लेकिन सभी प्रकार का अनुकरण विनाशकारी है, क्यों कि यह यांत्रिक है। यह केवल अंधानुकरण है जिसमें सृजनात्मक मुक्ति नहीं है।

अब आप देखें कि क्या हम छोटी-सी उम्र से ही निर्भयता और आनंद की भावनाएँ उत्पन्न कर सकते हैं ताकि आपमें "अमुक बनने" और "अमुक नहीं बनने" का संघर्ष ही न रहे ? क्यों कि जिस क्षण आपमें संघर्ष पैदा होता है उसी क्षण यह विरोध पैदा होता है और फिर इस विरोध को जीतने के लिए अनुशासन की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत यदि आप सही रूप से शिक्षित किए जाएँ तब आप जो कुछ करेंगे वह समग्र कार्य होगा। वहाँ न विसंगति होगी, न अनिवार्यता। अनुशासन तब तक आवश्यक रहेगा जब तक कि यह समग्रता नहीं है। लेकिन अनुशासन चूंकि स्वतंत्र होने की ओर नहीं ले जाता है, अतः यह विनाशकारी है।

समग्रता के लिए किसी प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता नहीं है। समग्रता का अर्थ है—यदि मेरा कार्य शुभ है, एकदम सत्य और सचमुच सुन्दर है और उस कार्य को मैं यदि अपनी सम्पूर्णता से कर रहा हूँ तब मुझमें कोई विसंगति नहीं होगी, तब मैं किसी का अनुसरण नहीं कर रहा हूँगा। यदि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह हर दृष्टि से शुभ है, अपने आपमें सत्य है, किसी हिंदू परंपरा अथवा साम्यवादी सिद्धांतों के अनुरूप सत्य नहीं अपितु समस्त कालों और समस्त परिस्थितियों में सत्य हो, तब मैं समग्र मानव हूँगा और मुझे अनुशासन की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। अतः क्या विद्यालय का यह कार्य नहीं है कि वह आपमें इस प्रकार की समग्रतापूर्ण दृढ़ता का निर्माण करें ताकि आपका कार्य केवल आपकी इच्छानुरूप न होकर वह मूलतः शुभ हो, सही हो और सनातन सत्य हो ?

क्या आप जानते हैं कि यदि आप प्रेम करते हैं तो अनुशासन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती, क्या रहती है ? प्रेम स्वयम् सृजनात्मक बोधक्षमता लाता है, इसलिए वहाँ न तो प्रतिरोध होता है और न संघर्ष। परन्तु आप अपनी सम्पूर्ण समग्रता से तभी प्रेम कर सकते हैं जब आप विशेषकर बचपन से ही गहरी निर्भयता और अत्यधिक आनन्द महसूस करें, जिसका अर्थ है शिक्षक और विद्यार्थी एक-दूसरे में अतिशय विश्वास रक्खें अन्यथा हम वैसा ही समाज का निर्माण करेंगे जैसा कि आज का है। एक बिलकुल भिन्न संस्कृति एवम् एक नूतन सभ्यता का निर्माण तभी कर सकेंगे जब इस समग्रतामय कार्य का महत्त्व हम पूर्णतया समझ लेंगे—एक ऐसा कार्य जिसमें विसंगति न हो, अतः अनुशासन की आवश्यकता ही न रहे। लेकिन यदि हम केवल प्रतिरोध करेंगे, दमन करेंगे, तो ये दमित वासनाएँ निश्चित रूप से दूसरे रास्तों से प्रकट होकर रहेंगी और इस प्रकार विविध हानिकारक प्रवृत्तियाँ और विनाशकारी घटनाएँ चलती ही रहेंगी।

अतः यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि हम इस अनुशासन की समस्या को पूर्ण रूप में

समझ लें। मेरे लिए तो यह अनुशासन पूर्णतया घिनौनी वस्तु है। यह सृजनात्मक नहीं अपितु विध्वंसात्मक है। केवल आप कहीं यहीं तक न रुक जाएँ, कहीं आप इसका अर्थ अपनी इच्छानुसार कार्य करना न लगा लें। वास्तविकता तो यह है कि जो मानव प्रेम करता है वह, वह नहीं करता जो वह चाहता है। प्रेम स्वयम् सही कार्य की ओर आपको प्रवृत्त करता है। केवल प्रेम ही विश्व में सुव्यवस्था ला सकता है, अतः आप प्रेम को उद्घाटित होने दें।

प्रश्नकर्ता : हम गरीबों से नफरत क्यों करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप सचमुच गरीबों से नफरत करते हैं ? मेरा उद्देश्य आपको दोषी नहीं ठहराना है, मैं तो केवल यह पूछना चाह रहा हूँ कि क्या आप वास्तव में गरीबों से नफरत करते हैं ? और यदि करते हैं तो क्यों करते हैं ? क्या यह सोचकर कि आप स्वयम् भी एक दिन गरीब बन सकते हैं और इस हीनावस्था की कल्पना कर आप उसके प्रति अपनी अस्वीकृति प्रकट करते हैं, या इसलिए कि आप गरीब के अधम, मलीन और असुरक्षित जीवन को नापसन्द करते हैं ? चूंकि आप इस मलीनता, अस्तव्यस्तता, गन्दगी, कूड़ा-करकट से नफरत करते हैं, अतः आप कह देते हैं, "मेरा इन गरीबों से कोई सरोकार नहीं है।" यही बात है न ? लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि विश्व में इस गरीबी, इस मलीनता, इस अस्तव्यस्तता का निर्माण किसने किया है ? इनका निर्माण किया है आपने, आपके माता-पिता ने, आपकी सरकार ने, आपके सम्पूर्ण समाज ने; क्यों कि हमारे दिलों में प्रेम नहीं है। हम न तो अपने बच्चों से प्रेम करते हैं, न अपने पड़ोसियों से ! न जिन्दों से प्यार करते हैं, न मुर्दों से। किसी भी वस्तु के प्रति हममें बिलकुल ही प्रेम नहीं है। इस गन्दगी को, इस पीड़ा को, न तो ये राजनीतिज्ञ समूल नष्ट कर सकते हैं और न ये धर्म और सुधारक ही इन्हें मिटा सकते हैं क्यों कि उनका सम्बन्ध केवल कुछ इधर-उधर ऊपरी सुधार कर देना मात्र है। लेकिन यदि आप के दिलों में प्रेम हो तो ये कुरूपताएँ कल के कल नष्ट हो जाएँ।

क्या आप किसी वस्तु को प्यार करते हैं ? क्या आप जानते हैं कि प्रेम करने का क्या अर्थ है ? क्या आप जानते हैं कि जब आप किसी को पूरी तरह से प्रेम करते हैं, अपनी समग्रता से प्रेम करते हैं, तब ऐसा प्रेम भावुक नहीं होता, कर्तव्य प्रेरित नहीं होता, वह भौतिक या आध्यात्मिक नहीं होता। क्या आप किसी व्यक्ति या किसी वस्तु को अपनी सम्पूर्णता से प्रेम करते हैं—अपने माता-पिता को, अपने मित्र को, अपने कुत्ते को, किसी वृक्ष को, क्या आप इन्हें प्यार करते हैं ? मुझे डर है, आप प्रेम ही नहीं करते ! और यही कारण है, आपके दिलों में अनेक रिक्तताएँ हैं, जिनमें कुरूपता है, नफरत है, ईर्ष्या है। आप देखते हैं कि जो प्रेम करता है उसके हृदय में किसी दूसरी

वस्तु के लिए स्थान ही नहीं रह जाता। हमें सचमुच इसके सम्बन्ध में चर्चा कर उन वस्तुओं की खोज करनी होगी जो हमारे मनों में इतना उपद्रव मचाया करती है कि हम प्रेम ही नहीं कर सकते। केवल वे मानव, जो प्रेम करते हैं, जो अभय हैं, जो आनन्दित हैं, वे ही नूतन विश्व का निर्माण कर सकते हैं। प्रेमी, राजनीतिज्ञ, सुधारवादी अथवा आदर्शवादी साधू-संत नहीं।

प्रश्नकर्ता : आप सत्य, अच्छाई और समग्रता के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे हैं; इसका अर्थ हुआ कि दूसरी ओर असत्य, बुराई और विग्रह है। अतः बिना अनुशासन के कोई कैसे सच्चा, भला और समग्र बनें ?

कृष्णमूर्ति : दूसरे शब्दों में एक ईर्ष्यालु व्यक्ति किस प्रकार अनुशासन के बिना ईर्ष्या से मुक्त हो ? मुझे लगता है कि प्रश्न को समझना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उत्तर प्रश्न से जुदा नहीं, अपितु उसी में निहित है।

क्या आप जानते हैं कि ईर्ष्या का क्या अर्थ है ? आप बहुत सुन्दर लगते हैं, आप बहुत अच्छी पोशाक पहने हुए हैं, आपने बहुत ही सुन्दर साफा या साड़ी पहन रक्खी है, अतः मैं भी आपके समान पोशाक पहनना चाहता हूँ; लेकिन चूंकि मैं यह नहीं कर सकता, अतः ईर्ष्या करता हूँ। मैं जो कुछ हूँ उससे भिन्न बनना चाहता हूँ।

मैं ईर्ष्यालु हूँ, क्यों कि मैं आपके समान सुन्दर बनना चाहता हूँ। आप ही के समान मैं भी सुन्दर कपड़े, आलीशान मकान और ऊंची प्रतिष्ठा चाहता हूँ। चूंकि मैं अपने आपसे असंतुष्ट हूँ, अतः मैं आपके समान बनना चाहता हूँ या वे वस्तुएँ चाहता हूँ जो आपके पास हैं। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि यदि मैं जो कुछ हूँ उसे समझना प्रारम्भ करूँ, तब मैं अपनी तुलना किसी के साथ नहीं करूँगा, मैं किसी से ईर्ष्या नहीं करूँगा। चूंकि मैं अपने आपको बदलना चाहता हूँ, किसी अन्य व्यक्ति के समान बनना चाहता हूँ, अतः ईर्ष्या पैदा होती है। लेकिन यदि मैं यह कहूँ, "मैं जो भी हूँ उसे समझना चाहता हूँ" तब ईर्ष्या विसर्जित हो जाएगी, अनुशासन की आवश्यकता ही न पड़ेगी और अपने आपको समझने से समग्रता का आगमन होगा।

हमारी शिक्षा, हमारा वातावरण, हमारी सम्पूर्ण संस्कृति, सभी इस बात पर जोर देते हैं कि हम 'कुछ' बनें ! हमारे दर्शन, हमारे धर्म, हमारे शास्त्र भी यही कहते हैं। लेकिन मैं यह महसूस करता हूँ कि इस 'कुछ' बनने की प्रक्रिया से ही ईर्ष्या ध्वनित होती है, जिसका अर्थ है—"मैं जो कुछ हूँ, उससे सन्तुष्ट नहीं हूँ," अब यदि मैं यह समझना चाहूँ कि "मैं क्या हूँ," "मैं क्यों किसी दूसरे के साथ अपनी तुलना करता हूँ, मैं क्यों कुछ बनना चाहता हूँ," तब अनुशासन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है

क्यों कि तब मैं स्वयं को समझ रहा होता हूँ। इस समझने की प्रक्रिया में ही समग्रता का आगमन होता है, विसंगति विलीन हो जाती है और तब एक ऐसा संक्रमण होता है जो समग्रतामय है, पूर्णतामय है।

प्रश्नकर्ता : शक्ति क्या है ?

कृष्णमूर्ति : एक शक्ति यांत्रिक होती है जो इंजिन के अन्दर की ज्वलन क्रिया से, वाष्प से या विद्युत से उत्पन्न होती है। एक शक्ति वृक्ष के अन्दर भी होती है जो उसमें रस का संचार करती है, पत्ती का निर्माण करती है। इसी तरह हममें भी, सुस्पष्ट सोचने की, प्रेम करने की या फिर परमात्मा, गुरु या देश के नाम पर व्यक्तियों से नफरत करने की, उनपर हुकूमत करने की या उनका शोषण करने की, शक्ति होती है।

विद्युतशक्ति, अणुशक्ति या इसी प्रकार की अन्य शक्तियाँ अपने आपमें अच्छी हैं: क्या नहीं हैं ? लेकिन यदि मन अपनी शक्तियों का उपयोग दूसरे पर आक्रमण करने, जुल्म करने अथवा किसी स्वार्थ के लिए करता है, तब ऐसी शक्ति हर परिस्थिति में बुरी होती है। किसी समाज, किसी गिरजाघर अथवा किसी धार्मिक सम्प्रदाय का प्रमुख, जो दूसरे व्यक्तियों पर प्रभुत्व रखता है, वह बुरा व्यक्ति है क्यों कि वह यह जाने बिना ही कि वह खुद किधर जा रहा है, दूसरों को नियंत्रित कर रहा है, उन्हें आकार दे रहा है, उन्हें रास्ता दिखा रहा है। बड़े सगठनों के लिए यह जितना सत्य है उतना ही उन समस्त छोटे-छोटे समुदायों के लिए भी सत्य है जो सारे विश्व में फैले हुए हैं। जिस क्षण मनुष्य सुस्पष्ट हो जाता है, शांत हो जाता है, उसी क्षण वह नेतृत्व छोड़ देता है, प्रभुत्व से अलग हो जाता है।

अतः यह समझ लेना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि क्यों मनुष्य का मन दूसरों पर अधिकार चाहता है ? माता-पिता बच्चों पर अधिकार चाहते हैं, पत्नी पति पर या पति पत्नी पर अधिकार चाहते हैं। छोटे-से परिवार से प्रारम्भ होनेवाली यह बुराई बढ़ते-बढ़ते सरकार, राजनीतिज्ञ और धार्मिक व्याख्याताओं के जुल्मों का रूप ले लेती है। और क्या कोई व्यक्ति, बिना इस अधिकार की भूख के, बिना व्यक्तियों को प्रभावित किए, बिना उनका शोषण किए और बिना उस प्रभुत्व की अपेक्षा किए जो स्वयम् के लिए अथवा अपने देश, अपने गुरु, अपने सम्प्रदाय अथवा किसी संत के लिए की जाती है, रह सकता है ? प्रभुत्व के इस प्रकार के सभी रूप विनाशकारी हैं जो मानव के लिए पीड़ा लाते हैं। इसके विपरीत सचमुच में दयालु होना, दूसरों के प्रति ख्याल रखना, प्रेम करना, अद्भुत वस्तुएँ हैं जो समयातीत प्रभाव लाती हैं। प्रेम स्वयम् समय के अतीत है, अतः जहाँ प्रेम है वहाँ निष्ठुर प्रभुत्व नहीं।

प्रश्नकर्ता : हम प्रसिद्धि क्यों चाहते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आपने कभी इसपर चिंतन किया है। हम एक लेखक, एक कवि, एक चित्रकार, एक राजनीतिज्ञ, एक गायक अथवा अन्य किसी रूप में प्रसिद्ध होना चाहते हैं। पर क्यों ? इसलिए कि जो कुछ कार्य आप कर रहे हैं उसके प्रति आपका प्रेम नहीं है। यदि आप सचमुच संगीत, चित्रकारी अथवा काव्य-रचना से प्रेम करते होते, यदि सही माने में इनमें आपकी गहरी दिलचस्पी होती, तब आप यह कभी सोचते ही नहीं कि आपको प्रसिद्धि मिल रही है अथवा नहीं। प्रसिद्धि की कामना मिथ्या है, तुच्छ है, अज्ञान है; इसका कुछ भी अर्थ नहीं है। लेकिन चूंकि हम जो कार्य कर रहे हैं उससे हमारा प्रेम ही नहीं है, अतः हम अपने आपको इस प्रसिद्धि से समृद्ध करना चाहते हैं। हमारी वर्तमान शिक्षा सड़ी हुई है क्योंकि वह हमें केवल सफलता से प्रेम करना सिखाती है, उस कार्य से नहीं जो हम कर रहे हैं। हमारे लिए परिणाम, कार्य से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है।

क्या आप जानते हैं कि अपनी बुद्धिमत्ता को परदे के पीछे छिपाए रखना, गुमनाम होना, अपने कार्य को प्रेम करना, आडंबर नहीं करना, ये सब अच्छी बातें हैं। नाम रहित होकर करुणा का होना अच्छा है। इससे आप प्रसिद्ध नहीं होंगे, आपके चित्र समाचारपत्रों में नहीं छपेंगे, राजनीतिज्ञ आपके दरवाजे पर नहीं आवेंगे। तब आप नामरहित होते हुए सृजनशील मानव रहेंगे और उसमें एक महान सौन्दर्य है, महान ऐश्वर्य है।

१५. सहयोग

हम कितने ही विषयों और जीवन की कई समस्याओं के सम्बन्ध में चर्चा करते आ रहे हैं; लेकिन यदि आप यह जानते हों कि समस्या का क्या अर्थ है तो यह मेरे लिए बड़ी आश्चर्यजनक बात होगी। यदि समस्याओं को मन में जड़ें जमाने का अवसर दिया जाता है तो फिर उन्हें सुलझाना कठिन हो जाता है। हमारा मन ही इन समस्याओं को निर्माण करता है और फिर यही उन समस्याओं के लिए भूमि बन जाता है ताकि वे अपनी जड़ें वहाँ जमा सकें। और एक बार जब समस्या मजबूती से अपनी जड़े जमा लेती हैं तब उन्हें सुलझाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमारा मन इन समस्याओं के प्रति सजग रहे और उन्हें अपनी जड़ें जमाने के लिए भूमि न दे।

आज विश्व जिन मूलभूत समस्याओं का सामना कर रहा है उनमें से एक है–सहकार्य या सहयोग की समस्या। इस 'सहयोग' शब्द का क्या अर्थ है? सहयोग का अर्थ है–मिलकर कार्य करना, मिलकर निर्माण करना, मिलकर अनुभव करना, हममें कोई न कोई ऐसी एक जैसी चीज का होना ताकि हम एकसाथ मिलकर स्वतन्त्रता से कार्य कर सकें। साधारणतया चूंकि व्यक्ति सहजता, सरलता और प्रसन्नता से मिलकर कार्य करना नहीं चाहते, अतः उन्हें विविध प्रलोभनों एवम् पुरस्कारों द्वारा अथवा डर, सज़ा या धमकी द्वारा मिलकर कार्य करने के लिए मजबूर किया जाता है। सारे ही विश्व में यही चल रहा है। जुल्मी सरकारों के शासन में निर्दयता और ज़बरदस्ती से काम करवाया जाता है। यदि आप सहयोग नहीं करते तो आपका सफाया कर दिया जाता है या फिर आपको राज्यद्रोहियों के लिए बनाई गई जेलों में ठूंस दिया जाता है। इन तथाकथित ज्यादा सभ्य देशों में आपको 'मेरा देश' अथवा किसी 'आदर्श' का जिसे बड़ी सूझ के साथ तैयार किया गया है और जिसका खूब प्रचार किया गया है ताकि आप उसे स्वीकार कर सकें, प्रलोभन दिखाकर आप से सहयोग प्राप्त किया जाता है; अथवा फिर आप किसी व्यक्ति द्वारा रचे गये स्वप्नलोक की योजना को पूरी करने के लिए साथ में कार्य करते हैं।

अतः योजना, अधिकार या किसी विचार के प्रलोभन से व्यक्ति मिलकर कार्य करते हैं और साधारणतया इसे ही सहयोग कहा जाता है; इसमें सैदव पुरस्कार या सजा की भावना निहित है। दूसरे शब्दों में इस सहयोग के पीछे सर्वदा भय है। आप सदैव किसी न किसी चीज 'के लिए' कार्य करते हैं–देश के लिए, राज्य के लिए, पार्टी के

लिए, ईश्वर के लिए, गुरु के लिए, शांति के लिए अथवा अमुक-अमुक सुधार करने के लिए। इसके पीछे आपका केवल यही विचार है कि आप किसी विशेष फल को पाने के लिए मिलकर कार्य कर रहे हैं। आपके सामने एक आदर्श है—एक पूर्ण विद्यालय निर्माण करने अथवा अन्य कुछ करने का जिसके लिए आप कार्य कर रहे हैं, इसलिए आप सोचते हैं कि सहयोग आवश्यक है। इसमें अधिकार की भावना ध्वनित होती है, क्या नहीं होती? चूंकि आप कहते हैं, "हमें अमुक कार्य को, जो सही है; पूरा करने के लिए सहयोग करना ही होगा" जिसका अर्थ हुआ, आप यह मान कर चलते हैं कि अमुक व्यक्ति यह जानता है कि सही कार्य क्या है।

मैं इस प्रकार के कार्य को कतई सहयोग नहीं मानता। यह सहयोग नहीं, यह तो एक प्रकार का लोभ है, डर है, जबरदस्ती है। इसके पीछे यह धमकी है कि यदि आप सहयोग नहीं देंगे तो राज्य आपको मान्यता नहीं देगा या पंचवर्षिय योजना असफल हो जाएगी अथवा आप राजद्रोहियों के लिए बनाये गये जेलों में भेज दिए जायेंगे अथवा आपका देश युद्ध में हार जाएगा अथवा आप स्वर्ग में नहीं जा सकेंगे। इस प्रकार के प्रत्येक सहयोग में प्रलोभन की भावना निहित है और जहाँ यह प्रलोभन है वहाँ वास्तविक सहयोग नहीं।

इसी प्रकार उसे भी हम सहयोग नहीं कहेंगे जब मैं और आप महज़ इसलिए कार्य करते हैं क्यों कि हमने कोई कार्य मिल कर करने का निश्चय किया है। इस प्रकार की किसी भी स्वीकृति में महत्त्व उस 'कार्य' विशेष को दिया जाता है, मिलकर कार्य करने को नहीं। आप और हम किसी पुल का निर्माण करने के लिए या कोई सड़क बनाने के लिए या कुछ वृक्ष लगाने के लिए अपनी-अपनी सम्मति देते हैं, परन्तु इस प्रकार की सम्मति में सदैव मतभेद का भय बना रहता है—इस बात का भय कि कहीं मैं अपना हिस्सा पूरा न करूँ और सम्पूर्ण कार्य आपको ही पूरा करना पड़े।

अतः जब हम किसी भी प्रकार के प्रलोभन से अथवा केवल पारस्परिक सम्मति से कोई कार्य करते हैं तब वह सहयोग नहीं होगा, क्यों कि इस प्रकार के कार्यों के पीछे कुछ पाने अथवा कुछ टालने की भावना विद्यमान है।

मेरे लिये सहयोग एक बिलकुल ही दूसरी वस्तु है। मेरे लिए तो मिलकर रहने और साथ-साथ कार्य करने का खेल ही सहयोग है; यहाँ यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति किसी विशेष कार्य को ही करे। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं? छोटे-छोटे बच्चों में प्रायः मिलकर रहने और कार्य करने की भावना होती है। क्या आपने यह महसूस नहीं किया है? वे किसी भी वस्तु में सहयोग करेंगे। उनके लिए सहमति या मतभेद, पुरस्कार या सजा का प्रश्न ही नहीं उठता। वे सहज सहायता करना चाहते हैं। वे साथ में रहने और

कुछ करने के आनन्द के लिए स्वभावतः सहयोग करते हैं; लेकिन बड़े व्यक्ति यह कहकर कि "यदि तुम यह करोगे तो मैं तुम्हें वह वस्तु दूंगा, और यदि तुम यह नहीं करोगे तो मैं तुम्हें सिनेमा नहीं जाने दूंगा" बच्चों की इस प्राकृतिक और सहज सहयोग की भावना को ही नष्ट कर देते हैं और इस प्रकार उनमें दूषित तत्त्वों का निर्माण करते हैं।

अतः वास्तविक सहयोग का आगमन केवल इस सम्मति से नहीं हो सकता कि हम अमुक कार्य मिलकर पूरा करेंगे। लेकिन इसका आगमन तो इस एकात्मता की भावना के साथ होता है, क्योंकि उस भावना में किसी प्रकार की व्यक्तिगत विचारधारा या व्यक्तिगत मान्यता का आग्रह नहीं होता।

जब आप इस प्रकार का सहयोग समझ लेते हैं तब आप यह भी समझ लेंगे कि आप कब सहयोग न दें क्योंकि यह भी उतना ही आवश्यक है। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं? हम सबके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने में इस प्रकार के सहयोग की भावना को जागृत करें क्योंकि तभी सहयोग हमारे लिए केवल एक योजना अथवा एक सम्मति मात्र नहीं रह जाएगा, जिसके कारण हम मिलकर कार्य किया करते हैं। अपितु यह एकात्मकता की एक अद्भुत भावना बन जाएगी—मिलकर रहने और कार्य करने की एक ऐसी आनंदमय भावना जिसमें पुरस्कार या सज़ा के विचार कतई न हों। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लेकिन यह जानना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि कब सहयोग न किया जाए क्योंकि यदि हम यह नहीं समझ लेते हैं तो हम हिटलर समान उन जुल्मी नासमझ व महत्त्वाकांक्षी नेताओं को, जो प्रत्येक युग में होते आये हैं, जिनकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ और जिनके चमत्कारिक विचार हैं, सहयोग देते रहेंगे। अतः हमें यह भी समझ लेना आवश्यक है कि हम कब सहयोग न दें और यह हम तभी जान सकेंगे जब हम यह ज्ञात कर लेंगे कि वास्तविक सहयोग का आनंद क्या है।

यह चर्चा का अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है क्यों कि जिस क्षण आपको यह कहा जाता है कि आप मिलकर कार्य करें उसी क्षण आपकी ओर से उत्तर आता है, 'किसलिए? हम मिलकर कौन-सा कार्य करें?" दूसरे शब्दों में, हमारे लिए मिलकर रहने और कुछ करने की भावना की अपेक्षा 'कार्य' का महत्व अधिक हो जाता है और जब उस कार्य को, उस योजना या उस सिद्धांत या उस काल्पनिक आदर्श को, प्रमुख महत्व दिया जाता है तब वास्तविक सहयोग ही नहीं रह जाता है, तब केवल एक विचार हमें आपस में बांधे रखता है और यदि एक विचार हमें बाँध सकता है तो दूसरा विचार हमें बाँट भी सकता है। अतः महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम पुरस्कार और सज़ा के विचारों से रहित होकर अपने आप में इस साथ में रहने और मिलकर कुछ करने की

आनंदपूर्ण भावना को जागृत करें। अधिकांश बच्चों में यह भावना सहज और स्वतन्त्र रूप से पाई जाती है, बशर्ते कि बड़ों ने उसे नष्ट न कर दिया हो।

प्रश्नकर्ता : जब तक चिंता पैदा करनेवाली हमारी परिस्थितियाँ समाप्त नहीं हो जातीं तब तक क्या हम अपना मन चिंता से मुक्त कर सकते हैं ?

कृष्णमूर्ति : तब आपको उनका सामना करना होगा। चिंता से मुक्ति पाने के लिए आप प्रायः समस्याओं से पलायन करते हैं। तब आप मन्दिर अथवा सिनेमा की ओर भागते हैं या कोई पत्रिका पढ़ते हैं या रेडियो सुनते हैं अथवा आप मनोरंजन का कोई दूसरा मार्ग ढूंढ़ते हैं। लेकिन पलायन से समस्या हल नहीं होतीं, क्योंकि जब आप लौटते हैं तब समस्या फिर वही उपस्थित हो जाती है। तो फिर आप प्रारम्भ से ही समस्या का सामना क्यों नहीं करते ?

यह चिंता है क्या ? आप इस बात की चिंता करते हैं कि आप परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे या नहीं और आप इस बात से डरते हैं कि कहीं आप असफल न हो जाएँ। अतः आप कठिन परिश्रम करते हैं और रात-रात भर अध्ययन करते हैं। यदि आप असफल हो जाते हैं तो आपके माता-पिता निराश होंगे और तब आप यह नहीं कह सकेंगे, "मैंने बाज़ी मार ली है, मैंने परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है।" अतः जब तक कि परीक्षा नहीं समाप्त हो जाती है और परिणाम नहीं निकल जाता है, तब तक आप चिंता किया करते हैं। अब क्या इससे आप पलायन कर सकते हैं ? क्या परिस्थिति से भाग सकते हैं ? सचमुच आप नहीं भाग सकते हैं। अतः आप इसका सामना करें। पर आप चिंता करते ही क्यों हैं ? आपने अध्ययन किया है, आपने पूरे-पूरे प्रयत्न किए हैं, अब चाहे आप उत्तीर्ण होंगे या अनुत्तीर्ण। आप जितनी ज़्यादा चिंता करते हैं उतने ही आप ज़्यादा भयभीत और निराश होते जाते हैं। आपकी सोचने की शक्ति क्षीण होती जाती है और जब सचमुच परीक्षा आ जाती है तब आप बिलकुल लिख नहीं पाते हैं। आप तब केवल घड़ी की ओर देखते रहते हैं। मेरे साथ भी ठीक यही बात घटित हुई थी।

जब हमारा मन बार-बार लगातार किसी समस्या पर सोचता रहता है तब इसे हम चिन्ता कहते हैं, क्या नहीं कहते हैं ? अब हम देखें कि कोई चिन्ता से कैसे मुक्त हो ? सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हमारा मन इस समस्या को अपनी जड़ें जमाने के लिये भूमि न दें।

क्या आप इस मन को जानते हैं ? महान दार्शनिकों ने इस मन के स्वभाव का निरीक्षण करने के लिए वर्षानुवर्ष व्यतीत कर दिए हैं। इस पर बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे गए हैं; लेकिन मेरा विचार है कि यदि कोई व्यक्ति सचमुच अपनी पूरी समग्रता के साथ

मन की खोज करे तो वह उसे बड़ी आसानी से समझ सकता है। क्या आपने कभी अपने मन का निरीक्षण किया है ? यह मन क्या है ? आपने जो अब तक सीखा है, आपमें जो छोटे-छोटे अनुभवों की स्मृतियाँ हैं, आपके माता-पिता एवं शिक्षकों ने आपको जो कुछ कहा है, पुस्तकों में आपने जो पढ़ा है और वह जो आपने अपने चारों ओर देखा है, यही सब है आपका मन। आपका मन वह भी है जो निरीक्षण करता है, जो परीक्षण करता है, जो सीखता है, जो तथाकथित गुणों को साधता है, जो विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है, जो इच्छाएँ करता है, जो भयभीत होता है। यह ऊपरी-ऊपरी सतह से दिखाई देनेवाला मन ही हमारा सम्पूर्ण मन नहीं है, अपितु इससे भी कहीं ज्यादा गहरी परतोंवाला अवचेतन मन भी है, जिसमें जातिगत महत्त्वाकांक्षाएँ, उत्तेजनाएं, अभिलाषाएं और संघर्ष छिपे हुए हैं। यह सब हमारा मन है जिसे हम चेतना कहते हैं।

जिस तरह एक माँ अपने बच्चे की घर की एक मालकिन अपने रसोईघर को अथवा एक राजनीतिज्ञ अपनी प्रसिद्धि अथवा संसद-भवन में अपनी प्रतिष्ठा की हर क्षण चिंता किया करता है, इसी तरह हमारा मन भी सदैव किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहना चाहता है। ऐसा व्यस्त मन समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ है। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? केवल अव्यस्त मन ही ताजगी से समस्या को समझ सकता है।

आप ज़रा अपने मन का निरीक्षण करके देखें कि वह कितना व्याकुल है। वह किस प्रकार हर क्षण किसी न किसी कार्य में उलझा हुआ है—वह कभी कल की बातों को याद करता है, तो कभी अभी-अभी सीखी हुई वस्तुओं का स्मरण करता है, या कभी कल के लिए योजनाएँ बनाता है। यह एक क्षण भी कभी विश्राम में नहीं रहता, इस विश्राम से मेरा यह अर्थ मन की स्थिरता या मानसिक शून्यता से नहीं है। जहाँ तक हमारा मन महान से महान या तुच्छ से तुच्छ बातों में व्यस्त है वहाँ तक हमारा मन भी तुच्छ है, क्षुद्र है। और क्षुद्र मन समस्याओं को सुलझा नहीं सकता है, वह तो केवल उनसे व्यस्त हो सकता है। समस्या चाहे कितनी ही महान् क्यों न हो लेकिन हमारा मन उससे व्यस्त होकर उसे तुच्छ बना देता है। वह मन जो अव्यस्त है, विश्राम में है, ताजा है, वही समस्या को समझ सकता है, उन्हें हल कर सकता है।

लेकिन अव्यस्त मन रखना अत्यन्त कठिन है। कभी यदि आप किसी सरिता के तट पर या अपने कमरे में शांति से बैठें और अपने आपका निरीक्षण करें तो आप देखेंगे कि आपके परिचित इस छोटे से स्थान में, जिसे आप मन कहते हैं, कितने विचार भरे हुए हैं और वे कितनी प्रबलता से प्रवाहित हो रहे हैं ! जहाँ तक मन भरा हुआ है,

किसी वस्तु से व्यस्त है, वहाँ तक यह क्षुद्र है, छोटा है, फिर भले ही वह एक घर की मालकिन का मन हो अथवा किसी महान वैज्ञानिक का। ऐसा मन किसी समस्या को क्यों न अपने हाथ में ले, पर वह उसे हल नहीं कर सकता। इसके विपरीत जो मन अव्यस्त है, जिसमें अवकाश है, वही समस्या को अपने हाथों में ले सकता है, उन्हें सुलझा सकता है, क्यों कि ऐसा मन ताजा मन होता है और वह समस्या को पुरानी परम्परा, स्मृतियाँ और विरासत के माध्यम से नहीं अपितु नवीन ढंग से हल करता है।

प्रश्नकर्ता : हम अपने आपको कैसे जानें ?

कृष्णमूर्ति : आप अपने चेहरे को इसलिए जानते हैं क्योंकि आप उसे प्रायः शीशे में प्रतिबिंबित होते हुए देखते आये हैं। परन्तु एक शीशा और भी है जिसमें आप अपने आपको पूर्णतया देख सकते हैं—अपना चेहरा नहीं, अपितु वह सब जो आप सोचते हैं, महसूस करते हैं, आपकी उत्तेजनाएँ, आपकी अतृप्त इच्छाएँ, आपकी उत्कण्ठाएँ, आपके भय आदि। यह शीशा हमारे सम्बन्धों का शीशा है—आपके और आपके माता-पिता के बीच के सम्बन्ध, आपके और आपके शिक्षकों के बीच के सम्बन्ध, सरिता, वृक्ष, वसुधा और इनके और आपके बीच के सम्बन्ध, आपके और आपके विचारों के बीच के सम्बन्ध। यह सम्बन्ध ही वह शीशा है जिसके माध्यम से आप अपने रूप को देख सकते हैं, उस रूप को नहीं जिसकी आप कल्पना करते हैं, बल्कि जैसा वास्तव में आप हैं। एक साधारण शीशे में देखते समय मैं यह अभिलाषा कर सकता हूँ कि मेरा चेहरा जरा सुन्दर दिखलाई दे, लेकिन ऐसा होता नहीं है। शीशे में तो मेरा वास्तविक चेहरा ही प्रतिबिंबित होता है। वहाँ मैं अपने आपको धोखा नहीं दे सकता हूँ। इसी भाँति मैं अपने वास्तविक रूप को भी दूसरों के साथ के मेरे संबन्धों के शीशे में देख सकता हूँ। मैं यह देख सकता हूँ कि मैं किस प्रकार व्यक्तियों से बातें करता हूँ, उन व्यक्तियों के साथ कितनी नम्रता से पेश आता हूँ जो मुझे कुछ दे सकते हैं, और उनसे किस असभ्यता या नफरत से बात करता हूँ जो मुझे कुछ नहीं दे सकते हैं। जिनसे मैं भयभीत होता हूँ उनका मैं कितना खयाल रखता हूँ। जब कोई बड़ा व्यक्ति आ जाता है तब मैं किस प्रकार खड़ा हो जाता हूँ, परन्तु सेवक के आनेपर मेरा खयाल भी इधर नहीं जाता है। अतः अपने आपको सम्बन्धों के माध्यम से निरीक्षण करने से मुझे ज्ञात हुआ कि मैं किस प्रकार झूठ-मूठ ही व्यक्तियों का सम्मान करता हूँ। मैं यह भी खोज कर सकता हूँ कि वृक्षों, पक्षियों, पुस्तकों और विचारों के साथ के मेरे सम्बन्धों में मेरा क्या स्वरूप है ?

भले ही आप विश्व की समस्त उपाधियाँ प्राप्त कर लें, लेकिन यदि आप अपने आपको नहीं जानते तो आप महामूढ़ व्यक्ति हैं। सम्पूर्ण शिक्षा का मूल उद्देश्य ही अपने आपको जानना है, आप भले ही बहुत जानकारी इकट्ठी कर लें, बहुत सा लिख-पढ़ लें, परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लें, परन्तु आत्मज्ञान की अनुपस्थिति में ये सब जीवन के नासमझी के रास्ते हैं। चाहे आप भगवद्गीता, उपनिषद कुरान अथवा बाइबिल से उद्धरण प्रस्तुत कर सकते हों लेकिन जब तक आप अपने आपको नहीं जानते हैं तब तक आपकी स्थिति उस तोते के समान है जो बार-बार वे ही शब्द दुहराया करता है। इसके विपरीत यदि आप अपने आपको जानना आरम्भ कर देते हैं, भले ही छोटे-से रूप में क्यों न हो, तब आप महसूस करेंगे कि एक अद्भुत सृजन-प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। तब अचानक आपको दिखाई देगा कि आप कितने लोभी, कितने झगड़ालू, कितने क्रोधी और कितने ईर्ष्यालु व नासमझ हैं। यदि हम अपने इस वास्तविक रूपको भली भाँति देखें, उसे बदलने का प्रयास न करें, हम 'जो हैं' उसे देखें तो एक अद्भुत उद्घाटन होगा! तब आप अधिकाधिक गहराइयों में प्रवेश करते जाएँगे क्यों कि आत्मज्ञान की कोई सीमा ही नहीं है।

इसी आत्मज्ञान के माध्यम से आप यह जानना प्रारम्भ करते हैं कि ईश्वर क्या है, सत्य क्या है, समयातीत अवस्था क्या है। आपके शिक्षक वह जानकारी, जो उन्हें अपने शिक्षकों से प्राप्त हुई है, भले ही आप तक पहुँचा दें, भले ही परीक्षाओं में आप सफलता पा लें, उपाधियाँ तथा और बहुत कुछ प्राप्त कर लें, लेकिन जब तक आप अपने आपको ठीक उसी प्रकार नहीं जान लेते हैं, जिस प्रकार कि आप अपने चेहरे को शीशे के माध्यम से पूरी तरह जान लेते हैं, तब तक आपके इस ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं है। पढ़े-लिखे व्यक्ति जो स्वयम् को नहीं जानते वे सचमुच बुद्धिमान नहीं है क्यों कि वे यह नहीं जानते कि सोचना क्या है, जीवन क्या है! अतः यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि शिक्षक स्वयम सही माने में शिक्षित हो, इसका अर्थ है कि वे अपने मन व अपने हृदय की प्रक्रिया को अवश्य जानें, वे अपने सम्बन्धों के शीशे में देख सकें कि उनका वास्तविक रूप क्या है। आत्मज्ञान विवेक का आरम्भ है। आत्मज्ञान में अखिल विश्व समा जाता है। यह मानवता के समस्त संघर्षों को आत्मसात कर लेता है।

प्रश्नकर्ता : क्या हम बिना प्रेरक की सहायता के अपने आपको जान सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : अपने आपको जानने के लिए क्या कोई प्रेरणा देनेवाला होना अनिवार्य है, जो आपको उत्तेजित करें, आगे बढ़ाएँ, आपको धकेले? आप प्रश्न को

बड़ी सावधानी से सुनें तभी आप उसका सही उत्तर खोज सकेंगे। यदि आप प्रश्न को पूर्णतया समझ लेते हैं तो आपको उसका आधा उत्तर उपलब्ध हो जाता है, क्या नहीं उपलब्ध हो जाता ? लेकिन आप तब तक समस्या का पूर्णतया अध्ययन नहीं कर सकते जब तक कि आपका मन उत्तर पाने की उत्सुकता से व्यस्त है।

प्रश्न है : इसलिये कि हम अपने आपको जान सकें, क्या किसी प्रेरक की आवश्यकता नहीं हैं, जो हमें उत्तेजित करे ?

अब यदि आप कोई गुरु या कोई प्रेरक अपने को उत्साहित करने के लिए अनिवार्यतः रखते हैं, जो आपको यह कह सके कि, 'आप अच्छी प्रगति कर रहे हैं' तो इसका अर्थ यही होगा कि आप उस व्यक्ति पर आश्रित होते जा रहे हैं। अब यदि वह व्यक्ति कभी दूर चला जाता है तो आपका सब कुछ लुट जाता है। जिस क्षण आप प्रेरणा पाने के लिए किसी व्यक्ति या किसी विचार पर आश्रित हो जाते हैं, उसी क्षण निश्चित रूप से भय का आगमन हो जाता है, अतः यह वास्तविक प्रेरणा नहीं है। इसके विपरीत यदि आप किसी मृत शरीर को ले जाते हुए देखें या देखें कि दो व्यक्ति आपस में किस प्रकार झगड़ रहे हैं, तो क्या आप सोचने नहीं लग जाएँगे ? जब आप किसी अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति का अवलोकन करते हैं, जब आप यह निरीक्षण करते हैं कि आप किस प्रकार राज्यपाल के पैरों पड़ रहे हैं, तब क्या आप विचार नहीं करेंगे ? अतः गिरती हुई पत्ती या एक मृत पक्षी से लेकर व्यक्ति के स्वतः के व्यवहार तक प्रत्येक वस्तु में प्रेरणा निहित है ? यदि आप इन समस्त वस्तुओं का निरीक्षण करें, तो आप हर क्षण सीखते रहेंगे, लेकिन यदि आप किसी व्यक्ति का यह सोचकर कि 'यह मेरा शिक्षक है' अवलोकन करते हैं तो आप सब कुछ खो बैठेंगे और यह व्यक्ति आप के लिये दुःस्वप्न बन जाएगा। इसीलिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि आप किसी भी व्यक्ति का अनुगमन न करें, आप केवल एक विशेष शिक्षक से ही नहीं सीखें अपितु आप सरिता से सीखें, फूलों और वृक्षों से सीखें, उस महिला से सीखें जो बोझा उठाए हुए है ! आप अपने परिवार के सदस्यों से और अपने ही विचारों से सीखें। यह एक ऐसी शिक्षा है जो कोई दूसरा नहीं दे सकता, यह आपको स्वयम् से ही मिल सकती है और यही इसका सौन्दर्य है। इसके लिए निरन्तर खोज करने वाले मन की ज़रूरत है, अनवरत निरीक्षण की आवश्यकता है। आपको यह सब कुछ निरीक्षण एवम् संघर्ष से, आनंद एवम् अश्रुओं से सीखना होगा।

प्रश्नकर्ता : समग्रता से रहना एवं समग्रता से कार्य करना व्यक्ति के लिए कैसे सम्भव है जब कि उसके अन्तर में इतनी विसंगतियाँ हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप जानते हैं कि यह आत्मविसंगति क्या है ? यदि मैं जीवन

में कोई विशेष कार्य करना चाहता हूँ और साथ ही साथ अपने माता-पिता को भी खुश रखना चाहता हूँ, जो मुझसे दूसरा कार्य करवाना चाहते हैं, तब मुझमें विरोध होगा, संघर्ष होगा, विसंगति होगी अब मैं यह कैसे हल करूँ ? यदि मैं अपनी यह विसंगति दूर नहीं करता तो स्पष्ट है कि मुझमें और मेरे कार्य में एकता नहीं आ पायेगी । अतः सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि मैं इस आत्मविसंगति से मुक्त होऊँ ।

मान लीजिये, आप चित्रकला का अध्ययन करना चाहते हैं क्योंकि चित्र बनाना आपके जीवन के आनंद का विषय है, लेकिन आपके पिता इस बात पर जोर देते हैं कि आप एक वकील या एक व्यापारी बनें, अन्यथा वे आपसे अपना सम्बन्ध तोड़ लेंगे और आपको पढ़ाई का व्यय नहीं देंगे, तब आपमें विसंगति पैदा होती है, क्या नहीं पैदा होती ? अब आप इस आंतरिक बिसंगति को कैसे दूर करेंगे ताकि आप इसके संघर्ष और इसकी पीड़ा से मुक्त हो सकें ? जहाँ तक आप इस आत्म-विसंगति में उलझे हुए हैं वहाँ तक आप कुछ विचार नहीं कर सकते । अतः इस विसंगति को दूर करने के लिए आपको इन दोनों में से एक ही चीज करनी होगी । आप कौनसी चीज करेंगे ? क्या आप अपने पिता के सामने झुक जाएँगे ? यदि आप झुक जाते हैं तो इसका अर्थ होगा– आपने अपने आनंद को एक तरफ रख दिया है, आपने उस व्यक्ति से विवाह कर लिया है जिसे आप कतई प्रेम नहीं करते ! क्या ऐसा करने से आपकी विसंगति समाप्त हो जायेगी ? इसके विपरीत यदि अपने पिता का प्रतिरोध करते हैं और कहते हैं, 'मुझे दुख है, मैं चित्रकारी करूँगा, इसके लिए मुझे भले ही भीख माँगनी पड़े या भूखों मरना पड़े," तब आपमें कोई विसंगति न रहेगी, तब "आपका होना" और "आपका करना" दोनों एक होंगे । क्योंकि आप जानते हैं कि आप क्या करना चाहते हैं और जो करना चाहते हैं उसे आप अपनी समग्रता से कर रहे हैं । लेकिन यदि अपने पिता की बात मानकर आप वकील या व्यापारी बन जाते हैं जब कि आपका हृदय अन्दर ही अन्दर चित्रकारी के लिए दहक रहा है, तब आप सुस्त और थके-मांदे इन्सान बने रहेंगे और आजीवन वेदना, निराशा और पीड़ा में दूसरों को भी, स्वयम को भी नष्ट करते रहेंगे ।

आपके लिए इस आवश्यक समस्या पर सोचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्यों कि ज्यों ही आप कुछ बड़े हो जाएँगे त्यों ही आपके माता-पिता आपसे कोई विशेष कार्य ही करवाना चाहेंगे और आप स्वयम् यदि इस विषय में एकदम स्पष्ट नहीं है कि आप कौन-सा कार्य सचमुच करना चाहते हैं तब आपको भी उसी प्रकार से हाँका जाएगा, जैसे कि भेड़ को कत्लखाने की ओर हांका जाता है । लेकिन यदि आप यह खोज लेते हैं कि आप

कौन-सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं और उसी में अपनी समग्रता लगा देते हैं तब आपमें यह विसंगति न होगी और उस अवस्था में आपका होना और आपका करना दोनों एक होंगे।

प्रश्नकर्ता : क्या अपने मनपसन्द कार्य के लिए हम अपने माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य को भुला दें ?

कृष्णमूर्ति : आप इस विचित्र शब्द 'कर्तव्य' से क्या अर्थ लेते हैं ? किसके प्रति कर्तव्य ? माता-पिता के प्रति कर्तव्य, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, समाज के प्रति कर्तव्य ? यदि आपके माता-पिता चाहते हैं कि आप वकील बनें ताकि आप भली भाँति उनका निर्वाह कर सकें परन्तु आप यदि सचमुच संन्यासी बनना चाहते हैं तब आप क्या करेंगे ? चूंकि संन्यासी बनना भारत में बड़ा सुरक्षित और सम्माननीय कार्य समझा जाता है, अतः आपके पिता संभवतः तैयार हो जाएँ। संन्यासी की पोशाक धारण करते ही आप महान् व्यक्ति बन जाएंगे और आपके पिता इससे अपना स्वार्थ साधेंगे। लेकिन यदि आप अपने ही हाथों काम करना चाहते हैं, आप एक सादे बढ़ई या मिट्टी की वस्तुएँ बनाने-वाला कुम्हार बनना चाहते हैं तब आपका कर्तव्य कहाँ चला जाता है ? क्या आपको कोई बता सकता है ? अतः क्या आपको स्वयम् अत्यन्त सावधानी और सभी पहलुओं से यह नहीं सोचना चाहिए कि आप कौन-सा काम प्रेम से करना चाहते हैं ताकि आप यह कह तो सकें, कि "मैं यह महसूस करता हूँ कि मेरे लिए यही कार्य सही है और मैं इसी को करता रहूँगा, भले ही मेरे पिता इससे सहमत न हों"। चूंकि आपके माता-पिता और आपका समाज कहता है, केवल इसीलिए आप किसी कार्य को न करें, लेकिन आप सचमुच खोजें कि इस 'कर्तव्य' से कौन-सी बातें ध्वनित होती हैं। आप यह पूर्ण स्पष्टता से देखें कि आपके लिए क्या सत्य है और उसके प्रति आप आजीवन दृढ़ रहें। भले ही इसके लिए आपको भूखा मरना पड़े, पीड़ा और मौत से संघर्ष करना पड़े; लेकिन इसके लिए अतिशय मेधा, अतिशय समझ, गहरी अन्तर्दृष्टि और अत्यधिक प्रेम की आवश्यकता होती है। आप देखते हैं यदि आप केवल कर्तव्य समझकर अपने माता-पिता को सहारा देते हैं तब आपका यह सहारा एक बाजारू वस्तुमात्र रह जाता है, जिसका कुछ भी अर्थ नहीं होता है, क्यों कि उसमें प्रेम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मैं चाहे कितना ही ज़्यादा चाहूँ कि मैं इन्जीनियर बनूं, लेकिन मेरे पिता यदि इस कार्य के विरुद्ध हैं और वे मुझे सहायता नहीं देते हैं तो मैं इन्जीनियरिंग का अभ्यास कैसे कर सकूँगा ?

कृष्णमूर्ति : यद्यपि आपके पिता ने आपको मकान से बाहर निकाल दिया और

आप फिर भी दृढ़ता से इन्जीनियर बनना चाह रहे हैं तब ऐसी अवस्था में, क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आपको इन्जीनियरिंग के अध्ययन करने के लिए कोई भी साधन या मार्ग नहीं उपलब्ध हो सकेगा ? तब आप सहायता के लिए व्यक्तियों से प्रार्थना करेंगे, मित्रों के पास जावेंगे। श्रीमानजी, जीवन बड़ा रहस्यमय है। जिस क्षण आप इसके संबंध में कि आप सचमुच क्या करना चाहते हैं, एकदम स्पष्ट होते हैं, तब कुछ अवश्य घटित होता है। उस समय जीवन आपकी सहायता के लिए आता है—तब कोई मित्र, कोई संबंधी, कोई शिक्षक, आपकी दादी माँ अथवा अन्य कोई व्यक्ति आपकी सहायता करता है। लेकिन यदि आप अपने पिता के डर के मारे कि कहीं वे आपको घर से न निकाल दें, प्रयत्न ही नहीं करें तब आप नष्ट हो जाएँगे। जीवन उन मनुष्यों की सहायता नहीं करता जो केवल भय के कारण दूसरों की बात मान लेते हैं। लेकिन यदि आप यह कहते हैं, "मैं यह कार्य सचमुच करना चाहता हूँ और मैं इसे करके ही रहूँगा" तब आपको यह ज्ञात होगा कि कुछ अलौकिक घटना घट रही है। भले ही आपको इसके लिए भूखा रहना पड़े, संघर्ष करना पड़े लेकिन आप एक सच्चे मानव होंगे, किसी की नकल मात्र नहीं; और यही जीवन की विलक्षणता है।

आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्ति अकेले खड़े होने में डरते हैं और मैं जानता हूँ कि यह विशेषकर आप जैसे युवकों के लिए अत्यन्त कठिन है क्यों कि इस देश में अमेरिका और यूरोपीय देशों के समान आर्थिक स्वातंत्र्य नहीं है। यहाँ अधिक आबादी है, अतः प्रत्येक व्यक्ति हार मान लेता है। आप कहते हैं, "मेरा क्या होगा" लेकिन यदि आप दृढ़ता रखते हैं तो आपको ज्ञात होगा कि कोई न कोई व्यक्ति आपको सहायता कर रहा है। जब आप सचमुच समाज की अपेक्षा के खिलाफ खड़े होते हैं, जब आप एक अकेले रह जाते हैं, तब जीवन आपकी सहायतार्थ आता है।

आप जानते हैं कि प्राणीविज्ञान में एक अद्भुत वस्तु घटित होती है जिसे नवोदय (Sport) कहते हैं, जो अपनी जाति से एकदम भिन्न होता है और एकाएक अपने आप फूटता है। यदि आपका बगीचा हो और आपने उसमें एक विशेष प्रकार की जाति के फूल लगाए हों तो किसी प्रातः आपको दिखाई देगा कि इस जाति से एक ऐसी नवीन व भिन्न वस्तु पैदा हुई है जो बिलकुल ही भिन्न प्रकार की है। वह नवीन वस्तु नवीन अंकुर या नवोदय (Sport) कही जाती है। चूंकि यह एक नवीन वस्तु होती है अतः माली इसमें विशेष दिलचस्पी लेता है और हमारा जीवन भी इसी प्रकार का है। जिस क्षण आप साहस करते हैं उसी क्षण कुछ वस्तु आपमें और आपके

आसपास घटित होने लगती है। जीवन अनेकों मार्गों से आपकी सहायता करता है। जिस रूप में यह आपके पास आता है उसे भले ही आप नापसंद करें—वह पीड़ा, संघर्ष व भूख के रूप में आप के पास आए लेकिन जब आप जीवन को आमंत्रित करते हैं, तब वस्तुएँ घटित होने लगती हैं। लेकिन आप देखते हैं कि हम जीवन को आमंत्रित ही करना नहीं चाहते, हम तो आसान खेल खेलना चाहते हैं और जो आसान खेल खेलते हैं वे बड़ी आसानी से मृत्यु भी प्राप्त कर लेते हैं; क्या ऐसा नहीं होता है ?

१६. चिरंतन जीवन

कल सुबह मैंने एक मृत शरीर देखा जो श्मशान पर जलाने के लिए ले जाया जा रहा था। उस पर लाल चमकीला कपड़ा लिपटा हुआ था और चार मनुष्य इसे एक लय के साथ ले जा रहे थे। मैं सोचता हूँ कि यह मृत शरीर किसी व्यक्ति पर कितना असर डालता होगा! क्या आप इस बात को कभी नहीं सोचते हैं कि व्यक्ति क्यों मरता है? आप एकदम नई मोटर खरीदते हैं और कुछ ही वर्षों में यह घिस जाती है। इसी तरह हमारे शरीर का भी क्षय होता है। लेकिन इसके आगे आप यह खोज नहीं करते कि हमारे मन का क्षय क्यों होता है? कभी-न-कभी हमारे शरीर की मृत्यु होगी ही, परन्तु हममें से अधिकांश व्यक्तियों के मन पहले से ही मुर्दा होने लग जाते हैं। पहले से ही उनके मन का ह्रास आरंभ हो जाता है, लेकिन इस मन का आखिर क्यों ह्रास हो? हमारा शरीर तो इसलिए नष्ट होता है कि इसका सतत उपयोग किया जाता है, इसकी भौतिक रचना घिस जाती है, बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था, खराब भोजन, कमजोर वंश-परंपरा--इन सभी कारणों से हमारे शरीर का क्षय और उसकी मृत्यु होती है। लेकिन हमारे मन का क्यों ह्रास हो, क्यों यह वृद्ध हो, भारी हो, मंद हो?

एक मृत शरीर को देखकर क्या आपको कभी अचरज नहीं हुआ है? हमारा शरीर निश्चित है कि मृत्यु को प्राप्त होगा हो, लेकिन हमारा यह मन क्यों जर्जर हो? क्या कभी यह प्रश्न आपके मन में उठा है? क्यों कि केवल वृद्धों का ही नहीं, अपितु युवकों का मन भी निश्चित रूप से जर्जर होता है। हम देखते हैं कि युवकों का मन पहले से ही मंद, भारी, असंवेदनक्षम होता जा रहा है और यदि हम यह खोज कर सकें कि यह मन क्यों जर्जर होता है, तब हम संभवतः कुछ ऐसी वस्तु का आविष्कार कर सकेंगे जो सचमुच अविनाशी है, तब हम यह भी समझ सकेंगे कि चिरंतन जीवन क्या है— एक ऐसा जीवन जो अनंत है, समयातीत है और जिसे कोई दूषित नहीं कर सकता, जो कभी हमारे शरीर की तरह, जो श्मशान में ले जाया जाता है, जलाया जाता है और जिसकी अस्थियाँ सरिता में विसर्जित की जाती हैं, नष्ट नहीं होता है।

अब हम देखें कि मन क्यों जर्जर होता है। क्या इसपर आपने कभी चिंतन किया है? चूंकि आप अभी युवक हैं अतः यदि आपके माता-पिता, आपके समाज एवम् आपकी परिस्थितियों द्वारा आपका मन कुंठित नहीं कर दिया जाता तो अवश्य यह एकदम ताजा, उत्सुक और जिज्ञासु होता। आप जानना चाहते हैं कि सितारे क्यों हैं,

पक्षी मरते क्यों हैं, पत्तियाँ गिरती कैसे हैं, जेट विमान उड़ते क्यों हैं ?—आप कितनी ही वस्तुएँ ज्ञात करना चाहते हैं। लेकिन आपकी यह अनुसन्धान करने की, यह खोज करने की, जीवंत उत्कंठा शीघ्र ही कुंठित हो जाती है; ऐसा है कि नहीं ? और हमारी यह उत्कंठा कुंठित की जाती है भय के द्वारा, परंपरा के बोझ द्वारा और इस अद्भुत जीवन को समझने की हमारी असमर्थता द्वारा। क्या आपने कभी यह महसूस नहीं किया है कि कितनी शीघ्रता से आपकी उत्सुकता किसी तीक्ष्ण शब्द द्वारा, किसी उपेक्षित व्यवहार द्वारा, परीक्षा के भय द्वारा और माता-पिता की धमकी द्वारा नष्ट हो जाती है। इसका अर्थ हुआ, हमारी संवेदनक्षमता पहले से ही विदा हो चुकी है और हमारा मन मन्द हो चला है।

हमारी मन्दता का दूसरा कारण है "अनुकरण"। आपको परम्परा द्वारा अनुकरण सिखाया जाता है। भूतकाल का बोझ आपको मान्यता की ओर ढकेलता है और फिर आप परंपरा को लीक पकड़कर खड़े हो जाते हैं। इस मान्यता के माध्यम से आपका मन निश्चिन्तता और सुरक्षितता महसूस करता है। वह अपने आपको एक ऐसे सुन्दर घेरे में डाल देता है, जो अत्यन्त आरामदायी है, जहाँ भय और आशंका की एकदम अनुपस्थिति है ताकि वह बड़े आराम से उसमें चक्कर लगा सके। आप यदि अपने चारों ओर प्रौढ़ व्यक्तियों का निरीक्षण करें तो आप देखेंगे कि उनका मन क्षुब्ध नहीं होना चाहता, वे हर कीमत पर शांति चाहते हैं—भले ही यह शांति मौत की शांति ही क्यों न हो। लेकिन वास्तविक शांति तो एक अलग ही वस्तु है।

जब आपका मन अपने आपको किसी घेरे में अथवा किसी ढाँचे में निश्चित कर लेता है तब आपने महसूस किया होगा कि उसकी सदैव यही इच्छा बनी रहती है कि वह सुरक्षित रहे। इसीलिए वह किसी आदर्श, किसी उदाहरण अथवा किसी गुरु का अनुयायी बन जाता है। चूंकि यह निश्चित और सुरक्षित रहना चाहता है, अत: अनुकरण करता है। जब आप अपनी इतिहास की पुस्तकों में बड़े-बड़े नेताओं, सन्तों और बहादुरों के सम्बन्ध में पढ़ते हैं तब क्या आपकी स्वयम् की यह अभिलाषा नहीं होती है कि आप भी उनका अनुकरण करें ? मेरा यह कहना नहीं है कि विश्व में महान् व्यक्ति ही नहीं हुए हैं, लेकिन हममें महान् व्यक्तियों का अनुकरण करने व उनके जैसे बनने की सहज प्रवृत्ति है और यही अनुकरण हमारे मन के क्षय का प्रमुख कारण है; क्योंकि इससे हमारा मन एक विशिष्ट आकार ले लेता है।

एक बात और भी है। समाज उन व्यक्तियों को नहीं चाहता जो सजग हैं, तीक्ष्ण हैं, क्रांतिकारी हैं, क्यों कि ऐसे व्यक्ति सामाजिक ढाँचे में अपने को ढालना नहीं

चाहते अपितु उन्हें तोड़ना चाहते हैं। यही कारण है कि समाज आपके मनों को, इन ढाँचों में बाँधे रखना चाहता है। पर मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि आपकी यह तथा-कथित शिक्षा आपको अनुकरण करने, पीछे चलने और मान लेने के लिए क्यों उत्साहित करती है ?

अब हम देखें कि क्या यह मन अनुकरण करना बन्द कर सकता है ? दूसरे शब्दों में, क्या यह मन आदतें बनाना बन्द कर सकता है ? यदि मन ने पहले से ही आदतें बना रक्खी हैं तो क्या उनसे वह मुक्त हो सकता है ?

यह मन स्वयं आदतों का परिणाम है; क्या नहीं है ? यह परंपरा का फल है, समय का फल है—वह समय जिसमें पुनरावृत्ति है, भूतकाल का सातत्य है। क्या यह मन, यानी आपका मन, इस तरह के सोचने को कि 'अमुक हो चुका है', 'आगे अमुक होगा' जो वास्तव में 'हो चुका' का ही प्रक्षेपण है, रोक सकता है ? क्या आपका मन गत आदतों से और नई आदतों के निर्माण करने से मुक्त हो सकता है ? यदि आप इस समस्या में अत्यन्त गहरे उतरेंगे तो आपको महसूस होगा कि यह संभव है। और इस प्रकार जब आपका मन स्वयम् को पुनः नवीन कर लेता है, जब वह नए ढाँचे और नई आदतें बनाना बन्द कर देता है, जब वह पुनः अनुकरण के घेरे में फँसना बन्द कर देता है, तब आपका मन एकदम ताजा, युवा और मासूम हो जाता है। अतः वह असीम बोधक्षमता के योग्य बन जाता है।

इस प्रकार के मन के लिए मृत्यु ही नहीं रह जाती है क्यों कि तब संग्रह करने की प्रक्रिया ही विसर्जित हो जाती है। वह संग्रह की प्रक्रिया ही है, जो आदतों और अनुकरण का निर्माण करती है और संग्रह करनेवाला मन ही क्षय और मृत्यु को प्राप्त होता है। लेकिन वह मन, जो संग्रह नहीं कर रहा होता है, जो बटोर रहा नहीं होता है, जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण विसर्जित हो रहा होता है, मृत्यु को जीत लेता है। यह अवस्था अनंत अवकाश की अवस्था है।

अतः मन को अपने द्वारा संग्रहीत की हुई समस्त वस्तुओं के प्रति विसर्जित होना होगा—समस्त आदर्शों के प्रति, अनुकरण से साधे हुए समस्त गुणों के प्रति और उन समस्त वस्तुओं के प्रति जिनपर वह अपनी सुरक्षा के लिए आश्रित है। तब हमारा मन स्वनिर्मित विचारों के जाल में न फँसेगा। मन जब बीतनेवाले क्षण-क्षण के प्रति विसर्जित होता जाता है तब वह ताजा बन जाता है। ऐसा मन कभी जर्जर न होगा, अंधकारपूर्ण मार्गों पर नहीं भटकेगा।

प्रश्नकर्ता : आप जो कुछ कह रहे हैं उसे हम किस प्रकार आचरण में लावें ?

कृष्णमूर्ति : जब आप कोई बात सुनते हैं और सोचते हैं कि वह सही है तब आप अपने दैनंदिन जीवन में उसका आचरण करना चाहते हैं। इसका अर्थ हुआ कि आपके सोचने और आपके करने में फासला है। आप सोच रहे हैं एक बात, और कर रहे हैं दूसरी बात। चूँकि आप जो सोच रहे हैं उसे आचरण में लाना चाहते हैं, अतः आपके कार्य और चिंतन में फासला है और तब आप प्रश्न करते हैं, "हम यह फासला कैसे समाप्त करें ? कैसे हम अपने विचारों को कृति से जोड़ें ?"

जब सचमुच आप कोई कार्य आवश्यक रूप से करना चाहते हैं तब आप यह कर लेते हैं, क्या नहीं कर लेते हैं ? जब आप क्रिकेट खेलना अथवा अन्य कोई कार्य जिसमें आप सही माने में दिलचस्पी रखते हैं, उसे करना चाहते हैं, तब आप उसे करने के मार्गों और साधनों की खोज कर लेते हैं। तब आप यह कभी नहीं पूछते कि, "मैं यह कार्य कैसे करूँ ?" आप उसे कर लेते हैं, क्योंकि आप उसमें उत्सुक हैं, क्योंकि आपकी समग्रता, आपका मन, आपका हृदय उसमें है।

लेकिन आप अन्य बातों में बड़े चतुर हैं, अर्थात आप सोच रहे हैं एक बात, और कर रहे हैं दूसरी बात। आप कह रहे हैं, "बौद्धिक दृष्टि से तो ये विचार बहुत ही सुन्दर हैं, मैं इन्हें मान्य करता हूँ; लेकिन मैं यह नहीं जानता कि इनके सम्बन्ध में क्या करूँ? अतः कृपया आप ही बतावें कि मैं इनका कैसे आचरण करूँ ?"—इसका अर्थ ही यह है कि आप करना ही नहीं चाहते। आप सचमुच कार्य स्थगित रखना चाहते हैं, क्योंकि आप ईर्ष्यालु या और कुछ बने रहना चाहते हैं। आप यह कहकर—"जब प्रत्येक व्यक्ति ही ईर्ष्यालु है तब मैं क्यों न होऊँ"—पुनः उसी मार्ग पर चलना आरम्भ कर देते हैं। इसके विपरीत, यदि आप सचमुच ईर्ष्यालु नहीं रहना चाहते हैं, यदि ईर्ष्या के सत्य को आप उसी तरह स्पष्ट रूप से महसूस करते हैं जैसे कि एक कोबरा सर्प को महसूस करते हैं तब आप ईर्ष्यालु ही नहीं रह जाते हैं; तब आप यह नहीं पूछते कि ईर्ष्या से किस प्रकार मुक्त होऊँ ?

अतः महत्व इस बात का है कि आप किसी वस्तु की सचाई को महसूस करें। यह नहीं पूछें कि, "मैं इसका कैसे आचरण करूँ" जिसका अर्थ ही यह है कि आप सचाई महसूस नहीं कर रहे हैं। जब आप सड़क पर कोबरा सर्प के नज़दीक जाने का खतरा भली भाँति समझते हैं तब आप उससे दूर रहते हैं। लेकिन आपने तो कभी ईर्ष्याके समस्त परिणामों का परीक्षण ही नहीं किया है। किसी व्यक्ति ने कभी इसके

सम्बन्ध में आप से चर्चा नहीं की है, कोई आपके साथ अब तक इसकी गहराई में नहीं उतरा है। आपको तो केवल यह कहा गया है, 'आप ईर्ष्यालु बिलकुल न हों' लेकिन आपने स्वयम् कभी ईर्ष्या के स्वभाव का निरीक्षण ही नहीं किया है। आपने यह कभी महसूस ही नहीं किया है कि किस प्रकार यह समाज और ये समस्त संगठित धर्म, इसी ईर्ष्या पर, इस 'कुछ' बनने की इच्छा पर, ही आधारित हैं। ज्यों ही आप ईर्षा में गहरे उतरते हैं और उसकी सचाई महसूस करते हैं, त्योंही ईर्ष्या विसर्जित हो जाती है।

यह पूछना कि, "मैं यह कैसे करूँ" मूर्खतापूर्ण है। क्यों कि यदि आप सचमुच किसी कार्य में दिलचस्पी रखते हैं और उसे करना न भी जानते हों तो भी आप शीघ्र उस कार्य को समझना और उसके सम्बन्ध में खोज करना प्रारम्भ कर देते हैं। लेकिन यदि आप चुप बैठ जाते हैं और कहते हैं, "कृपया मुझे इस लोभ से मुक्त होने का कोई व्यवहारिक मार्ग बताएं" तो आप लोभी बने ही रहेंगे। इसके विपरीत यदि आप जागृत मन से, पक्षपात-रहित होकर इस लोभ की गहराई में उतरते हैं, इसमें आप अपनी समग्रता लगा लेते हैं, तब आप अपने लिए लोभ की सचाई खोज लेंगे। मुक्त होने के रास्तों की तलाश के बारे में सोचते रहने से नहीं अपितु वह सचाई स्वयं आप को मुक्त करती है।

प्रश्नकर्ता : हमारी इच्छाएँ कभी पूरी क्यों नहीं होती हैं ? जब-जब हम इच्छित कार्य पूरा करना चाहते हैं तब-तब उसे रोकने के लिए बाधाएँ क्यों उपस्थित हो जाती हैं ?

कृष्णमूर्ति : यदि किसी कार्य को करने की आपकी पूरी इच्छा होती है और बिना फल की इच्छा किए, बिना इच्छापूर्ति की अभिलाषा किये और बिना किसी प्रकार के भय के यदि आप अपनी सम्पूर्णता उस कार्य में लगा देते हैं तब वहाँ रुकावट नहीं आ सकती। यह रुकावट, यह विसंगति तभी पैदा होती है जब आपकी इच्छा अधूरी है, खंडित है; जब आप किसी कार्य को करना चाह रहे हैं और साथ ही साथ उसे करने में भयभीत भी हो रहे हैं अथवा आपका आधा मन कोई दूसरा ही कार्य करना चाह रहा है। एक बात और भी है जिससे आप अपनी इच्छाएँ पूरी नहीं कर सकते हैं। क्या आप उसे जानते हैं ? मैं इसे स्पष्ट करता हूँ।

समाज, जो मानव मानव के बीच के सामूहिक सम्बन्धों का दूसरा नाम है, यह नहीं चाहता कि आप कोई अखंड इच्छा करें; क्यों कि यदि आपने ऐसा किया तो आप

समाज के लिए मुसीबत बन जाएँगे, खतरा बन जाएँगे। आपको छूट दी जाती है कि आप महत्त्वाकांक्षा और ईर्ष्या सदृश्य सम्माननीय इच्छाएँ रक्खें क्यों कि ये सब अच्छी समझी जाती हैं और चूँकि समाज इन ईर्ष्यालु और महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों द्वारा निर्मित हुआ है जो श्रद्धा करते हैं, अनुकरण करते हैं, अतः समाज ने ईर्ष्या, महत्त्वाकांक्षा और अनुकरण को मान्यता दे दी है, यद्यपि ये सब भय के प्रतीक हैं। जब तक आप समाज के ढाँचे के अनुकूल हैं, तब तक आप एक प्रतिष्ठित नागरिक समझे जाते हैं। लेकिन जिस क्षण आप अखण्ड इच्छा करते हैं, जो समाज के ढाँचे के प्रतिकूल होती है, त्यों ही आप समाज के लिए खतरा बन जाते हैं। अतः समाज हमेशा इस बात की खबरदारी रखता है कि कहीं आप अखंड इच्छा न कर लें, क्योंकि यह अखंड इच्छा आपकी समग्रता को प्रकाश में लाएगी और इसलिए यह एक क्रांतिकारक कार्य होगा।

'होने' '(Being) की क्रिया 'बनने' (Becoming) की क्रिया से एकदम भिन्न है। 'होने' की क्रिया इतनी क्रान्तिकारक है कि समाज उसे अमान्य कर देता है और वह अपना संबन्ध केवल 'बनने' की क्रिया से रखता है क्योंकि वह सम्मानजनक है और इसके ढाँचे के अनुकूल है; कोई भी इच्छा, जो अपने आपको 'बनने' (Becoming) की क्रिया के रूप में प्रकट करती है, हमेशा अपूर्ण रहती है; क्योंकि यह महत्त्वाकांक्षा का ही दूसरा रूप है। ऐसी इच्छा जरूर कभी न कभी खंडित होगी, रोक दी जाएगी, पराजित होगी और फिर हम अनेकों उपद्रवी मार्गों से इस पराजय के खिलाफ क्रान्ति करते हैं।

यह चिंतन के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण विषय है क्योंकि जब आप बड़े होंगे तब आपको ज्ञात होगा कि आपकी इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होती। इच्छापूर्ति में सदैव पराजय की छाया रहती है और आपके हृदय में हमेशा एक टीस बनी रहती है, संगीत नहीं। इस 'कुछ बनने' की इच्छा का—एक महान् सन्त अथवा और किसी अन्य रूप में महान् बनने की इच्छा का—कोई अन्त नहीं है और इसीलिए उनकी पूर्ति भी सम्भव नहीं है। इसकी मांग सदैव 'और अधिक' के लिए रहती है और विश्व में सतत यातना, पीड़ा और युद्धों को जन्म देती है। लेकिन जब कोई इस 'बनने' की सभी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है तब वहाँ 'होने' की अवस्था ही होती है जिसकी कृति एकदम भिन्न प्रकार की होती है। यह 'होने' की अवस्था है जो समयातीत है। तब 'तृप्त होने' का विचार ही विसर्जित हो जाता है, तब 'होने' की अवस्था स्वयम् में तृप्ति लिए होती है।

प्रश्नकर्ता : मैं जानता हूँ कि मैं मूर्ख हूँ, परन्तु दूसरे मुझे बुद्धिमान कहते हैं। अब मुझपर किसका प्रभाव ज्यादा पड़ेगा—मेरे जानने का या दूसरों के कहने का।

कृष्णमूर्ति : आप प्रश्न बड़ी सावधानी से, बड़ी शांति से सुने, उत्तर की खोज के लिए प्रयत्न न करें। यदि आप मुझे कहते हैं कि मैं बुद्धिमान व्यक्ति हूँ जब कि मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि मैं मूर्ख हूँ, ऐसी अवस्था में क्या आपका कथन मुझे प्रभावित करेगा ? हाँ, जब मैं स्वयम् बुद्धिमान बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ तब अवश्य आपका कथन मुझे प्रभावित करेगा। क्या नहीं करेगा ? तब आपके कथन से मेरी स्तुति होगी; मैं प्रभावित हूँगा। लेकिन यदि मैं यह महसूस करूँ कि बुद्धिमान बनने के प्रयत्नों से व्यक्ति की मूर्खता कभी भी समाप्त नहीं हो सकती तब आप जानते हैं क्या घटित होगा ?

यदि मैं मूर्ख हूँ और बुद्धिमान बनने का प्रयत्न करूँ तब भी मैं निश्चित रूप से मूर्ख ही बना रहूँगा, क्योंकि 'बनने के लिए' प्रयत्न करना एक प्रकार की 'मूर्खता' ही तो है। एक मूर्ख व्यक्ति भले ही चतुराई के आभूषणों से स्वयं को सजा ले, भले ही वह कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ले या नौकरी प्राप्त कर ले लेकिन फिर भी उसकी मूर्खता बनी ही रहेगी। (कृपया आप इसे समझें। यह मैं द्वेष अथवा निंदा वश नहीं कह रहा हूँ)। लेकिन जिस क्षण व्यक्ति अपनी मंदता, अपनी मूर्खता के प्रति सजग हो जाता है और वह बुद्धिमान बनने के लिए प्रयत्न करने के बजाय अपनी मूर्खता को समझना, उसका परीक्षण करना प्रारम्भ कर देता है, उसी क्षण बुद्धिमता का उद्घाटन होता है।

लोभ को लीजिए। क्या आप जानते हैं कि लोभ क्या है ? इसका अर्थ है—आवश्यकता से अधिक भोजन करना, खेलों में दूसरों से ज्यादा चमकना, ज्यादा संपत्ति की इच्छा करना, दूसरे की अपेक्षा बड़ी मोटर चाहना। फिर आप स्वयं से कहते हैं कि आप बतई लोभ न करें। अतः आप उदार बनने के लिए प्रयत्न करते हैं जो सचमुच मुर्खतापूर्ण है। क्योंकि उदार बनने के प्रयत्नों से लोभ कभी भी समाप्त नहीं हो सकता। लेकिन यदि आप इस लोभ को और इसकी समस्त झंझटों को समझ लें, यदि आप अपना पूरा मन और अपना पूरा हृदय इसके सत्य की खोज में लगा दें, तब आप लोभ और उसके प्रतिद्वंद्वी से मुक्त हो जाएँगे। तब आप सचमुच बुद्धिमान मानव होंगे, क्योंकि तब आप 'जो है' उसे समझ रहे हैं, 'जो होना चाहिए' उसे नहीं।

अतः यदि आप मूर्ख हैं तो बुद्धिमान या चतुर बनने का अभ्यास न करें बल्कि आप अपनी इस मूर्खता के कारणों को समझें। अनुकरण, भय, किसी की देखादेखी,

किसी उदाहरण या किसी आदर्श का अनुगमन, ये सब मन को मूर्ख बनाते हैं। जब आप अनुकरण करना बन्द कर देते हैं, जब आप अभय हैं, जब आप अपने लिए सुस्पष्ट सोचने में समर्थ हैं तब क्या आप बुद्धिमान मानव नहीं हैं ? लेकिन यदि आप मूर्ख हैं किन्तु चतुर बनने के लिए प्रयत्नशील हैं, तब आपकी गिनती भी उन व्यक्तियों में होगी जो चतुर होते हुए भी बहुत मूर्ख हैं।

प्रश्नकर्ता : हम शरारती क्यों हैं ?

कृष्णमूर्ति : जिस समय आप सचमुच शरारती होते हैं तभी यदि आप यह प्रश्न अपने आपसे पूछें तो यह बड़ा महत्त्वपूर्ण होगा। उदाहरण के लिए, जब आप क्रुद्ध होते हैं तब आप अपने आपसे यह कभी नहीं पूछते कि आप क्रुद्ध क्यों हैं ? क्या पूछते हैं ? आप यह प्रश्न सदैव बाद में पूछते हैं। क्रुद्ध होने के बाद आप कहते हैं, "मैं कितना मूर्ख हूँ, मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए था ?" इसके विपरीत यदि आप क्रोध की अवस्था में सजग हैं; विचारशील हैं, इसे बुरा नहीं कह रहे हैं, यदि आप अपनी समग्रता के साथ इस क्रोध के समक्ष हैं और अपने मन में आते हुए इस विप्लव को देख रहे हैं तो आपको ज्ञात होगा कि यह क्रोध कितनी शीघ्रता से लुप्त हो रहा है।

किसी एक उम्र तक बच्चे शरारती होते ही हैं और उन्हें होना भी चाहिए क्योंकि वे उस समय उत्तेजना, जीवन और उत्साह से परिपूर्ण होते हैं और यह जोश किसी न किसी रूप में प्रकट होकर ही रहता है। लेकिन आप देखते हैं कि वास्तव में यह प्रश्न बड़ा पेचीदा है; क्योंकि गलत खानपान, निद्रा का अभाव, असुरक्षितता की भावना भी शरारत के कारण हो सकते हैं। यदि ये समस्त कारण भली भाँति नहीं समझ लिए जाते हैं, तब शरारत बच्चे के लिए समाज के घेरे के अन्दर की क्रांति का रूप ले लेगी जहाँ उसे कभी छुटकारा नहीं मिल सकेगा।

क्या आप जानते हैं कि अपराधी बच्चे कौन होते हैं ? ये वे बच्चे होते हैं जो सभी प्रकार के भयंकर कार्य करते हैं, वे समाज के कारागृह में क्रांति करते हैं, क्योंकि उन्हें कभी जीवन की समस्याओं को समझने में सहायता नहीं दी गई है। वे अत्यन्त जीवन्त होते हैं, उनमें से कुछ अद्भुत बुद्धिमत्ता लिए होते हैं। उनकी क्रांति मानो यह कह रही होती है कि "हमें समझने में सहायता दें कि हम किस प्रकार इस दमन और इन भयंकर मान्यताओं को छिन्न-भिन्न करें ?" इसलिए यह प्रश्न विशेषकर शिक्षकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है ताकि बच्चों की अपेक्षा वह अपने आपको यह सब अधिक समझने के लिए शिक्षित कर सकें।

प्रश्नकर्ता : मेरी चाय पीने की आदत पड़ गई है। मेरे एक शिक्षक इसे बुरी आदत कहते हैं परन्तु दूसरे शिक्षक का कहना है कि इसमें कोई हर्ज नहीं है। मैं किसे ठीक मानूं ?

कृष्णमूर्ति : आप स्वयं इसके सम्बन्ध में क्या सोचते हैं ? आप कुछ क्षणों के लिए दूसरों की मान्यताओं को एक ओर रख दें और फिर प्रश्न को समझें क्योंकि दूसरों की मान्यताएँ पक्षपातपूर्ण हो सकती हैं। आप उस युवक के सम्बन्ध में क्या सोचते हैं जो पहले से ही किसी आदत का दास बन चुका है– वह आदत चाय पीने की हो, सिगरेट पीने की हो, खाने में स्पर्धा करने की हो या अन्य कुछ हो। हाँ, यदि आप सत्तर या अस्सी वर्ष के हो गए, तब यह ठीक भी कहा जाता है कि आप किसी आदत के दास बने हैं क्योंकि उस समय आपका एक पैर पहले से ही कब्र में पहुँच गया होता है। लेकिन आप अभी-अभी अपना जीवन प्रारम्भ कर रहे हैं और अभी से ही यदि आप किसी आदत के दास बन जाते हैं तो यह एक भयंकर वस्तु होगी; क्या नहीं होगी ? अतः आपके लिए इस प्रश्न को समझ लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है न कि आप चाय पिएँ अथवा नहीं।

आप देखते हैं कि जब आपको किसी वस्तु की आदत पड़ जाती है तब आपका मन मृत्यु के मार्ग की ओर बढ़ने लग जाता है। यदि आप एक हिंदू या एक साम्यवाद या एक कैथॉलिक या प्रोटेस्टन्ट की तरह सोचने लगते हैं तब इसका अर्थ ही यह होगा कि आपके मन का क्षय हो रहा है। लेकिन यदि आपका मन सावधान है, वह यह खोज रहा है कि आप क्यों किसी निश्चित तरीके से ही सोचते हैं, तब आप यह भी समझ सकेंगे कि चाय या सिगरेट का सेवन आप करें या न करें।



१७. जीवन-प्रवाह

मैं नहीं जानता कि कभी आपने भ्रमण करते समय किसी सरिता के निकट कोई एक लम्बा सँकरा तालाब देखा हो। किन्हीं मछवाहों द्वारा खोदा गया यह छोटा सा तालाब सरिता से पृथक् है। गहरी और विस्तीर्ण सरिता पास ही में दृढ़ता से बही जा रही है परन्तु यह तालाब गन्दगी से भरा हुआ है, क्योंकि यह जीवन-सरिता से जुड़ा नहीं है और इसमें मछलियाँ भी नहीं हैं। यह स्थिर है; परन्तु गहन सरिता—जीवन्त और प्राणमयी सरिता–तीव्रता से अविराम बही जा रही है।

अब क्या आप यह नहीं सोचते कि मानवों का जीवन भी इसी तालाब के समान हो गया है? वे भी जीवन के तेज़ प्रवाह से पृथक् अपने लिए एक छोटा-सा तालाब खोद लेते हैं, उसी में वे स्थिर हो जाते हैं और उसमें मर जाते हैं। और उसी स्थिरता को, इसी क्षय को, हम जीवन माने बैठे हैं। दूसरे शब्दों में, हम स्थिरता चाहते हैं, हम ऐसी अभिलाषाएँ करते हैं, जिनका कभी अन्त न हो, हम ऐसा आनन्द चाहते हैं जो कभी नष्ट न हो। हम एक छोटा-सा सरोवर खोद लेतें हैं और उसी में अपने आपको, अपने परिवारों, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, अपनी संस्कृतियों, अपने भय, अपने देवताओं और अपनी विविध पूजाओं के साथ आबद्ध कर लेते हैं और उसी में हम मर जाते हैं जब कि हमारे निकट ही जीवन तेजी से प्रवाहित होता चला जा रहा है – जीवन, जो अस्थिर है, जो सतत परिवर्तनशील है, जो द्रुतगामी है, जो अनन्त सौन्दर्य लिए हुए है।

क्या आपने कभी यह महसूस नहीं किया है कि जब आप सरिता के तट पर बैठे हैं तो आपको एक संगीत सुनाई देता है—किनारे से लहरों के टकराने में, प्रवाह की कलकल ध्वनि में? प्रतिक्षण आपको उसमें एक अद्भुत गति दिखाई देगी जो अविरत अधिक व्यापकता और अधिक गहनता की ओर बढ़ी जा रही है। लेकिन उस छोटे-से तालाब में गति ही नहीं है। इसका पानी सड़ा हुआ है और यदि आप निरीक्षण करें तो आपको ज्ञात होगा कि हममें से अधिकांश व्यक्ति ऐसा ही क्षुद्र, स्थिर तालाब चाहते हैं जो जीवन के प्रवाह से पृथक् है। हम इस तालाब की भाँति स्थिर जीवन को सत्य मान लेते हैं और इसी बात की पुष्टि के लिए हमने तत्त्वज्ञान का आविष्कार किया और इसी के पोषण के लिए हमने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। आप देखते हैं कि हम व्याकुल नहीं होना चाहते हैं, हम तो स्थायित्व चाहते हैं।

क्या आप जानते हैं कि स्थिरता चाहने का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है आनन्ददायी वस्तु को अनिश्चित कालतक बनाए रखने एवम् दुखदायी वस्तु को शीघ्राति-शीघ्र समाप्त करने की इच्छा करना । हम चाहते हैं कि समाज हमारा नाम जाने और हमारा यह नाम, परिवार और सम्पत्ति के माध्यम से चलता रहे । हम, हमारे सम्बन्धों में, हमारे कार्यों में, एक प्रकार की स्थिरता चाहते हैं जिसका अर्थ है कि हम एक स्थिर तालाब में स्थायी और सतत जीवन की कामना करते हैं । हम इसमें सचमुच कोई परिवर्तन नहीं चाहते हैं । इसीलिए हमने ऐसे समाज का निर्माण किया है जो हमें हमारी सम्पत्ति, हमारे नाम और कीर्ति की स्थिरता का विश्वास दिलाता है और उनका ज़िम्मा लेता है ।

लेकिन आप देखते हैं कि जीवन इस प्रकार का कतई कुछ नहीं है । जीवन अस्थिर है । वृक्ष से झड़ जानेवाली पत्तियों को भाँति जीवन स्थायी नहीं है । यहाँ कुछ भी तो स्थायी नहीं है । जीवन में सदैव परिवर्तन है, मृत्यु है । क्या आपने कभी किसी वृक्ष को आसमान के सामने नग्न खड़े देखा है, और देखा है उसके अनन्त सौंदर्य को, इसकी समस्त शाखाएँ इसका आकार बना रही होती हैं और इस नग्नता में एक काव्य है, एक संगीत है । प्रत्येक पत्ती झड़ चुकी है और यह वसन्त की प्रतीक्षा में है । जब वसन्त का आगमन होगा तब यह पुनः असंख्य पत्तियों के संगीत से भर जाएगा और यही पत्तियाँ पुनः पतझड़ में झड़ जाएँगी, उड़ जाएँगी ! ऐसा ही है हमारा जीवन !

परन्तु हम हैं कि जीवन में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं चाहते हैं । हम तो अपने बच्चों, अपनी परम्परा, अपने समाज, अपने नाम, अपने थोड़े-से गुणों से चिपके रहते हैं क्यों कि हम स्थिरता चाहते हैं और यही कारण है कि हम मृत्यु से भयभीत हैं । हम इस बात से भयभीत हैं कि कहीं हम हमारी ज्ञात वस्तुओं को न खो बैठें । परन्तु जीवन ऐसा नहीं है जैसा कि हम चाहते हैं । जीवन बिलकुल ही स्थिर नहीं है । पक्षी मरते हैं, बर्फ पिघल जाता है, वृक्ष काटे जाते हैं अथवा आँधियों से नष्ट हो जाते हैं । प्रत्येक वस्तु अस्थिर है, लेकिन हम केवल वही वस्तु चाहते हैं जो हमारी स्थिरता को पोषित करती है, हम हमारी प्रतिष्ठा चाहते हैं, हम दूसरों पर अधिकार चाहते हैं । इस प्रकार हम वास्तविक जीवन को अस्वीकार करते हैं ।

वास्तविकता तो यह है कि जीवन सरिता के समान है जो अविराम गतिशील है, जो सतत प्रयत्नशील है, खोज रही है, बढ़ रही है, तटों पर उफन रही है और अपनी प्रत्येक धारा को गहराई से भेदती चली जा रही है । परन्तु हम देखते हैं कि

हमारा मन ऐसा कभी नहीं चाहता है। चूंकि मन देखता है कि अस्थिर और असुरक्षित अवस्था में रहना खतरनाक और भयपूर्ण है, अतः वह अपने चारों ओर एक दीवार खड़ी करता है—परम्परा व संगठित धर्म की दीवार, राजनैतिक और सामाजिक सिद्धांतों की दीवार। हमारा परिवार, हमारा नाम, हमारी सम्पत्ति और हमारे द्वारा साधे गए कुछ गुण—ये सभी इसी दीवार के अन्दर सीमित होते हैं। ये जीवन के प्रवाह से पृथक हैं। जीवन तो सतत गतिमान है, अस्थिर है। यह अविरत रूप से इन दीवारों को—जिनके पीछे भ्रांति है, दुख है—रौंदता चला जा रहा है, छिन्न विच्छिन्न करता चला जा रहा है। इन दीवारों के अन्दर के सारे भगवान झूठे भगवान हैं, और इनके सारे शास्त्र और सारे दर्शन व्यर्थ हैं क्यों कि जीवन इन सबके परे है।

जीवन उस मन के लिए अद्‌भुत वस्तु है जो इन दीवारों से परे है, जो अपने अधिकार-संग्रह और ज्ञान के बोझ से भारी नहीं है, जो समय से अतीत और असुरक्षित रहता है। ऐसा ही मन स्वयं 'जीवन' है क्यों कि जीवन कहीं रुकता नहीं है, लेकिन हममें से अधिकांश व्यक्ति रुकने के लिए पड़ाव चाहते हैं, आसरा चाहते हैं। हम एक छोटा-सा मकान चाहते हैं, नाम चाहते हैं, प्रतिष्ठा चाहते हैं और कहते हैं कि ये वस्तुएँ अत्यन्त आवश्यक हैं। हम स्थिरता की माँग करते हैं और इसी माँग के आधार पर हम संस्कृति की रचना करते हैं और ऐसे ईश्वरों का आविष्कार करते हैं जो कतई ईश्वर नहीं हैं। ये ईश्वर हमारी ही इच्छाओं के प्रक्षेपण हैं।

वह मन, जो स्थिरता की खोज कर रहा है, शीघ्र ही सरिता के पास के तालाब के समान ही स्थिर हो जाता है और जल्दी ही गन्दगी से भर जाता है और नष्ट होने लगता है। केवल वही मन, जो घेरों से रहित है, जो रुकावटों, बन्धनों और आश्रयों से परे है, जो समग्र रूप से जीवन-प्रवाह के साथ गतिमान है, जो अविराम बढ़ रहा है, खोज रहा है, तटों पर उफन रहा है, वही आनन्द को उपलब्ध हो सकता है, चिरंतन युवा रह सकता है क्यों कि वह सृजनशील होता है।

क्या आप समझ रहे हैं कि मैं क्या चर्चा कर रहा हूँ? यह आप अवश्य समझें क्यों कि यह वास्तविक शिक्षा का एक आवश्यक अंग है और जब आप यह समझ लेंगे तब आपका सम्पूर्ण जीवन ही आमूल परिवर्तित हो जाएगा। तब आपके सम्बन्धों का—विश्व के साथ, पड़ोसी के साथ, पति या पत्नी के साथ—एक बिलकुल ही भिन्न अर्थ होगा। तब आप यह समझकर कि इच्छापूर्ति की अभिलाषा करना केवल दुख और पीड़ा को आमंत्रित करने जैसा है, अपने आपको किसी वस्तु से भरने का प्रयत्न ही नहीं करेंगे। इसीलिए आप इन समस्त पहलुओं पर अपने शिक्षक एवम् अपने साथियों के

साथ चर्चा करें। यदि आप इसे समझ लेंगे तो आप जीवन के अद्‌भुत सत्य को समझना प्रारम्भ कर देंगे और उसी समझने में एक महान सौन्दर्य है, अनन्त प्रेम है और उसी से करुणा का प्रस्फुटन होता है। लेकिन सरोवर की सुरक्षा और स्थिरता की खोज करने के प्रयत्न करनेवाला मन हमें अन्धकार और सड़ान की ओर ले जाता है। एक बार जो मन किसी घेरे में स्थिर हो जाता है तब वह हमेशा खोज, अनुसन्धान और साहसपूर्ण कार्य करने से डरता है लेकिन सत्य, परमात्मा, वास्तविकता या इसे आप अन्य कुछ कह लें, इस तालाब से परे है।

क्या आप जानते हैं कि धर्म क्या है ? धर्म किसी भजन में नहीं है। यह किसी पूजा, किसी विधि या रांगे अथवा पत्थर की किसी मूर्ति की अर्चना में नहीं है। यह किसी मन्दिर या किसी गिरजाघर में नहीं है। यह बाइबिल या गीता के स्वाध्याय करने में नहीं है। यह किन्हीं पवित्र नामों के उच्चारण करने में अथवा मानव द्वारा आविष्कृत किसी अंधविश्वास के अनुसरण करने में नहीं है। इनमें से धर्म एक भी नहीं है।

धर्म है करुणा की अनुभूति, अच्छाई (goodness) की अनुभूति; उस प्रेम की अनुभूति जो सरिता सदृश निरंतर जीवंत और गतिमान है। उस अवस्था में ऐसे क्षणों का आगमन होगा जहाँ खोज ही विसर्जित हो चुकी होगी और खोज का विसर्जन ही प्रारम्भ है एक बिलकुल ही भिन्न वस्तु का। वास्तविक धर्म क्या है ? वास्तविक धर्म है—परमात्मा की, सत्य की, खोज करना, पूर्णतया करुणा की अनुभूति होना— साधी गई करुणा या नम्रता नहीं, दिमागी आविष्कारों और चालबाजियों से पार जाकर खोज करना, जिसका अर्थ है उस वस्तु को पूर्णतया महसूस करना, उसमें जीना, वही होना। लेकिन आप यह तभी कर सकेंगे जब अपने ही द्वारा खोदे गये तालाब को त्यागकर जीवन की विराट् सरिता में प्रवेश करेंगे। तब जीवन अद्‌भुत मार्गों द्वारा आपकी रक्षा करेगा क्योंकि तब आप स्वतः अपनी रक्षा करना छोड़ देंगे। तब जीवन आपको जहाँ चाहेगा वहीं ले जाएगा; क्योंकि तब आप उसका ही एक अंश बन चुके होंगे। तब सुरक्षा की कोई समस्या ही नहीं रह पायेगी, तब आप यह नहीं सोचेंगे कि लोग क्या कहते हैं या क्या नहीं कहते हैं; और यही जीवन का सौन्दर्य है।

प्रश्नकर्ता : हम मृत्यु से क्यों भयभीत हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आपका खयाल है कि ज़मीन पर गिरनेवाली पत्ती मृत्यु से भयभीत है ? क्या आप सोचते हैं कि पक्षी मृत्यु से डरता हुआ जीता है ? जब मृत्यु आती है, तब वह उसे स्वीकार कर लेता है; लेकिन वह मृत्यु से चिंतित नहीं है; वह तो जीवन से ओतप्रोत है—वह तो कीड़े पकड़ने, घोंसला बनाने, गीत गाने और आनंद

के लिए जी भरकर उड़ान भरने में व्यस्त है। क्या आपने कभी पक्षियों को ऊँचे आसमान में उड़ान भरते हुए देखा है और देखा है कि—किस प्रकार बिना पंखों को फड़फड़ाये वे हवा के साथ बहे जा रहे हैं। वे किस प्रकार असीम आनंद का उपभोग करते मालूम होते हैं। उनका मृत्यु से कोई रिश्ता नहीं है। यदि मृत्यु आ जाती है तो कोई बात नहीं, वे समाप्त हो जाते हैं। आगे क्या होगा इसका कोई विचार ही नहीं है। वे तो क्षण-क्षण जिए जा रहे हैं, क्या नहीं जी रहे हैं? केवल हम मानव ही ऐसे हैं जो हमेशा मृत्यु के सम्बन्ध में सोचा करते हैं, इसलिये कि हम जी ही नहीं रहे हैं। कठिनाई तो यही है कि हम जी ही नहीं रहे हैं, हम तो मरे जा रहे हैं। वृद्ध कब्र के निकट है और युवा भी उससे ज्यादा दूर नहीं।

चूंकि आप ज्ञात वस्तुओं, जिन्हें आपने संग्रह कर रक्खा है, उनके खो जाने से भयभीत हैं, अतः आपने मृत्यु के सम्बन्ध में पूर्व धारणाएँ बना रक्खी हैं। हम इसलिए भयभीत रहते हैं कि कहीं हम अपनी पत्नी या अपने पति को न खो बैठें! कहीं बच्चे या मित्र को न खो बैठें! इस प्रकार हमने जो सीखा है, जो बटोरा है, उसके खो जाने से हम भयभीत रहते हैं। यदि हम अपने साथ इन समस्त वस्तुओं को ले जा सकने में समर्थ होते—हमारे मित्रों को, हमारी सम्पत्ति को, हमारे गुणों को, हमारे चरित्र को, तब हम मृत्यु से भयभीत नहीं होते; क्या होते? यही कारण है कि हमने मृत्यु और उसके बाद के जीवन के सम्बन्ध में सिद्धांतों का आविष्कार कर लिया है। लेकिन हकीकत तो यह है कि मृत्यु ही समाप्ति है और हममें से अधिकांश व्यक्ति इस सत्य का सामना करने के लिये अनिच्छुक हैं। हम ज्ञात को पकड़े रखना चाहते हैं, अतः ज्ञात के प्रति हमारी यह आसक्ति ही हममें भय का निर्माण करती है, न कि अज्ञात। अज्ञात ज्ञात के द्वारा नहीं जाना जा सकता। लेकिन हमारा मन जो ज्ञात से बना है, कहता है—"मैं नष्ट हो रहा हूँ", इसीलिए यह भयभीत है।

अब यदि आप क्षण-क्षण जीवित रहें और भविष्य के सम्बन्ध में कतई न सोचें, यदि आप कल की बिलकुल चिंता नहीं करते हुये जिएँ—जिसका अर्थ यह नहीं कि आप केवल आज के छिछलेपन से ही भर जाएँ अपितु आप इस ज्ञात की सम्पूर्ण प्रक्रिया के प्रति सजग हो सकें, उससे मुक्त हो सकें, इसे पूर्णतया विसर्जित हो जाने दें—तब आपको ज्ञात होगा कि एक आश्चर्यजनक वस्तु का उद्घाटन हो रहा है। आप एक दिन के लिए यह करके देखें—आप प्रत्येक ज्ञात वस्तु को अलग रख दें, उसे भूल जाएँ और फिर देखें कि क्या घटित होता है। आप अपनी चिंताओं को दिन प्रतिदिन, घंटा-प्रति-घंटा, क्षण-प्रति-क्षण न ढोते चले जाएँ; उन्हें आप समाप्त हो जाने दें और तब

आप देखेंगे कि इस मुक्ति से एक अद्भुत आनंद का आगमन हो रहा है; जिसमें जीवन भी है और मृत्यु भी। मृत्यु केवल किसी वस्तु की समाप्ति है और उस समाप्ति में ही नवीनता है।

प्रश्नकर्ता : यह कहा गया है कि हममें से प्रत्येक में अनन्त और असीम सत्य है; लेकिन चूंकि हमारा जीवन क्षणिक है तो फिर हम में सत्य कैसे रह सकता है ?

कृष्णमूर्ति : आप देखते हैं कि हमने सत्य को भी एक स्थायी वस्तु बना दिया है, क्या सत्य भी स्थायी हो सकता है ? यदि हाँ, तो यह भी समय में सीमित हो जाएगा। जब हम किसी वस्तु को स्थायी कहते हैं तो इसका अर्थ होगा कि यह सतत है, और जो सतत है वह सत्य नहीं है। सत्य का सौंदर्य तो इसी में है कि उसका क्षण प्रति क्षण आविष्कार किया जाए, उसका स्मरण नहीं। स्मरण में रखा गया सत्य मृत वस्तु है। सत्य को क्षण-क्षण आविष्कृत करना होगा क्योंकि यह जीवन्त है, यह चिर नवीन है। सत्य तो सर्वदा वही है फिर भी आपको प्रत्येक समय इसका अनुसन्धान करना होगा।

महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम सत्य के सम्बन्ध में कोई सिद्धांत न बनाएँ। हम यह न कहें कि हममें सनातन सत्य है अथवा और कुछ है। यह तो उन बूढ़े व्यक्तियों का आविष्कार किया है जो मृत्यु और जीवन दोनों से भयभीत हैं। "सत्य अनन्त है, आप भयभीत न हों क्यों कि आपकी आत्मा सर्वदा अमर है" इस प्रकार के ये विचित्र सिद्धांत उन भयभीत व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत किए गए हैं, जिनके मन मृत और जिनके दर्शन फिजूल हैं। वास्तविकता तो यह है कि सत्य जीवन है और जीवन अस्थिर है; जीवन को क्षण-प्रति-क्षण दिन-प्रति-दिन आविष्कृत करना होगा; इसे मानना नहीं अपितु इसका अनुसन्धान करना होगा। यदि आप यह मान लेते हैं कि आप जीवन को जानते हैं तब आप जीवित नहीं रह जाते। आपका प्रतिदिन का भोजन, आपका कपड़ा व आश्रय, आपकी कामवासना, आपका कार्य, आपके मनोरंजन, आपकी सोचने की प्रक्रिया, ये समस्त उदासीनतापूर्ण की जानेवाली बार-बार की क्रियाएँ, जीवन नहीं हैं। जीवन तो कुछ ऐसी वस्तु है जिसका आविष्कार करना होता है और आप तब तक आविष्कार नहीं कर सकते हैं जब तक कि आप अपनी समस्त संग्रहीत वस्तुओं को अलग नहीं रख देते हैं, उन्हें विसर्जित नहीं कर देते हैं। मैं जो कुछ कर रहा हूँ उसका परीक्षण करें। आप अपने सिद्धांतों, धर्मों, रीति-रिवाजों, जातीय बन्धनों तथा अन्य समस्त वस्तुओं को अलग कर दें क्यों कि ये सब जीवन नहीं है। यदि उन वस्तुओं में उलझ जाएँगे तब आप कभी भी जीवन को आविष्कृत नहीं कर सकेंगे और शिक्षा का निश्चित रूप से यह कार्य है कि वह आपको प्रत्येक समय जीवन को खोजने में सहायता करे।

वह व्यक्ति जो कहता है "मैं जानता हूँ" वह पहले से ही मर चुका है। लेकिन जो व्यक्ति सोचता है, "मैं नहीं जानता हूँ", जो अनुसन्धान कर रहा है, खोज रहा है, जो किसी परिणाम की खोज नहीं कर रहा है, जो कहीं पहुँचने या कुछ होने की दृष्टि से नहीं सोच रहा है, ऐसा ही व्यक्ति वास्तव में जी रहा है और वह जीना ही सत्य है।

प्रश्नकर्ता : क्या मैं पूर्णता के सम्बन्ध में कुछ विचार जान सकता हूँ ?

कृष्णमूर्ति : संभवतः आप जान सकते हैं। आप केवल अनुमान से, अनुसंधान से, कल्पना से और यह कहकर कि "यह कुरूप है, वह पूर्ण है" पूर्णता का अंदाजा लगा सकते हैं। लेकिन इस पूर्णता के सम्बन्ध में आपका विचार वैसा ही होगा जैसा कि ईश्वर के सम्बन्ध में आपका विश्वास है, जिसका कोई अर्थ नहीं है। संपूर्णता का अर्थ है एक ऐसे क्षण में जीना जिसके सम्बन्ध में कभी सोचा नहीं गया है और जिसका सातत्य नहीं है। इसीलिए पूर्णता का विचार नहीं किया जा सकता और इसे स्थायी बनाने का कोई मार्ग भी नहीं है। केवल वही मन जो अत्यधिक शांत है, जो पूर्व धारणाएँ नहीं बना रहा है, जो दौड़-भाग नहीं कर रहा है, कल्पना नहीं कर रहा है, वही पूर्णता के क्षण की अनुभूति कर सकता है—एक ऐसा क्षण जो अपने आप में पूर्ण है।

प्रश्नकर्ता : जो व्यक्ति हमें चोट करता है उसे चोट पहुँचाकर हम उसका प्रतिशोध क्यों लेते हैं ?

कृष्णमूर्ति : यह हमारी जीवित रहने की सहज प्रवृत्ति का परिणाम है; क्या नहीं है ? इसके विपरीत बुद्धिमान और सजग मन, जिसने इसके सम्बन्ध में गहराई से सोचा है, पुनः चोट करने की इच्छा ही महसूस नहीं करता, इसलिए नहीं कि वह ऐसा कर धार्मिक बनने का अथवा क्षमावृत्ति साधने का प्रयत्न कर रहा है लेकिन इसलिए कि वह यह महसूस करता है कि पुनः चोट करना मूर्खतापूर्ण है, यह बिलकुल व्यर्थ है। लेकिन आप देखते हैं कि इसके लिए ध्यान (Meditation) की आवश्यकता है।

प्रश्नकर्ता : मुझे दूसरों को चिढ़ाने में मज़ा आता है लेकिन जब कोई मुझे चिढ़ाता है तो मुझे क्रोध आता है।

कृष्णमूर्ति : मैं समझता हूँ कि बड़े व्यक्ति भी ऐसा ही करते हैं। हममें से अधिकांश व्यक्ति दूसरों का शोषण करते हैं लेकिन जब हमारा शोषण किया जाता है तब हम इसे नापसन्द करते हैं। दूसरों को चोट पहुँचाना, उन्हें दुख देना, एक अत्यन्त

अविचारी अवस्था का परिणाम है; क्या नहीं है ? इसका आगमन स्वकेंद्रित जीवन से होता है। जब आप या आपके साथी दोनों हो चोट से दुखित होना पसन्द नहीं करते हैं तब आप दोनों उसे बन्द क्यों नहीं कर देते हैं ? जिसका अर्थ होगा विचारशील होना।

प्रश्नकर्ता : मानव का क्या कार्य है ?

कृष्णमूर्ति : आप स्वयं इसके सम्बन्ध में क्या सोचते हैं ? अध्ययन करना, परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना, व्यवसाय प्राप्त करना और जिन्दगी भर उसे किए जाना क्या यही मानव के कार्य हैं ? मन्दिर में जाना, समुदाय में सम्मिलित होना, बड़े साहस के साथ विभिन्न सुधार करना ही क्या मानव का कार्य है ? क्या यही मनुष्य का कार्य है कि वह अपने भोजन के लिए पशुओं की हत्या करे और ट्रेन को पार होने के लिए पुल का निर्माण करे, वह सूखे प्रदेश में कुएँ खोदे, तेल को खोजे, पहाड़ों पर चढ़ें, पृथ्वी और हवा पर विजय प्राप्त करे, कविताएँ लिखे, चित्रकारी करे, प्रेम करे, नफरत करे— क्या ये ही मनुष्य के कार्य हैं ? सभ्यताओं का निर्माण करना, जो कुछ ही शताब्दियों में ढह जाती हैं, युद्धों को जन्म देना, अपनी ही कल्पनानुसार ईश्वर की रचना करना, धर्म या देश के नाम पर मनुष्यों की हत्याएँ करना, शांति की बातें करते हुए शक्ति का अपहरण करना, दूसरों के प्रति क्रूर बनना, क्या यही मानव का कार्य है ? और आपके चारों ओर मनुष्य यही किए जा रहा है, क्या नहीं कर रहा है ? क्या यही है मानवका वास्तविक कार्य ?

आप देख सकते हैं, यह सारा कार्य हमें नाश और पीड़ा, अराजकता और निराशा की ओर ले जा रहा है। एक तरफ अत्यधिक विलासिता है तो दूसरी ओर अत्यन्त गरीबी। एक ओर रेफरीजेरेटर्स और वायुयान हैं तो दूसरी ओर बीमारी और भुखमरी। ये समस्त मानवके कार्य हैं और जब आप ये देखते हैं तब क्या अपने आपसे नहीं पूछते, "क्या यही मानवका कार्य है ? क्या उसका कोई दूसरा वास्तविक कार्य नहीं है ?" यदि हम मनुष्य के वास्तविक कार्य को ज्ञात कर सकें तब वायुयान, धुलाई की मशीनें, पुल, छात्रावास का एक बिलकुल ही दूसरा अर्थ होगा। लेकिन वह समझे बिना कि मानव का वास्तविक कार्य क्या है, केवल सुधार किए जाना अथवा मानव ने अब तक जो किया है, उसका पुनः पुनः नवीनीकरण करते रहने का कुछ भी अर्थ नहीं है।

अतः मनुष्य का वास्तविक कार्य क्या है ? निश्चित रूप से मानव का सही कार्य है सत्य और परमात्मा की खोज करना, प्रेम करना; न कि स्वकेन्द्रित कार्य-कलापों में फँसे रहना। इसी सत्य की खोज में प्रेम निहित है और यह मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्धों के बीच का प्रेम ही एक भिन्न सभ्यता और नूतन विश्व का निर्माण करेगा।

प्रश्नकर्ता : हम ईश्वर की पूजा क्यों करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : मुझे तो लगता है कि हम ईश्वर की पूजा करते ही नहीं ! आप हँसें नहीं । आप देखते हैं कि यदि आप ईश्वर से प्रेम करते होते, तब क्या यह पूजा नाम की कोई वस्तु होती ? हम पूजा इसलिए करते हैं कि हम ईश्वर से भयभीत हैं । हमारे हृदयों में प्रेम नहीं अपितु भय है । यह मन्दिर, यह पूजा, यह पावन धागा ईश्वर नहीं है, ये सब मनुष्य के भय और अहंकार की रचनाएँ हैं । केवल वही, जो दुखी है, जो भयभीत है, ईश्वर की पूजा करता है, प्रसन्न व्यक्ति नहीं । वे व्यक्ति, जिनके पास सम्पत्ति है, प्रतिष्ठा है, अधिकार है, वे प्रसन्न नहीं हैं । महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति सबसे दुखी व्यक्ति हैं । प्रसन्नता का आगमन तो तभी होता है जब आप इन सारी वस्तुओं से मुक्त हो जाते हैं और तब आप ईश्वर की पूजा ही नहीं करते । केवल वे, जो दुखी हैं, जो सताए हुए हैं, जो निराश हैं, मन्दिर की ओर भागते हैं, लेकिन यदि वे ही इस तथा-कथित पूजा को अलग रखकर अपनी पीड़ाओं को समझ लें तब वे आनन्दमय व्यक्ति बन जाएँगे; क्यों कि तब वे यह खोजेंगे कि सत्य क्या है, ईश्वर क्या है ।

१८. मन का अवकाश

क्या आपने कभी मन्दिर की बजती हुई घंटियों की ओर ध्यान दिया है ? अभी-अभी आप क्या सुन रहे हैं ? आप ध्वनियाँ सुन रहे हैं या फिर इन ध्वनियों के बीच की स्तब्धता ? यदि यह स्तब्धता नहीं होती तो क्या ध्वनियाँ होतीं ? और यदि आप इस स्तब्धता को भी सुनते तो ये ध्वनियाँ क्या और ज्यादा गहरी और भिन्न प्रकार की न हो जातीं ? लेकिन आप शायद ही कभी किसी वस्तु की ओर ध्यान देते हैं और मैं सोचता हूं कि यह जान लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि "ध्यान देने" के क्या मानी हैं ? जब आपके शिक्षक गणित की कोई समस्या हल करते हैं, अथवा जब आप इतिहास पढ़ रहे होते हैं, या जब आप का मित्र आपसे बात कर रहा होता है या वह कोई कहानी कह रहा होता है या जब आप नदी के निकट बैठे होते हैं और उसकी लहरों द्वारा किनारों को समेटते हुए सुनते हैं तो प्रायः आप बहुत ही थोड़ा ध्यान वहाँ देते हैं और यदि हम यह ज्ञात कर सकें कि ध्यान देने के क्या मानी हैं तब सम्भवतः सीखने का कुछ दूसरा ही अर्थ होगा, तब सीखना बहुत ही आसान हो जाएगा ।

जब आपके शिक्षक आपको कक्षा में ध्यान देने के लिए कहते हैं, तब उनका क्या अभिप्राय होता है ? वे चाहते हैं कि आप खिड़की से बाहर न देखें और आप अन्य समस्त वस्तुओं से अपना ध्यान खींचकर उसे पूर्णतया केवल उसी ओर केन्द्रित करें जिसका कि आप अध्ययन कर रहे हैं । अथवा जब आप कोई उपन्यास पढ़ने में तल्लीन होते हैं तब आपका पूरा मन उसमें इतना केन्द्रित हो जाता है कि चारों ओर की वस्तुओं के प्रति आपकी दिलचस्पी ही समाप्त हो जाती है । यह एक दूसरे प्रकार का ध्यान देना हुआ । अतः साधारणतया ध्यान देने का अर्थ है अपने मन को संकुचित करना । ऐसा ही है न ?

मैं सोचता हूं, एक बिलकुल ही भिन्न प्रकार का ध्यान और भी है । साधारण तौर से जिस ध्यान के सम्बन्ध में प्रायः दलीलें दी जाती हैं, जिसकी साधना की जाती है या जिसमें लीन हुआ जाता है, या वह मन को किसी वस्तु के प्रति संकुचित करता है, जो एक निषेध की प्रक्रिया है । जब आप ध्यान देने के लिए कुछ प्रयत्न करते हैं, तब आप सचमुच किसी इच्छा का प्रतिकार कर रहे होते हैं—खिड़की से बाहर देखने की इच्छा या यह देखने की इच्छा कि कौन आ रहा है आदि । इस प्रकार आपकी शक्ति का कुछ भाग प्रतिकार करने में नष्ट हो जाता है । आप अपने मन के चारों ओर एक

दीवार खड़ी कर लेते हैं ताकि आप उसे किसी वस्तु विशेष पर पूर्णतया केंद्रित कर सकें। आप अपने मन से सारे विचारों को निकालकर उसे केवल एक ही विचार पर पूर्णतया केंद्रित करने का प्रयत्न करते हैं। अधिकांश व्यक्तियों के लिये ध्यान देने का यही अर्थ है। लेकिन मैं सोचता हूँ, एक बिलकुल ही भिन्न प्रकार का ध्यान भी है—वह है मन की एक ऐसी अवस्था जहाँ कोई अलगाव नहीं है, जहाँ किसी वस्तु का दुराव नहीं है, और जहाँ कोई प्रतिरोध नहीं है। अतः मन और भी ज्यादा ध्यान देने में समर्थ होता है। किन्तु प्रतिरोध रहित ध्यान का अर्थ तल्लीनता (absorption) जनित ध्यान नहीं है।

जिस प्रकार के ध्यान देने की चर्चा मैं करना चाह रहा हूँ, वह उससे, जिसे आप साधारणतया ध्यान देना समझे बैठे हैं, बिलकुल ही भिन्न है और वह ध्यान अपने आपमें महान् संभावनाएँ लिए हुए है। जब आप किसी विषय पर, किसी बात पर या किसी संभाषण पर जाने या अनजाने केंद्रित होते हैं तब आप प्रतिकार करने के लिए अपने मन के चारों ओर एक दीवार खड़ी कर लेते हैं, ताकि अन्य विचारों का प्रवेश न हो सके और इसीलिए आपका मन पूर्ण रूप में वहाँ नहीं होता है। ऐसी अवस्था में आप चाहे कितना ही ध्यान क्यों न दें, फिर भी आप आंशिक रूप में ही ध्यान दे पाते हैं, क्यों कि उस समय आपके मन का एक भाग किसी विचार के प्रवेश का, किसी अतिक्रमण या किसी विचलन का प्रतिकार कर रहा होता है।

आइए, अब हम दूसरे पहलू से इसपर विचार करें। क्या आपको ज्ञात है कि यह विचलन (distraction) क्या है? आप जो कुछ पढ़ रहे हैं उसकी ओर अपना पूरा-पूरा ध्यान देना चाहते हैं, लेकिन बाहर की किसी आवाज़ द्वारा आपका मन विचलित हो जाता है और आप खिड़की से बाहर देखते हैं। जब आप किसी वस्तु विशेष पर केंद्रित होना चाहते हैं और आपका मन भटकता है तब इस भटकन को हम विचलित होना कहते हैं। उस समय आपके मन का एक भाग इस विचलित होने का प्रतिकार करता है और इस प्रतिकार में आपकी शक्ति का अपव्यय होता है। इसके विपरीत यदि आप मन की प्रत्येक हरकत के प्रति क्षण-क्षण सावधान हैं तब न तो कभी विचलन का प्रश्न पैदा होता है और न मन की शक्ति का किसी वस्तु के प्रतिकार में अपव्यय ही होता है। अतः यह आवश्यक है कि आप वास्तविक ध्यान देने के अर्थ को समझें।

यदि आप घंटी की आवाज़ और उसकी चोटों के बीच की स्तब्धता दोनों को ही सुनें तो यह सम्पूर्ण सुनना ही ध्यान देना होगा। इसी तरह जब कोई व्यक्ति बोल

रहा हो तब उसकी ओर ध्यान देने का अर्थ केवल उसके शब्दों को सुनना ही नहीं है, अपितु उन शब्दों के बीच की शांति को भी सुनना होगा। यदि आप इसका परीक्षण करें तो आपको ज्ञात होगा कि आपका मन तब बिना विचलन और बिना प्रतिकार के पूरा ध्यान दे पा रहा है। जब आप यह कहकर कि ''मुझे खिड़की के बाहर या प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को कतई नहीं देखना चाहिए, भले ही मैं कोई दूसरा कार्य करना चाहूँ; पर मुझे इसी ओर ध्यान देना चाहिए', अपने मन को अनुशासित करते हैं, तो ऐसी अवस्था में आप अपने ही को बिभाजित कर लेते हैं जो बड़ा घातक है; क्यों कि इससे मन की शक्ति का ह्रास होता है। लेकिन यदि हम विशद रूप से सुनें ताकि विभाजन न हो, अतः प्रतिरोध की आवश्यकता ही न पड़े, तब आपको ज्ञात होगा कि आपका मन किसी भी वस्तु की ओर बिना किसी प्रकार के प्रयत्न के ध्यान दे सकता है। क्या आप यह समझ रहे हैं ? क्या मैं अपनी बात स्पष्ट रूप से कह पा रहा हूँ ?

ध्यान देने के लिए मन को अनुशासित करने का निश्चित रूप से अर्थ होगा मन का ह्रास करना। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि आपका मन एक बन्दर की भांति व्यग्रता से चारों दिशाओं में भटकता रहे। तल्लीनता युक्त ध्यान देने के अलावा हम सभी ये दो अवस्थाएँ भी जानते हैं। या तो हम मन को इतना ज्यादा अनुशासनबद्ध कर लेने का प्रयत्न करते हैं कि हमारा मन विचलित ही न हो अथवा इसे हम सतत एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर भटकने देते हैं। परन्तु इस समय मैं जिस ध्यान की चर्चा कर रहा हूँ वह इन दोनों अवस्थाओं का पारस्परिक समझौता नहीं है। इसके विपरीत इसका सम्बन्ध इन दोनों में से किसी एक से भी नहीं है। यह बिलकुल ही दूसरा मार्ग है— यह मार्ग है पूर्णतया सजग होने का मार्ग ताकि आपका मन प्रत्येक क्षण दुराव की प्रक्रिया में फँसे वगैर सचेत रहे।

मैं जो कुछ कह रहा हूँ, आप इसका प्रयोग करें और देखें कि कितनी जल्दी आपका मन सीखने लगता है। आप कोई संगीत या कोई आवाज सुनें और उससे अपने मन को इतना भर जाने दें कि आपको सीखने के लिए प्रयत्न ही न करना पड़े। यदि आपके शिक्षक कोई ऐतिहासिक तथ्य बता रहे हों और यदि आप सुनना जानते हों, यदि आप इसे बिना प्रतिकार और बिना विचलित हुए सुन सकते हैं इसलिए कि आपके मन में अवकाश (space) है, स्तब्धता (silence) है, तब आप न केवल उस ऐतिहासिक सत्य के प्रति सजग हो सकेंगे अपितु आप शिक्षक के इस घटना वर्णन के पक्षपातपूर्ण ढंग एवं उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया को भी समझ सकेंगे।

अवकाश के सम्बन्ध में मैं आपसे कुछ कहना चाहूंगा। क्या आप जानते हैं कि यह अवकाश क्या है ? कमरे में अवकाश होता है। यहाँ से आपके छात्रावास की दूरी, पुल

से आपके मकान की दूरी, सरिता के इस किनारे से उस किनारे तक की दूरी—यह सब अवकाश है। क्या आपके मन में भी यह अवकाश है? अथवा यह इतनी ज्यादा भीड़ से भरा हुआ है कि इसमें कतई अवकाश ही नहीं है? यदि आपके मन में अवकाश है तब उस अवकाश में जो स्तब्धता है उसी स्तब्धता से प्रत्येक वस्तु का आगमन होता है, तभी आप सुन सकते हैं, बिना प्रतिकार के अपना ध्यान दे सकते हैं। इसलिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हमारे मन में अवकाश हो। यदि हमारा मन अधिक भरा हुआ नहीं है, यदि वह सतत व्यस्त नहीं है, तब यह कुत्ते को भोंकते हुए, और दूर पुल को पार करती हुई रेल की आवाज़ को सुन सकता है, साथ ही साथ वह उस व्यक्ति की बात के प्रति भी, जो यहाँ आपके सामने चर्चा कर रहा है, पूर्णतया सजग रह सकता है। तब आपका मन एक जीवन्त मन होगा, मुर्दा नहीं।

प्रश्नकर्ता : कल की सभा के पश्चात् हमने आपको सड़क पर खेलते हुए दो अत्यन्त गरीब कृषक बच्चों को देखते हुए देखा। हम यह जानना चाहते हैं उन बच्चों को देखते समय आपमें कौन-से भाव उठे?

कृष्णमूर्ति : कल सायंकाल सड़क पर मुझे बहुत-से विद्यार्थी मिले और ज्योंही मैं आगे बढ़ा त्यों ही मैंने माली के दो बच्चों को खेलते हुए देखा। प्रश्नकर्ता जानना चाहता है कि उन्हें देखते समय मेरे मनमें क्या प्रतिक्रिया हुई?

आप जब गरीब बच्चों को देखते हैं तब आपमें क्या भावनाएँ उठती हैं? अथवा आप सदैव छात्रावास जाने में या विद्यालय जाने में इतने ज़्यादा व्यस्त रहते हैं कि आप इन्हें कतई देख ही नहीं पाते?

जब आप भारी बोझा उठाए बाज़ार की ओर जाती हुई गरीब महिलाओं को या उन कृषक बच्चों को कीचड़ में खेलते हुए देखते हैं, जिनके पास खेलने की कोई वस्तु नहीं है, जिन्हें आपकी तरह शिक्षा नहीं मिलती है, जिनका ठीक मकान नहीं है, जिनके यहाँ स्वच्छता नहीं है, जिन्हें न तो पूरे कपड़े मिलते हैं और न पूरा भोजन मिल पाता है, तब आपमें क्या प्रतिक्रिया होती है? आपके स्वयं के लिए इन प्रतिक्रियाओं को ज्ञात करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मैं आपको बताऊँगा कि मेरी प्रतिक्रिया क्या थी।

उन बच्चों के लिए सोने को ठीक जगह नहीं है; उनके माता-पिता दिन भर कार्य में व्यस्त रहते हैं, उन्हें कभी छुट्टी नहीं मिलती, वे बच्चे कभी यह नहीं जान पाते हैं कि प्रेम पाने का, पालित-पोषित होने का क्या अर्थ है। उनके पिता कभी भी उनके पास बैठकर उन्हें धरती और आसमान के सौन्दर्य की कहानियाँ नहीं कहते! और यह

कैसा समाज है जिसने ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया है कि जहाँ एक ओर अत्यंत सम्पन्न व्यक्ति हैं जिन्हें धरती की हर इच्छित वस्तु उपलब्ध है और दूसरी ओर ऐसे लड़के और लड़कियाँ भी हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है। कैसा है यह समाज और किसने निर्माण किया है इसका ? आप भले ही क्रांति करें, भले ही आप इस समाज के ढाँचे को तोड़ डालें, लेकिन इसके तोड़े जाने के साथ ही जो नया समाज होगा वह भी ऐसा ही तो होगा, भले हो उसका रूप दूसरा हो। उसमें भी वैसे ही अधिकारी होंगे जिनके वि ेष बंगले होंगे, विशेष अधिकार होंगे, गणवेश होंगे और यही क्रम आगे चलता रहेगा। प्रत्येक क्रांति के बाद यही तो घटित हुआ है – फ्रान्स में, रूस में, चीन में। क्या एक ऐसे समाज का निर्माण करना सम्भव है जिसमें यह भ्रष्टाचार और यह पीड़ा बिलकुल ही अनुपस्थित हो ? इस प्रकार के समाज का निर्माण तो तभी हो सकता है जब आप और मैं व्यक्ति के रूप में समूह से पृथक हो जाएँ, जब हम महत्त्वाकांक्षा से मुक्त हो जाएँ और ज्ञात करें कि प्रेम करने का क्या अर्थ है। सहसा मेरी यही संपूर्ण प्रतिक्रिया थी।

लेकिन क्या आपने, मैंने जो कुछ कहा है, उसे सुना ?

प्रश्नकर्ता : एक ही साथ मन किस प्रकार कई बातों को सुन सकता है ?

कृष्णमूर्ति : मैं इसके सम्बन्ध में चर्चा नहीं कर रहा हूँ। आपको ऐसे व्यक्ति मिल जाएँगे जो एक ही समय स्वयम् को कितनी ही वस्तुओं की ओर केंद्रित कर सकते हैं, यह केवल मन को प्रशिक्षित करने का विषय है। परन्तु मैं इसके सम्बन्ध में कतई चर्चा नहीं कर रहा हूँ। मैं तो उस मन के सम्बन्ध में चर्चा कर रहा हूँ जो प्रतिरोध नहीं करता है, जो प्रत्येक वस्तु सुन सकता है क्यों कि उसमें अवकाश है, स्तब्धता है, जहाँ से सम्पूर्ण विचार स्फुरित होते हैं।

प्रश्नकर्ता : हम सुस्त बनना क्यों पसन्द करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : सुस्ती में क्या बुराई है ? चुपचाप बैठने और सुदूर से क्रमशः निकट आती हुई आवाज को सुनने में क्या हर्ज है ? अथवा यदि प्रातः आप बिछौने में लेटे-लेटे पक्षियों को किसी पास हो के वृक्ष पर देख रहे हैं अथवा आप वृक्ष की किसी एक हो पत्तो को हवा में नृत्य करते हुए देख रहे हैं जब कि अन्य पत्तियाँ एकदम शांत हैं तो इसमें बुराई क्या है ? पर हम आलस्य की निंदा करते हैं, क्यों कि हम सोचते हैं कि आलसी होना बुरा है, अतः हम खोज करें कि इस आलस्य का क्या अर्थ है ? यदि

आप स्वयं को अच्छा महसूस करते हैं और फिर भी एक निश्चित समय के बाद बिछौने में पड़े रहते हैं तब कुछ व्यक्ति आपको आलसी कहेंगे। यदि आप इसलिए नहीं खेलते या अध्ययन नहीं करते कि आप कुछ कमजोरी महसूस कर रहे हैं या और कुछ शारीरिक असुविधा महसूस कर रहे हैं तब भी आपको कोई व्यक्ति आलसी कहेगा, परन्तु वास्तव में आलस्य क्या है ?

हमारा मन तब आलसी और अज्ञानी होता है जब वह अपनी ही प्रतिक्रियाओं और अपनी ही गहरी हरकतों के प्रति असावधान होता है। यदि आप परीक्षाएँ उत्तीर्ण नहीं कर पाते हैं, ढेर सारी पुस्तकें नहीं पढ़ पाते हैं या बहुत ही कम जानकारी रखते हैं तब भी आप अज्ञानी नहीं होते हैं। वास्तविक अज्ञान तो तब होता है जब आपको स्वयं का ही ज्ञान नहीं होता है, जब आप अपने ही मन की कार्य-प्रणाली को नहीं समझते हैं, आप यह नहीं जानते हैं कि आपकी उत्तेजनाएँ एवं उद्देश्य क्या हैं, आपकी प्रतिक्रियाएँ किस प्रकार की हैं ? इसी प्रकार जब आपका मन सोता है तब वह आलसी होता है और अधिकांश व्यक्तियों का मन सो रहा है। वे ज्ञान से, शास्त्रों से तथा शंकराचार्य या किसी और के वचनों का नशा किए हुए हैं। वे किसी दर्शन का अनुगमन करते हैं, वे अपने मन को अनुशासित कर उसे संकुचित, मन्द और उदासीन बना देते हैं जब कि उसे समृद्ध, सम्पूर्ण और सरिता की भाँति छलकनेवाला होना चाहिए था। मन्द एवं संकुचित मन आलसी होता है। वह मन, जो महत्त्वाकांक्षी है, जो किसी परिणाम के पीछे भागा जा रहा है, वह भी वास्तव में स्फूर्त मन नहीं है, भले ही यह ऊपर-ऊपर से उत्साही, आगे बढ़ता हुआ और हर समय इच्छित वस्तु पाने के लिए भागता हुआ दिखाई पड़ता हो; पर अन्दर ही अन्दर से यह मन निराशा से, पराजय से बोझिल है।

अतः व्यक्ति को अत्यन्त सजगता के साथ यह अवश्य ज्ञात कर लेना चाहिए कि क्या वह सचमुच आलसी है ? आप केवल अन्य व्यक्तियों की मान्यताओं को न स्वीकार लें, जो आपको आलसी कहते हैं। आप स्वयं अपने लिए खोजें कि यह आलस्य क्या है ? वह व्यक्ति, जो केवल मान लेता है या इन्कार कर देता है या अनुकरण करता है, जो भयभीत होकर अपने लिए एक छोटा-सा घेरा खोद लेता है, ऐसा व्यक्ति आलसी है और इसीलिए उसका मन नष्ट हो जाता है, टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। लेकिन वह व्यक्ति आलसी नहीं है, जो सजग है, यद्यपि वह प्रायः शांत बैठकर वृक्षों, व्यक्तियों, सितारों और शांत सरिता का अवलोकन करता है।

प्रश्नकर्ता : एक ओर आप कहते हैं कि हम समाज के खिलाफ विद्रोह करें और दूसरी ओर आप कहते हैं कि हम महत्त्वाकांक्षा न रक्खें । क्या समाज को सुधारने की इच्छा एक प्रकार की महत्वाकांक्षा नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : मैंने बड़ी सावधानी के साथ विद्रोह का अर्थ स्पष्ट किया है; परन्तु इसे और ज्यादा स्पष्ट करने के लिए मैं अब दो भिन्न-भिन्न शब्दों का उपयोग करूँगा। समाज को अपेक्षाकृत कुछ अच्छा बनाने के लिए अथवा इसमें कुछ सुधार करने के लिये जो विद्रोह किया जाता है वह विद्रोह समाज के घेरे के अन्दर का विद्रोह है और यह उस विद्रोह के समान है जो कारागृह की दीवारों में ज्यादा सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए कैदी करते हैं और इस प्रकार का विद्रोह कतई विद्रोह ही नहीं है, यह तो गदर है । क्या आप इस अन्तर को समझ रहे हैं ? समाज के अन्दर का विद्रोह उन बंदियों के गदर की भाँति है जो कारागृह के अन्दर अपेक्षाकृत अच्छे भोजन और अच्छे बर्ताव के लिए करते हैं; लेकिन बोधक्षमता से उत्पन्न हुआ विद्रोह का अर्थ है व्यक्ति का समाज से मुक्त होना और यही है सृजनात्मक क्रांति ।

आप यदि एक व्यक्ति के रूप में समाज से पृथक हो जाते हैं तो क्या यह पृथकता आपको किसी महत्वाकांक्षा के निमित्त से है ? यदि हाँ, तो इसका अर्थ होगा आप बिलकुल पृथक ही नहीं हुए हैं, आप अब भी कारागृह के अन्दर हैं क्योंकि समाज का मूलाधार ही महत्वाकांक्षा है, परिग्रह है, लालच है । लेकिन यदि आप यह सब समझ लेते हैं और अपने दिल और दिमाग में क्रांति लाते हैं तब आप महत्वाकांक्षी ही नहीं रह जायेंगे, आप ईर्ष्या, लालच और परिग्रह से उत्तेजित ही नहीं होंगे और इसलिये आप पूर्णतया उस समाज से बाहर होंगे जो इन वस्तुओं पर आधारित है । तब आप एक सृजनशील व्यक्ति होंगे और आपके कार्य में एक भिन्न संस्कृति के बीज होंगे ।

अतः सृजनात्मक क्रांति के कार्य, और समाजरूपी कारागृह के अन्दर का गदर के कार्य में महान अन्तर है । जहाँ तक आपका सम्बन्ध केवल सुधार करने व कारागृह की दीवारों व सींकचों को अलंकृत करने से है वहाँ तक आप सृजनशील नहीं हैं, सुधार सदैव "और अधिक सुधारों" की अपेक्षा करता है और यह केवल और अधिक पीड़ा, और अधिक विनाश, को जन्म देता है । इसके विपरीत वह मन जो इस परिग्रह, लालच और महत्वाकांक्षा को सम्पूर्ण रचना को समझ लेता है और इनसे अपने को अलग कर लेता है, ऐसा मन निन्तर क्रांति में रहता है । ऐसा मन विशाल व सृजनात्मक मन होता है, अतः उसका कार्य उस कंकड़ के कार्य-सदृश होता है जिसे स्तब्ध सरोवर में फेंकने से लहरें उठेंगी और ये लहरें एक बिलकुल ही भिन्न सभ्यता का निर्माण करेंगी ।

प्रश्नकर्ता : जब मैं अध्ययन नहीं करता हूँ तब मैं अपने आप से घृणा क्यों करता हूँ ?

कृष्णमूर्ति : आप प्रश्न को सुनें। मुझे जितना अध्ययन करना चाहिए उतना अध्ययन जब मैं नहीं करता हूँ तब मैं अपने आपसे नफरत क्यों करता हूँ ? मैं अपने आप से तब क्यों नफरत करता हूँ जब मैं उतना सुन्दर नहीं होता हूँ जितना कि मुझे होना चाहिये था ? दूसरे शब्दों में मैं अपने आदर्शों के अनुसार क्यों नहीं रहता हूँ ?

क्या यह अधिक आसान बात नहीं होती कि हम बिलकुल आदर्श रखते ही नहीं ? यदि आप आदर्श ही नहीं रखते तो क्या फिर अपने आप से नफरत करने का आपके लिए कोई कारण रह जाता ? अतः आप ऐसा क्यों कहते हैं, "मुझे दयालु होना ही चाहिये, मुझे उदार होना ही चाहिए, मुझे ध्यान देना ही चाहिये, मुझे अभ्यास करना ही चाहिये।" यदि आप इस 'क्यों' की खोज कर सकें और इन आदर्शों से मुक्त हो सकें तब सम्भवतः आप एक दसरे ही ढंग से कार्य कर सकेंगे जिसके सम्बन्ध में मैं अभी चर्चा कर रहा हूँ।

अतः आप आदर्श क्यों बनाते हैं ? सर्वप्रथम बात तो यह है कि लोगों ने आपको कहा है कि यदि आप आदर्श नहीं रखेंगे तो आप अयोग्य छात्र होंगे। समाज चाहे वह साम्यवादी विचारों का हो या पूंजीवादी विचारों का, कहता है—"यही वह आदर्श है" और आप इसे स्वीकार कर लेते हैं, इसका आचरण करते हैं, क्या नहीं करते हैं ? अब यदि इसके पहले कि आप आदर्श के अनुसार आचरण करने का प्रयत्न करें, क्या आपको यह ज्ञात नहीं कर लेना चाहिए कि क्या आदर्श की कतई आवश्यकता भी है ? निश्चित रूप से वह प्रश्न अत्यन्त अर्थपूर्ण है। आप अपने सामने राम का, सीता का या और बहुत-से आदर्श रखते हैं जो या तो समाज द्वारा आपको प्राप्त हुए हैं या जिनका आपने स्वतः अपने लिए आविष्कार किया है। क्या आप जानते हैं कि आप ये आदर्श क्यों रखते हैं ? इसलिए कि आप जैसे हैं वैसे रहने में भयभीत हैं।

हम इसे सरलता से समझें। इसे हम उलझाएँ नहीं। आप जैसे हैं, वैसे होने से भयभीत हैं; जिसका अर्थ है आपमें अपने प्रति विश्वास नहीं है। इसीलिए आप वैसा ही बनने का प्रयत्न करते हैं जैसा बनने के लिए आपका समाज, आपके माता-पिता, आपका धर्म आपसे कहते हैं।

अब हम देखें कि आप जैसे हैं वैसे ही होने में भयभीत क्यों हैं ? आपको "जैसा होना चाहिए" वहाँ से नहीं अपितु आप "जैसे हैं" वहीं से क्यों नहीं प्रारम्भ

करते हैं ? आप "जो है" उसे नहीं समझते हुए यदि "जैसा होना चाहिए" वैसे बनने के लिए प्रयत्न करते हैं तो उसका कुछ भी अर्थ नहीं होगा। इसलिए आप समस्त आदर्शों को समाप्त कर दें। मैं जानता हूँ कि प्रौढ व्यक्ति यह पसंद नहीं करेंगे, पर इसका कोई अर्थ नहीं है। आप समस्त आदर्शों को छिन्न-भिन्न कर डालें और उन्हें नदी में डुबो दें, उन्हें कूड़े की टोकरी में डाल दें और आप "जो है" वहीं से प्रारम्भ करें; आप जानते हैं, इससे क्या होगा ?

माना, आप आलसी हैं, आप अध्ययन नहीं करना चाहते हैं, आप खेल खेलना चाहते हैं। आप भी अन्य युवकों की भाँति मजे से समय बिताना चाहते हैं। आप वहीं से आरम्भ करें। आप इस बात के परीक्षण में अपने मन का उपयोग करें कि मज़े से समय बिताने से आपका क्या तात्पर्य है ? आप यह खोजें कि इसमें क्या निहित है ? आप इस ओर खयाल न दें कि आपके माता-पिता या आपके आदर्श आपको क्या कहते हैं ? आप अपने मन का इस खोज में उपयोग करें कि आप क्यों नहीं अध्ययन करना चाहते ? आप यह खोज करने में अपने मन का उपयोग करें कि आप जीवन में क्या करना चाहते हैं; आपका समाज और आपके आदर्श आपसे क्या चाहते हैं वह नहीं, अपितु आप स्वयम् क्या करना चाहते हैं। यदि आप इस खोज में अपनी समग्रता लगा देते हैं तब आप एक क्रांतिकारी मानव होंगे, तब आपमें सृजन का विश्वास पैदा होगा, तब आप वही होंगे जैसे आप हैं और उस अवस्था में ऐसी जीवंतता होगी जो सदैव पुनः-पुनः नवीन होती रहेगी। लेकिन दूसरे मार्ग से आप अपनी शक्ति का व्यर्थ ही कुछ और बनने में व्यय कर रहे होंगे।

आप 'जैसे हैं' उसमें ही सौंदर्य निहित है, फिर भी यह कितनी विचित्र बात है कि आप उसी से भयभीत हैं, क्या आप यह नहीं देख रहे हैं ? माना आप आलसी हैं, आप मूर्ख हैं। अब यदि आप स्वयम् को परिवर्तित करने के प्रयत्न किए बिना इस आलस को समझते हैं, इस मूर्खता के एकदम सामने खड़े हो जाते हैं, तब आपको ज्ञात होगा कि उस अवस्था में अतिशय हल्कापन, अतिशय सौंदर्य और महान् बुद्धिमत्ता का आगमन होगा।

प्रश्नकर्ता : यदि हम इस वर्तमान समाज के खिलाफ विद्रोह करके नूतन समाज की रचना चाहे कर भी लें, फिर भी क्या यह नव-समाज-रचना हमारी महत्वाकांक्षा का ही दूसरा रूप नहीं होगा ?

कृष्णमूर्ति : मैं समझता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है, उसे आपने सुना नहीं। जब हमारा मन समाज के ढांचे के अन्दर विद्रोह करता है तो ऐसा विद्रोह जेल के

अन्दर के गदर के समान होगा और यह महत्त्वाकांक्षा का ही दूसरा रूप होगा। लेकिन यदि यह मन मौजूदा समाज की इस विनाशकारी प्रक्रिया को समझकर इससे पृथक हो जाता है तब इसका यह कार्य महत्त्वाकांक्षापूर्ण नहीं रह जाता है। यह कार्य भले ही एक नई संस्कृति का, एक सुन्दर सामाजिक व्यवस्था एवम् भिन्न विश्व का निर्माण कर ले, परन्तु हमारा मन तो इस सारी रचना से अपने को सम्बन्धित नहीं करता। इसका संबन्ध तो केवल सत्य की खोज करने से होता है और यह सत्य की धारा एक नूतन सृष्टि का सृजन करती है, न कि उस मन का जो समाज के विरुद्ध विद्रोह करे।

१९. मुक्त मन

आप में से कितने व्यक्तियों ने गत सन्ध्या के इन्द्रधनुष को देखा? वह एकदम पानी की सतह पर था और उसे 'कोई' अचानक देख सकता था। उसे देखना सौन्दर्यमय था। यह दृश्य आनन्द की अनुभूति के साथ-साथ वसुधा की विराटता और उसके सौन्दर्य का बोध करानेवाला था। इस प्रकार के आनन्द को व्यक्त करने के लिए व्यक्ति के पास शब्दों का तथा भाषा के वास्तविक सौन्दर्य एवं लय का ज्ञान होना आवश्यक है, क्या नहीं है? लेकिन इससे भी कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात तो उस अनुभूति को, आनन्द की उस चरम सीमा को, जागरित करना है जिसका आगमन तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि व्यक्ति में किसी सुन्दर वस्तु के प्रति गुणग्राह्यता के गम्भीर भाव न हों और इस भावना का जागरण किसी ज्ञान अथवा किसी स्मृति के माध्यम से नहीं हो सकता!

आप देखते हैं कि संभाषण के लिए या किसी विषय पर चर्चा करने के लिए ज्ञान आवश्यक है और इसे साधने के लिए स्मृति अनिवार्य है। ज्ञान के बिना आप वायुयान नहीं उड़ा सकते, पुल अथवा सुन्दर भवन का निर्माण नहीं कर सकते। इसके अभाव में बड़ो-बड़ी सड़कों का निर्माण, वृक्षों की देखभाल और पशुओं का पालन संभव नहीं है। ज्ञान के अभाव में आप ऐसी कितनी ही बातें नहीं कर सकते हैं जो एक सभ्य व्यक्ति को करनी चाहिए। विद्युत उत्पादन के लिए, विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में कार्य करने, औषधि द्वारा मनुष्य की सहायता करने इत्यादि समस्त कार्यों में ज्ञान, जानकारी और स्मृति की आवश्यकता होती है। अतः इन समस्त विषयों में अधिकाधिक एवं हर सम्भव ज्ञान का प्राप्त करना आवश्यक है। इसीलिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आपके शिक्षक ऊँची श्रेणी का तकनीकी ज्ञान रखनेवाले हों ताकि वे आपको विविध विषयों का पूरा-पूरा ज्ञान दे सकने में समर्थ हो सकें।

लेकिन आप देखते हैं कि एक स्तर पर जहाँ यह ज्ञान आवश्यक है, वहाँ यही ज्ञान दूसरे स्तर पर बाधक बन जाता है। हमारे भौतिक अस्तित्व से सम्बन्धित ज्ञान की विशाल राशि हमें उपलब्ध है, जो प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है। इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना और इसका मानव के कल्याण के लिए उपयोग करना समीचीन है। लेकिन क्या हमारे मानसिक स्तर पर का, दूसरे प्रकार का, ज्ञान और भी नहीं है जो सत्य की

खोज में बाधक बन जाता है ? आखिरकार ज्ञान परम्परा का ही तो रूप है; क्या नहीं है ? और यह परम्परा स्मृति द्वारा सुरक्षित रक्खो जातो है। तकनोको विषयों में तो परम्परा अनिवार्य है; लेकिन इसी परम्परा का उपयोग जब आत्मिक दृष्टि से व्यक्ति का मार्गदर्शन करने में किया जाता है, तब यह महान् वस्तुओं की खोज में बाधक बन जाता है।

हम तकनीकी विषयों एवं अपने रोजमर्रा के जीवन में ज्ञान और स्मृति का आश्रय अवश्य लेते हैं। हम ज्ञान के अभाव में मोटर चलाने एवं और भी कितने ही कार्यों को करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। लेकिन यही ज्ञान जब हमारे मन को, हमारी आत्मा को, हमारे अंतस को मार्गदर्शन करनेवाले किसी विश्वास या परम्परा का रूप ले लेता है तब यह बाधक बन जाता है और मानवों को विभाजित करने लगता है। क्या आपने कभी यह महसूस किया है कि समस्त विश्व के मानव–हिंदू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई आदि भिन्न-भिन्न समुदायों में किस प्रकार बिभाजित हो गए हैं ? कौन विभाजित करता है उन्हें ? क्या विज्ञान के आविष्कार, क्या कृषि का ज्ञान क्या पुल बनाने या वायुयान उड़ाने की कला ने उन्हें विभाजित किया है ? नहीं, मानवों को विभाजित किया है इस विश्वास ने, इस परम्परा ने, जो हमारे मन को किसी विशेष ढाँचे में ढालने का प्रयत्न करती है।

अतः हमने यह देखा कि ज्ञान जब परम्परा का रूप लेकर हमारे मन को किसी विशेष प्रकार का आकार देने लगता है अथवा ढालने लगता है तब यह बाधक बन जाता है; क्यों कि तब यह मनुष्यों का विभाजित कर उनमें केवल दुश्मनी ही पैदा नहीं करता है, अपितु यह सत्य, जोवन और परमात्मा की गहरी खोज में भी रुकावट डालने लगता है। परमात्मा की खोज के लिए यह आवश्यक है कि मन उस परम्परा, संग्रह और ज्ञान के सम्पूर्ण बोझ से मुक्त हो जिसका उपयोग मानसिक सुरक्षा के लिए किया जाता है।

अतः शिक्षा का कार्य एक ओर विद्यार्थी को विविध क्षेत्रों में किए गए मानव के महान् प्रयत्नों का विशाल ज्ञान देना है, तो दूसरी ओर उसके मन को परम्पराओं के बोझ से मुक्त भी करना है ताकि वह आविष्कार करने, खोजने और अनुसन्धान करने में समर्थ हो सके। अन्यथा हमारा मन केवल तकनोको ज्ञान से बोझिल होकर यान्त्रिक बन जाता है। जब तक कि यह मन स्वयं को परम्परा के संग्रह से सतत मुक्त नहीं करता रहता है तब तक वह अमरता की, परमात्मा की खोज करने में समर्थ नहीं हो सकता।

लेकिन मन निःसन्देह इस निरन्तर विकासशील ज्ञान का अवश्य अर्जन करे ताकि वह वस्तुओं को समझ सके और उनका निर्माण कर सके।

अतः यह ज्ञान, जो स्मृति की उपज है, किसी सीमा तक एक दृष्टि से उपयोगी और आवश्यक है, लेकिन यही ज्ञान दूसरी दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होता है। अतः प्रज्ञा का प्रारम्भ तब होता है जब हम इस महत्त्वपूर्ण अन्तर को समझ लें; आवश्यकता पड़ने पर हम ज्ञान का चरमसीमा तक उपयोग करें लेकिन ज्यों ही यह विनाशकारी होने लगे त्यों ही इसे एक ओर रख दें।

अब हम देखें कि शिक्षा के क्षेत्र में आज क्या हो रहा है। आपको भिन्न-भिन्न प्रकार का ज्ञान दिया जा रहा है; क्या नहीं दिया जा रहा है? महाविद्यालयों में अध्ययन कर आप एक इन्जिनीयर या एक डॉक्टर या एक वकील हो जाते हैं अथवा फिर गणित या ज्ञान की किसी अन्य शाखा में आप पी. एच. डी. प्राप्त कर लेते हैं। आप गृहविज्ञान का अध्ययन कर मकान सजाना, भोजन बनाना आदि कार्य सीख सकते हैं। लेकिन कोई भी व्यक्ति आपके इस समस्त परम्पराओं से मुक्त होने में सहयोग नहीं करता, जो आवश्यक है। तभी आपका मन बचपन से ही नवीन और जिज्ञासु रह सकता हैं। तभी आप हर क्षण सर्वथा नवीन वस्तु की खोज करने में समर्थ हो सकते हैं। पुस्तकों के माध्यम से आप जिन सिद्धांतों, विश्वासों और दर्शनों का अर्जन करते हैं वे एक ऐसी परम्परा का रूप ले लेते हैं, जो सचमुच आपके मन के लिए रुकावट बन जाती है, क्योंकि तब हमारा मन अपनी मानसिक सुरक्षा के उपकरण के रूप में इनका उपयोग करने लगता है और इसलिए वह इनका दास बन जाता है। अतः शिक्षा के दो प्रकार के कार्य हैं—प्रथम, मन को समस्त परम्पराओं से मुक्त करना और दूसरा, उसे विविध प्रकार का ज्ञान देना, उसे कुशल बनाना।

अतः कठिनाई इस मन को ज्ञात से मुक्त करने की है ताकि यह क्षण-क्षण नूतनता का अनुसन्धान कर सके। एक महान् गणितज्ञ ने एक बार कहा था कि किस प्रकार कई दिनों तक वह एक गणित की समस्या को सुलझाने के लिए प्रयत्न करता रहा, फिर भी उसे हल नहीं मिल पाया। एक सुबह जब वह प्रतिदिन की तरह घूमने जा रहा था तभी उसे अचानक समस्या का हल मिल गया। आखिर क्या घटित हुआ? चूंकि उसका मन एकदम स्तब्ध था, वह समस्या समझने में स्वतन्त्र था, अतः समस्या ने स्वयं अपना हल उद्घाटित किया। व्यक्ति समस्या के सम्बन्ध में जानकारी अवश्य रक्खे, परन्तु उसका मन उत्तर को प्राप्त करने की जानकारी से मुक्त हो।

हममें से अधिकांश व्यक्ति किसी चीज के बारे में जानकारी या ज्ञान का संग्रह करते हैं; पर हमारा मन यह कभी नहीं सीखता कि वह किस प्रकार स्तब्ध हो, किस प्रकार वह जीवन के समस्त उपद्रवों से और उस भूमि से मुक्त हो, जिसमें समस्या अपनी जड़ें जमा लेती हैं। हम तो विविध समुदायों से सम्मिलित होते हैं, किसी दर्शन से चिपक जाते हैं, किसी विश्वास को स्वीकार कर लेते हैं; लेकिन यह सब व्यर्थ है; क्योंकि इनसे मनुष्य की समस्याएँ नहीं सुलझतीं। इसके विपरीत ये और अधिक पीड़ा, और अधिक दुख को जन्म देते हैं। हमें दर्शन और विश्वास की आवश्यकता नहीं है, अपितु आवश्यकता है उस स्वतन्त्र मन की जो खोज कर सके, अनुसन्धान कर सके, सृजनशील बन सकें।

आप परीक्षा में सफल होने के लिए रटते हैं, आप ढेरों जानकारी एकत्रित करते हैं और इसे लिखकर आप इस आशा के साथ उपाधि प्राप्त कर लेते हैं कि आप कोई व्यवसाय कर सकें, विवाह कर सकें, लेकिन क्या यही सब कुछ है? यह ठीक है कि आपने ज्ञान का, कुशलता का, सम्पादन किया; लेकिन आपका मन तो परतन्त्र है; इसलिए आप विद्यमान रीति-रिवाजों के दास बन जाते हैं; जिसका अर्थ ही यह है कि आप सही रूप में सृजनशील नहीं हैं। भले ही आप बच्चे पैदा कर लें, कुछ चित्र रंग लें, कभी-कभी कोई कविता लिख लें लेकिन निश्चित रूप से यह सृजन नहीं है। सृजनावस्था के लिए सर्वप्रथम यह ज़रूरी है कि आपका मन स्वतन्त्र हो और तभी आप अपनी कुशलता का उपयोग सृजन के लिए कर सकते हैं। परन्तु सृजनशील मन की अनुपस्थिति में, उस अद्भुत सृजनशीलता के अभाव में, जिसका आगमन सत्य की खोज के साथ होता है, कुशलता का कुछ भी अर्थ नहीं है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि हममें से अधिकांश व्यक्ति इस सृजनशीलता को जानते ही नहीं हैं; क्योंकि उनके मन तो ज्ञान, परम्परा, स्मृति से लदे हुए हैं। ये उन शब्दों से भरे हुए हैं जो शंकराचार्य, बुद्ध, मार्क्स या अन्य किसी व्यक्ति ने कहे हैं। अतएव यदि आपका मन सत्य की खोज के लिए स्वतन्त्र है, तब आप महसूस करेंगे कि आपमें अपरिमित समृद्धि का आगमन हो रहा है, जो कभी मलिन नहीं की जा सकती है और जिसमें अनन्त आनन्द है। तब व्यक्तियों, विचारों और वस्तुओं के साथ के आपके समस्त सम्बन्ध एक दूसरा ही अर्थ रक्खेंगे।

प्रश्नकर्ता : एक उपद्रवी लड़का कैसे बदलेगा, सज़ा से या प्रेम से?

कृष्णमूर्ति : आप क्या सोचते हैं? आप प्रश्न अत्यन्त सावधानी से सुनें, उस पर चिंतन करें। एक शरारती लड़का कैसे बदलेगा, सज़ा से या प्रेम से? माना कि वह सज़ा के माध्यम से, जो एक प्रकार की ज़बरदस्ती है, बदल जाता है; लेकिन क्या यह बदल है? आप एक बड़े आदमी हैं, आपके पास शिक्षक या माता-पिता के अधिकार हैं

और यदि आप उसे धमकी देते हैं, उसे डराते हैं, तब वह बेचारा लड़का, जैसा आप कहेंगे वैसा ही कर लेगा। लेकिन क्या यह सही बदल होगा? क्या किसी जबरदस्ती के माध्यम से कोई परिवर्तन हो सकता है? क्या कभी किसी कानून या किसी भय के माध्यम से कोई परिवर्तित हुआ है?

और जब आप यह पूछते हैं कि क्या प्रेम से शरारती लड़के में परिवर्तन हो जायेगा तब आप इस 'प्रेम' से क्या अर्थ लेते हैं? यदि प्रेम का अर्थ लड़के को समझने से है—उसे बदलने से नहीं लेकिन उसकी शरारत को पैदा करनेवाले कारणों को समझने से है—तब इस समझने मात्र से ही उसकी शरारत विर्सजित हो जायेगी।

यदि मैं उस लड़के को बदलना चाहूँ ताकि वह अपनी शरारत बन्द कर दे तब मेरी यह उसे बदलने की इच्छा ही एक प्रकार की जबरदस्ती होगी; क्या नहीं होगी? लेकिन यदि मैं यह समझना प्रारम्भ करूँ कि वह क्यों शरारती है और यदि मैं उसे शरारती बनानेवाले इन कारणों को – गलत खान-पान, निद्रा की कमी, प्यार का अभाव, दूसरों द्वारा चिढ़ाया जाना आदि का निर्मूलन कर दूँ तब वह शरारती ही नहीं रह जाएगा, लेकिन यदि मेरी इच्छा केवल उस लड़के को बदलने की है अर्थात् मैं उसे किसी विशेष प्रकार के ढाँचे के अनुसार बनाना चाहता हूँ तब मैं उसे नहीं समझ सकता हूँ।

आप देखते हैं कि इसी प्रश्न के दौरान में हमारे सामने एक नई समस्या खड़ी हो गई है–'इस परिवर्तन का क्या अर्थ है?' मान लीजिये, आपके प्रेम के कारण, जो एक प्रकार का प्रभाव है, उस लड़के ने शरारत करना बन्द भी कर दिया तो भी क्या यह वास्तविक परिवर्तन है? और यह आपका प्रेम भी उसके लिए कुछ करने या कुछ बनने के लिए एक प्रकार का दबाव ही तो है और जब आप कहते हैं—"लड़के को बिलकुल ही बदल जाना चाहिये" तो इससे आपका क्या अर्थ है? 'कौन से रूप से बदल-कर क्या होना?' वह "जो है' उससे "जो होना चाहिए" में बदलना? यदि वह 'जो होना चाहिए' में बदल भी गया तब भी यह उसके उस वास्तविक रूप का सुधरा हुआ रूप ही होगा और इसीलिए ऐसा परिवर्तन बिलकुल ही परिवर्तन नहीं है।

इसे हम दूसरे शब्दों में यों कहें कि यदि मैं लोभी हूँ किन्तु मैं उदार बनने का प्रयत्न करता हूँ क्योंकि आप, समाज और शास्त्र सभी कहते हैं कि मैं अवश्य उदार बनूँ, तो इससे क्या मैं बदल जाऊँगा? अथवा मैं उसी लोभ को दूसरे नामों से पुकारता रहूँगा। अतएव यदि मैं मेरे लोभ की सम्पूर्ण समस्या की छान-बीन करने में, उसे समझने में समर्थ बनूँ, तब मैं उससे मुक्त हो जाऊँगा जो उदार बनने की अवस्था से एकदम दूसरी अवस्था होगी।

प्रश्नकर्ता : व्यक्ति बुद्धिमान कैसे बन सकता है ?

कृष्णमूर्ति : जिस क्षण आप बुद्धिमान बनने का प्रयत्न करते हैं त्यों ही आप बुद्धिमान नहीं रह जाते। यह सचमुच अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, अतः आप इस ओर अपना ध्यान दें। यदि मैं मूर्ख हूँ और प्रत्येक व्यक्ति मुझे कहता है कि मैं अवश्य बुद्धिमान बनूँ तब प्रायः क्या घटित होता है ? यही कि तब मैं बुद्धिमान बनने के लिए संघर्ष करता हूँ, ज्यादा अध्ययन करता हूँ, अधिक अंक पाने का प्रयत्न करता हूँ। तब लोग कहने लगते हैं, "वह अधिक परिश्रम कर रहा है।" इस प्रकार वे मेरी पीठ थपथपाते हैं। फिर भी मैं मूर्ख ही बना रहता हूँ, क्यों कि मैंने बुद्धिमत्ता को केवल एक झलक ही हासिल की है। अतः समस्या बुद्धिमान बनने की नहीं है, समस्या है इस मूर्खता से कैसे मुक्त हुआ जाये ! हूँ तो मैं मूर्ख किन्तु प्रयत्न करता हूँ बुद्धिमान बनने का, फिर भी यह कार्य मूर्खतापूर्ण का ही तो होगा।

आप देखते हैं कि हमारी मूलभूत समस्या इस परिवर्तन की है। आप पूछते हैं– बुद्धिमत्ता क्या है और कोई बुद्धिमान कैसे बने ? इससे ध्वनित होता है कि बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में आपने एक धारणा बना रक्खी है और तब आप उस धारणा के अनुसार बनने का प्रयत्न करते हैं। बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में कोई सिद्धांत या कोई सूत्र या कोई धारणा बनाना और अपने आप को उस नमूने के अनुसार ढालना मूर्खतापूर्ण है, क्या नहीं है ? इसके विपरीत यदि कोई मन्द है, और वह यदि अपनी मंदता को किसी अन्य रूप में परिवर्तित करने की इच्छा किये बगैर और बगैर यह कहे कि मैं कितना मन्द हूँ, कितना मूर्ख हूँ, कितना भयावह हूँ इसे समझता है तब उसे ज्ञात होगा कि समस्या के अनावरण के साथ ही साथ एक बुद्धिमत्ता का आगमन हो रहा है जो मूर्खता से मुक्त है और जहाँ प्रयत्न की अनुपस्थिति है।

प्रश्नकर्ता : मैं एक मुसलमान हूँ। मेरे माता-पिता धमकी देते हैं कि यदि मैं अपने धर्म की परम्पराओं का नियमित रूप से पालन नहीं करूँगा तो वे मुझे घर से बाहर निकाल देंगे। ऐसी अवस्था में मैं क्या करूँ ?

कृष्णमूर्ति : आप, जो लोग मुसलमान नहीं हैं, सम्भवतः प्रश्नकर्ता को सलाह देंगे कि वह अपना मकान छोड़ दे, क्या ऐसी सलाह नहीं देंगे ? लेकिन यदि हम हिन्दू, पारसी, साम्यवादी, ईसाई या और किसी लिबास की ओर, जो आप पहने हुए हैं, खयाल दें तो यही वस्तु आपपर भी घटित होती है। अतः आप स्वयं को ऊँचा न समझें, गर्व न करें। यदि आप भी अपने माता-पिता से यह कहें कि उनकी परम्पराएँ सचमुच अंधविश्वासपूर्ण हैं तब वे भी आपको मकान से बाहर निकाल देंगे।

अब यदि आप किसी धर्म-विशेष में पैदा हुए हैं और आपके पिता कहते हैं कि यदि आप किन्हीं क्रियाओं को, जिन्हें आप पुराने अंधविश्वास मानते हैं, अवश्य करें अन्यथा आप घर से बाहर निकाल दिये जाएँगे, ऐसी अवस्था में आप क्या करेंगे ? यह इस बात पर निर्भर है कि आप कितनी दृढ़ता से पुरातन अंधविश्वासों को अस्वीकार करते हैं, क्या ऐसा नहीं है ? क्या आप ऐसा कहेंगे, "मैंने इस विषय पर गहराई से सोचा है और मैं महसूस करता हूँ कि मुसलमान, हिंदू, बौद्ध, ईसाई या और किसी नाम से स्वयं का पहचाना जाना मूर्खतापूर्ण है। और यदि इसी कारण से मुझे घर छोड़ना आवश्यक है तो मैं छोड़ूँगा। मैं इसके लिए प्रत्येक कठिनाई से–यहाँ तक कि पीड़ा और मृत्यु से भी संघर्ष करूँगा क्योंकि मैं सोचता हूँ कि यह सत्य है और मैं इस सत्य पर अटल रहूँगा।" क्या आप ऐसा कहेंगे ? यदि आप यह नहीं कहते हैं तो आप परम्परा और समाज द्वारा निगल लिए जाएँगे।

अतः आप क्या सोच रहे हैं ? यदि शिक्षा आपमें इस प्रकार का विश्वास नहीं जागृत कर सकती है तो फिर शिक्षा का अर्थ ही क्या रह जाएगा ? क्या शिक्षा का उद्देश्य केवल इतना ही है कि वह आपको किसी व्यवसाय के लिए तैयार कर दे तथा आपको एक ऐसे समाज के अनुकूल बना दे जो निश्चित रूप से विनाशकारी है ? आप यह न कहें कि "केवल कुछ ही व्यक्ति समाज से मुक्त हो सकते हैं और मैं उतना साहसी नहीं हूँ।" कोई भी व्यक्ति, जो इसपर भली भाँति विचार करता है, इससे पृथक हो सकता है। परम्परा को समझने और इसके दबाव को टक्कर देने के लिए साहस की नहीं अपितु आत्मविश्वास की आवश्यकता है–एक ऐसा असीम आत्मविश्वास, जिसका तभी आगमन हो सकता है जब आप स्वयं वस्तुओं के संबंध में ठीक तरह से सोचना जान लेते हैं। लेकिन आप देखते हैं कि आपकी शिक्षा आपको यह नहीं सिखाती है कि आप 'कैसे विचार करें'। वह तो आपको सिखाती है कि आप 'क्या विचारें'। आपको कहा जाता है कि आप मुसलमान हैं, हिंदू हैं, ईसाई हैं या और कुछ हैं। लेकिन सही शिक्षा का यह कार्य है कि वह आपको अपने लिए सोचना सिखाए ताकि आप अपने ही चिंतन से अतिशय आत्मविश्वास महसूस कर सकें। तब आप एक सृजनशील इन्सान होंगे न कि गुलामी का यंत्र।

प्रश्नकर्ता : आप हमें कहते हैं कि होश में रहने के लिए किसी प्रकार का प्रतिरोध न किया जाए, लेकिन यह कैसे संभव है ?

कृष्णमूर्ति : मैंने कहा कि किसी भी प्रकार का प्रतिरोध एक विचलन है, एक उपेक्षा है। आप इसे मान न लें; इसपर स्वयं विचार करें। आप किसी भी बात

को स्वीकार न करें, फिर चाहे उसका कहनेवाला कोई भी क्यों न हो। आप स्वयं अपने लिए उसकी खोज करें, यदि आप केवल स्वीकार कर लेते हैं तो आप यंत्रवत्, मंद और मुर्दा बन जाएँगे। लेकिन यदि आप अनुसंधान करते हैं, स्वयम् अपने लिए सोचते हैं तब आप जीवंत, उत्स्फूर्त और सृजनशील मानव होंगे।

अभी जो कुछ आपको कहा जा रहा है उसकी ओर क्या आप ध्यान दे सकते हैं? और साथ-ही-साथ आप यहाँ प्रवेश करनेवाले व्यक्ति के प्रति भी, उसे देखने के लिए बिना सिर उठाए और सिर उठाने की इच्छा का बिना प्रतिरोध किए, सचेत हो सकते हैं? यदि आप देखने के लिए सिर उठाने की इच्छा का प्रतिरोध करते हैं तब आपका ध्यान समाप्त हो चुका होता है और आप अपनी मानसिक शक्ति का इस प्रतिरोध में अपव्यय करने लग जाते हैं। अतएव क्या ध्यान की ऐसी पूर्ण अवस्था संभव है जिसमें कोई विचलन हो न हो, अतः प्रतिरोध का प्रश्न ही न उठे? दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु के प्रति अपनी समग्रता के साथ ध्यान देते हुए भी क्या आप अपने चेतन मन को उन सारी बातों के प्रति, जो आपके चारों ओर और आपके अंदर घटित हो रही हैं, सजग रख सकते हैं?

आप देखते हैं कि यह मन एक अद्भुत यंत्र है जो अविराम सीखता चला जा रहा है—यह भिन्न-भिन्न आकृतियों को, रंगों को, असंख्य प्रभावों को, शब्दों के अर्थों और निगाहों के रहस्यों को ग्रहण करता चला जा रहा है। अब हमारी समस्या यह है कि हम किस प्रकार किसी वस्तु की ओर ध्यान देते हुए भी हमारे मन को, हमारे चारों ओर घटित होनेवाली प्रत्येक वस्तु के प्रति, हमारे अवचेतन मन के प्रभावों और प्रतिक्रियाओं के प्रति, सचमुच जागृत रख सकते हैं?

जो कुछ मैं आपसे कह रहा हूँ इसमें ध्यान (Meditation) की पूरी समस्या ही निहित है। परंतु हम इस समय उस समस्या में प्रवेश नहीं करेंगे; लेकिन यदि कोई व्यक्ति ध्यान नहीं जानता तो वह परिपक्व व्यक्ति नहीं है। ध्यान जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। यह परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने और उपाधि प्राप्त करने से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। सही ध्यान को समझने का अर्थ ध्यान का अभ्यास करना नहीं है। आत्मिक विषयोंमें से किसी भी विषय का अभ्यास व्यर्थ है, निर्जीव है। सही ध्यान को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे चेतन मन को समस्त कार्यों के प्रति हममें सजगता हो और तभी हम पूर्ण रूप से होश (attention) में हो सकते हैं। लेकिन पूर्णतया होश तभी वहाँ हो सकता है जब कि किसी भी रूप में प्रतिरोध न कर रहे हों। आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्तियों को प्रतिरोध के माध्यम से (attention) होश में रहने की शिक्षा दी जाती है और इसीलिए हमारा होश सदैव आंशिक होता

है, पूर्ण नहीं। और यही कारण है कि सीखना हमारे लिए थकानेवाला, कष्टदायक और भयपूर्ण बन जाता है। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि हम इस "होश में रहना" शब्द के गहरे अर्थ को समझें जिसका अर्थ है–हम अपने ही मन की प्रक्रिया के प्रति सजग रहें। आप आत्मज्ञान के अभाव में पूर्णतया होश में नहीं रह सकते। इसीलिए एक सही विद्यालय में विद्यार्थियों को केवल विविध विषय ही नहीं पढ़ाए जाएँ अपितु उन्हें उनकी सोचने की प्रक्रिया के प्रति सचेत रह सकने में भी सहायता दी जाए। अपने आपको समझने से वह यह भी समझ सकेगा कि बिना प्रतिरोध के किस प्रकार होश में रहा जा सकता है; क्योंकि अपने आपको समझ लेने का मार्ग ही ध्यान का मार्ग है।

प्रश्नकर्ता : हम प्रश्न पूछने में इतनी दिलचस्पी क्यों लेते हैं ?

कृष्णमूर्ति : यह बहुत आसान है क्योंकि व्यक्ति बड़ा उत्सुक है। क्या आप क्रिकेट या फुटबॉल खेलना या पतंग उड़ाना सीखना नहीं चाहते ? जिस क्षण आप प्रश्न पूछना बंद कर देते हैं, त्यों ही आप मुर्दा हो जाते हैं, जैसा कि अक्सर वय-प्राप्त मनुष्यों के साथ होता है। उन्होंने खोज करना छोड़ दिया है; क्यों कि उनके मन ज्ञान से, दूसरों के कथनों से, बोझिल हैं। उन्होंने परम्परा स्वीकार कर ली है और वे उनमें ढल चुके हैं। जहाँ तक आप प्रश्न पूछते हैं वहाँ तक आप परम्परा से अलग हो रहे हैं, लेकिन ज्यों ही आप स्वीकार करना प्रारम्भ कर देते हैं त्यों ही आप मानसिक दृष्टि से मुर्दा होने लग जाते हैं। अतः आप आजीवन कोई वस्तु नहीं स्वीकारें; लेकिन आप खोजें, अन्वेषण करें। तब आपको ज्ञात होगा कि आपका मन सचमुच अद्भुत है; जिसका कभी अंत नहीं होता और ऐसा मन मृत्यु को नहीं प्राप्त होता।

२०. आंतरिक सौंदर्य

सरसों के पीले-पीले फूलों से भरे हरे-हरे खेतों और उनके बीच से गुजरती हुई छोटी सी नदी दिखने में कितनी लुभावनी लगती है। कल संध्या "कोई" इसे देखता रहा था और देहात के इस अद्‌भुत सौंदर्य और स्तब्धता का दर्शन करता हुआ कोई तो क्षण-क्षण अपने आपसे यह प्रश्न करता जाता है कि—यह सौन्दर्य क्या है ? जब हम किसी सुन्दर या किसी कुरूप वस्तु को देखते हैं तो तत्काल हममें आनन्द या दुख की प्रतिक्रिया होती है और हम यह कहकर कि—"यह सुन्दर है" या "यह कुरूप है" अपनी भावना व्यक्त करते हैं; लेकिन महत्त्व तो इस बात का है कि हम प्रत्येक वस्तु के प्रति सजग हों, हम सुन्दर और कुरूप दोनों के प्रति संवेदनक्षम हों, केवल सुख के प्रति या केवल दुख के प्रति ही नहीं ।

अब हम देखें कि यह सौन्दर्य क्या है ? यह एक अत्यन्त मौलिक प्रश्न है, इसे आप साधारण प्रश्न समझकर कहीं टाल न दें । सौन्दर्य को समझना यानी हृदय में करुणा की अनुभूति होना, जिसका आगमन तब होता है जब हमारा मन व हमारा हृदय किसी सुन्दर वस्तु के प्रति बिना किसी रुकावट के पूर्णतया संवादित होता है ताकि हम निश्चित रूप से अखंड आनन्द महसूस कर सकें । जीवन में ऐसा आनन्द बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और जबतक सौन्दर्य के प्रति हमारे हृदय में इस प्रकार की अनुभूति नहीं होगी तबतक हमारा जीवन अत्यन्त छिछला बना रहेगा । भले ही कोई व्यक्ति किसी महान सौंदर्य से सर्वदा घिरा रहे, चाहे उसके चारों ओर पर्वतों की श्रृंखला हो, चारों ओर खेत हों, सरिताएँ हों, लेकिन जब तक वह इन सबके प्रति सजग नहीं है तब तक ये सब उसके लिए निर्जीव हैं ।

आप सभी लड़के, लड़कियाँ और प्रौढ़ व्यक्ति भी यह प्रश्न अपने आपसे पूछें कि सौंदर्य क्या है ? स्वच्छता, पोशाक की सुबकता, मुसकुराहट, भव्यतामय हावभाव, चलने में लय, बालों में फूल, सुशील व्यवहार, बोलने में स्पष्टता, विचारशीलता, दूसरों का ख्याल रखना, नियमितता—ये सब सुन्दरता के अंग हैं लेकिन ये सभी ऊपरी हैं । क्या यही सब कुछ सुन्दरता है या सुन्दरता इससे कहीं ज्यादा गहरी है ?

आकृति और रचना में सौंदर्य है, जीवन में सौंदर्य है । क्या आपने कभी वृक्ष की उस सुन्दर आकृति का अवलोकन किया है जब वह नई-नई पत्तियों से पूरा भर गया हो अथवा उसकी उस समय की अद्‌भुत मृदुता को देखा है जब वह आसमान के सामने

एकदम नग्न खड़ा हो। ऐसी वस्तुओं को देखना सौंदर्यमय है। लेकिन ये सब एक अत्यन्त गंभीर वस्तु के बाहरी-बाहरी चिह्न मात्र हैं। अतः वह वस्तु आखिर क्या है जिसे हम सौंदर्य कहते हैं ?

हो सकता है कि आपका चेहरा सुन्दर हो, आपकी बनावट एकदम ठीक हो, आप बहुत ही सुन्दर पोशाक पहनते हों और आपके व्यवहार सुन्दर हों; आप खूबसूरत चित्रकारी या आप किसी प्राकृतिक दृश्य का सुन्दर वर्णन कर सकते हों लेकिन उस आंतरिक करुणा की भावना की अनुपस्थिति में ये समस्त बाह्य सुन्दरता के उपकरण हमें एक अत्यन्त छिछले और दूषित जीवन की ओर, जिसका कोई अर्थ नहीं है, अग्रसर करते हैं।

अत: हमें यह ज्ञात करना ही होगा कि वास्तव में सौंदर्य क्या है ? आप जरा खयाल दें, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि हम सुन्दरता के बाहरी रूपों की ओर बिलकुल ही ध्यान न दें। हम सभी अवश्य सुन्दर व्यवहार रक्खें, हमारा शरीर एकदम स्वच्छ हो, हम रुचिकर कपड़े पहनें, बिना दिखावे के हम अवश्य नियमित रहें, अपने कथन में स्पष्ट हों आदि। ये समस्त बातें आवश्यक हैं और ये एक आनन्दमय वातावरण की सृष्टि करती हैं, लेकिन इन सबका अपने आपमें कोई मूल्य नहीं है।

यह वह आंतरिक सौंदर्य है जो हममें भव्यता एवम् हमारे बाह्य आकार और कार्यों में अत्यधिक सरलता लाता है। और क्या है यह आंतरिक सौंदर्य जिसकी अनुपस्थिति में हमारा सम्पूर्ण जीवन ही छिछला है ? क्या आपने कभी इसके सम्बन्ध में सोचा है ? संभवतः नहीं सोचा है। आप तो अत्यन्त व्यस्त रहते हैं, आपका मन सदैव अध्ययन, खेल, संभाषण, हँसी-मजाक और एक दूसरे को चिढ़ाने में अत्यधिक व्यस्त रहता है। लेकिन आपको इस आंतरिक सौंदर्य के अन्वेषण में, जिसकी अनुपस्थिति में हमारे बाहरी रूप और कार्यों का बहुत ही क्षुद्र अर्थ है, सहयोग देना सही शिक्षा का प्रमुख कार्य है और यह सौंदर्य की गहरी अनुभूति आपके जीवन का एक विशेष अंग है।

क्या एक छिछला मन सौंदर्य का रसास्वादन कर सकता है ? यह भले ही सौंदर्य के सम्बंध में संभाषण कर ले, पर क्या एक सचमुच सुन्दर वस्तु को देखकर वह अपरिमित गूढ़ आनंद की अनुभूति कर सकेगा ? जब तक मन केवल अपने आपसे और अपनी ही क्रियाओं से सम्बंधित रहता है, तब तक वह सुन्दर नहीं है। ऐसी अवस्था में वह चाहे कुछ भी क्यों न करे, फिर भी वह कुरूप और सीमित रहेगा। अतः वह सौंदर्य को महसूस करने में असमर्थ होगा। इसके विपरीत जो मन स्वयम् से ही सम्बंधित नहीं है, जो महत्त्वाकांक्षा से मुक्त है, जो अपनी इच्छाओं से बंधा नहीं है

अथवा सफलता के पीछे पीछे नहीं भागा जा रहा है, ऐसा मन छिछला मन नहीं है; यह करुणा में प्रस्फुटित होता है। क्या आप समझ रहे हैं? यही वह आंतरिक करुणा है, जो उस तथाकथित कुरूप चेहरे को भी सुन्दरता प्रदान करती है। जब इस आंतरिक सौंदर्य का आगमन होता है तब कुरूप चेहरा भी रूपांतरित हो जाता है क्योंकि आंतरिक करुणा सचमुच एक गहरी धार्मिक अनुभूति है।

क्या आप जानते हैं कि धार्मिक होने के क्या मानी हैं? इसका मंदिर की घंटियों से, यद्यपि वे दूर-दूर तक मधुर सुनाई देती हैं, पूजाओं से, पुजारी द्वारा किए जानेवाले क्रियाकांडों से और अन्य सारी मूर्खतापूर्ण शास्त्रोक्त विधियों से कतई संबंध नहीं है। धार्मिक होने का अर्थ है सत्य के प्रति ग्रहणशील होना। आप समग्र रूप से अपने शरीर, अपने मन और अपने हृदय के साथ सौंदर्य और कुरूपता दोनों के प्रति संवेदनक्षम हों। एक खूंटे पर बँधे हुए गधे के प्रति, इस शहर की गरीबी और गंदगी के प्रति, हँसना और आँसुओं के प्रति, आपके आसपास की प्रत्येक वस्तु के प्रति संवेदनक्षम हों। इसी संवेदनक्षमता से हमारे संपूर्ण जीवन में करुणा और प्रेम का स्फुरण होता है और इस संवेदनक्षमता की अनुपस्थिति में सौंदर्य ही नहीं है, भले ही आपमें चतुराई हो, आप बहुत अच्छी पोशाक पहनते हों, बहुमूल्य मोटर में सवारी करते हो और अत्यंत साफ-सुथरे हों।

प्रेम कुछ अद्भुत ही वस्तु है। आप यदि केवल अपने ही बारे में सोचते रहते हैं तो आप प्रेम नहीं कर सकते—इसका यह अर्थ नहीं कि आप हर समय किसी अन्य व्यक्ति के ही संबंध में सोचते रहें। प्रेम तो बस "है", इसका कोई उद्देश्य नहीं और यह किसी के लिये नहीं। वह मन जो प्रेम करता है, सचमुच धार्मिक मन है; क्यों कि यह वास्तविकता, सत्य, परमात्मा की चैतन्यता के साथ है और केवल ऐसा ही मन जान सकता है कि सौंदर्य क्या है? वह मन, जो किसी दर्शन से नहीं बँधा हुआ है, जो किसी तरीके या किसी विश्वास से नहीं जकड़ा हुआ है, जो अपनी ही महत्त्वाकांक्षा द्वारा भगाया नहीं जा रहा है, ऐसा ही मन संवेदनक्षम होता है, सचेत होता है, सावधान होता है—ऐसे ही मन में सौंदर्य का वास होता है।

अतः यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आप बचपन से ही स्वच्छ और सुबक रहना सीखें, इतमीनान के साथ शाँत बैठना, अच्छे आचार रखना, विचारशील और नियमित होना सीखें। लेकिन ये समस्त बातें यद्यपि आवश्यक हैं, फिर भी छिछली हैं और यदि आप बगैर गहन वस्तु को समझे, इन छिछली बातों का ही अभ्यास करते रहेंगे तो आप कभी भी सौंदर्य के अर्थ को नहीं जान पाएँगे। वह मन जो किसी

देश या किसी समुदाय या किसी समाज से संबंधित नहीं है, जो अधिकार नहीं चाहता, जो महत्त्वाकांक्षा द्वारा उत्साहित और भय द्वारा बाधित नहीं किया जाता, वही मन सदैव प्रेम और करुणा में पुष्पित होता है। क्योंकि तब यह वास्तविकता की गतिशीलता के साथ गतिमान होता है और जानता है कि सौंदर्य क्या है। चूंकि यह कुरूपता और सौंदर्य दोनों ही के प्रति ग्रहणशील रहता है, अतः यह एक सृजनशील मन होता है और यह अनन्त बोधक्षमता के योग्य होता है।

प्रश्नकर्ता : यदि मैं बचपन से ही एक महत्त्वाकांक्षा रक्खूं तो क्या मैं बड़ा होने पर इसे पूरा कर सकूंगा ?

कृष्णमूर्ति : बचपन की महत्त्वाकांक्षा प्रायः ज्यादा दिन टिकती नहीं है। एक छोटा बच्चा एक तकनीशीयन बनने की इच्छा कर सकता है या वह जब एक वायुयान को तेजी से आसमान में उड़ते हुए देखता है तब वह भी वायुयान चालक बनना चाहता है अथवा कभी जब वह किसी राजकीय नेता का भाषण सुनता है तो वह भी नेता बनने का अथवा किसी संन्यासी को देखकर सन्यासी बनने का निश्चय कर लेता है। एक लड़की अनेक बच्चों की माँ बनने की या किसी धनी व्यक्ति की पत्नी बनकर किसी विशाल भवन में रहने की इच्छा कर सकती है अथवा वह चित्र बनाने या कविताएँ लिखने की उत्कट अभिलाषा कर सकती है।

अब हम देखें कि क्या बचपन के स्वप्न पूरे होते हैं और स्वप्न पूरे होना क्या अच्छी बात है ? किसी भी इच्छा को पूरी करने की चाह, फिर चाहे वह कौन-सी भी इच्छा क्यों न हो, हमेशा दुख लाती है। संभवत आपने अभी तक यह महसूस नहीं किया होगा लेकिन जब आप बड़े होंगे तब आपको यह ज्ञात होगा। दुख इच्छा की छाया है। यदि मैं धनी और प्रसिद्ध होना चाहूँ तब मैं अपनी मंजिल को पाने के लिए संघर्ष करूँगा, दूसरों को अपने रास्ते से एक ओर ढकेलूंगा, उनके साथ दुश्मनी पैदा करूँगा। इस प्रकार यदि मैंने अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त भी कर ली, फिर भी जल्दी या देर से कुछ घटना निश्चित घटती है। संभव है, तब मैं बीमार पड़ जाता हूँ या उस इच्छापूर्ति में ही कुछ अधिक पाने की तीव्र लालसा करने लगता हूँ। इस प्रकार सदैव कोने से मृत्यु झाँकती रहती है। महत्त्वाकांक्षा, इच्छा और सफलता निश्चित रूप से निराशा और दुख की ओर ले जाते हैं। आप इस प्रक्रिया को स्वयम् देख सकते हैं। अपने आसपास के उन बड़े व्यक्तियों का अध्ययन करें जो प्रसिद्ध हैं और देश में महान् समझे जाते हैं, जिन्होंने अपने लिए नाम कमाया है, जिनके पास शक्ति है। यदि आप

उन व्यक्तियों के चेहरों को देखें तो वे कितने उदास, कितने मोटे और कितने घमण्डी दिखाई देते हैं। उनके चेहरों पर कुरूप रेखाएँ हैं, उनमें कभी करुणा का विकास नहीं हुआ है क्योंकि उनके हृदयों में पीड़ा है।

क्या आपके लिए इस विश्व में महत्त्वाकांक्षा के बिना—"आप जो हैं" उसी रूप में जीना सम्भव नहीं है? यदि आप 'जो हैं' उसे बिना परिवर्तित करने के प्रयत्न किए समझना प्रारम्भ करें तब 'जो हैं' उसका संक्रमण हो जाता है। मैं सोचता हूँ, कोई व्यक्ति इस विश्व में बिना नाम के अनामिक रूप से, रह सकता है; वह लोगों के द्वारा बिना जाने, बिना प्रसिद्ध हुए, बिना महत्त्वाकांक्षी और बिना कठोर बने रह सकता है। कोई व्यक्ति इस विश्व में अतिशय आनंद के साथ रह सकता है यदि वह 'स्व' को महत्व न दे और इसके लिए उसे शिक्षित करना सही शिक्षा का प्रधान अंग है।

पूरा का पूरा विश्व ही सफलता की पूजा किये जा रहा है। आप ऐसी कहानियाँ सुनते हैं कि किस प्रकार एक गरीब बच्चा रात-रातभर अध्ययन करता था और अन्त में वह न्यायाधीश बन गया, या किस प्रकार समाचारपत्र बेचते-बेचते वह करोड़पति बन गया। इस प्रकार आपको सफलता के गौरव-गान के घूंट से तृप्त किया जाता है। महान् सफलता की प्राप्ति के बाद महान् दुख का भी आगमन होता है, लेकिन हममें से अधिकांश कुछ प्राप्त करने की इच्छा से ही बँधे होते हैं। इस दुख को समझने और इसे समाप्त करने की अपेक्षा हम सफलता को ही अधिक महत्व देते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप जो कुछ कह रहे हैं उसे वर्तमान सामाजिक अवस्था में आचरण में लाना क्या अत्यन्त कठिन नहीं है?

कृष्णमूर्ति : जब आप किसी वस्तु के सम्बन्ध में दृढ़ता से महसूस करते हैं तब क्या आपको उसे आचरण में लाने में बड़ी कठिनाई महसूस होती है? जब आप क्रिकेट खेलने को अत्यन्त उत्सुक हैं तब आप उसे अपनी समग्रता के साथ खेल लेते हैं; क्या नहीं खेलते हैं? तब क्या आप यह कहते हैं कि "यह अत्यंत कठिन है?" हाँ, जब आप किसी वस्तु के सत्य को पूरी दृढ़ता से महसूस नहीं करते हैं तभी आप उसे आचरण में लाने में कठिनाई महसूस करते हैं; क्यों कि उसके प्रति आपका प्रेम नहीं होता है। जिसे आप सचमुच प्रेम करते हैं उसे आप उत्सुकता से कर भी लेते हैं; क्यों कि उसमें एक आनंद होता है। तब आप इस बात की चिन्ता ही नहीं करते कि आपका समाज या आपके माता-पिता इसके सम्बन्ध में क्या कहेंगे। लेकिन यदि आपको गहराई से किसी वस्तु की प्रतीति नहीं होती है, यदि आप इसे करने में, जिसे आप सही सोचते हैं. पूर्ण स्वतन्त्रता और आनंद की अनुभूति नहीं करते हैं, तब यह निश्चित है

कि उसमें आपकी दिलचस्पी झूठी है, गलत है और इसीलिए वह कार्य आपके लिए पहाड़ बन जाता है और तब आप कहते हैं—इसे आचरण में लाना अत्यन्त कठिन है ।

जिस कार्य को आप प्रेम से कर रहे होते हैं उसमें निश्चित है कि कठिनाइयाँ आएँगी ही, लेकिन उनका आपके लिए कोई अर्थ नहीं है, क्यों कि वे आपके जीवन का ही अंश हैं । आप देखते हैं कि हमने कठिनाइयों पर एक दर्शन ही गढ़ डाला है । हमने प्रयत्न, संघर्ष और प्रतिरोध को सद्‌गुण मान लिया है ।

मैं प्रयत्न और संघर्ष के माध्यम से आनेवाली कुशलता की चर्चा नहीं कर रहा हूँ । मैं तो किसी कार्य को प्रेम से करने के सम्बन्ध में कह रहा हूँ । जब तक आप में यह प्रेम नहीं है, तब तक आप समाज के खिलाफ संघर्ष न करें, मृत परम्पराओं का सामना न करें, क्यों कि तब आपके संघर्ष का कुछ भी अर्थ न होगा, तब आप समाज में और अधिक बुराइयाँ ही पैदा करेंगे । इसके विपरीत यदि आप सत्य को गहराई से महसूस करते हैं और आप इसके लिए अकेले खड़े हो जाते हैं, तब प्रेम से उत्पन्न हुआ आपका यह कार्य अद्‌भुत रूप से अर्थमय होगा, इसमें जीवंतता होगी, इसमें सौन्दर्य होगा ।

आप जानते हैं कि महान् वस्तुओं का प्रादुर्भाव अत्यंत स्तब्ध मन में ही हुआ है और इस शून्य मन का आगमन किसी प्रयत्न, किसी नियन्त्रण या किसी अनुशासन के माध्यम से नहीं हो सकता ।

प्रश्नकर्ता : आमूल परिवर्तन से आपका क्या अर्थ है और कोई व्यक्ति अपने जीवन में उसका किस प्रकार अनुभव करें ।

कृष्णमूर्ति : क्या आप सोचते हैं कि आपके प्रयत्नों से आमूल परिवर्तन हो सकता है ? क्या आप जानते हैं कि परिवर्तन क्या है ? माना कि आप महत्त्वाकांक्षी हैं और आप इस महत्त्वाकांक्षा में निहित समस्त वस्तुओं को— आशा, सन्तोष, निराशा, क्रूरता, दुख, अविचारशीलता, लोभ, ईर्ष्या, प्रेम का सम्पूर्ण अभाव—देखना आरम्भ कर देते हैं । यह सब देखते हुए क्या करेंगे ? महत्त्वाकांक्षा को परिवर्तित करने या उसका रूपांतर करने के लिए प्रयत्न करना महत्वाकांक्षा का ही दूसरा रूप होगा; क्या नहीं होगा ? इसका अर्थ ही यह हुआ कि आप कुछ अन्य बनने की इच्छा कर रहे हैं । आप किसी एक इच्छा को अस्वीकार भले कर सकते हैं, परन्तु उस अस्वीकृत की प्रक्रिया में ही आप किसी दूसरी इच्छा का निर्माण कर लेते हैं, जो अपने साथ दुख लाती है ।

यदि आप देखते हैं कि महत्वाकांक्षा दुःख लाती है और इस महत्वाकांक्षा को समाप्त करने की इच्छा भी दुख लाती है, तब यदि आप इस सत्य को अपने लिए सुस्पष्ट रूप में देख लेते हैं और स्वयम् कोई प्रयत्न न करते हुए इस सत्य को ही अपना कार्य करने देते हैं, तब वह सत्य ही हमारे मन में एक आमूल परिवर्तन, एक पूर्ण क्रांति लाता है, लेकिन इसके लिए अत्यधिक सावधानी, सूक्ष्मता और अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है।

जब आपको यह कहा जाता है कि "आप अच्छे बनें", "आप प्रेम करें", तब प्राय: क्या घटित होता है ? तब आप कहते हैं, "मुझे अच्छा बनने का अभ्यास करना चाहिए, मुझे अपने माता-पिता को, अपने सेवक को, गधे को, प्रत्येक वस्तु को प्रेम करना चाहिए।" इसका अर्थ यह हुआ कि आप प्रेम के दिखावे के लिए प्रयत्न कर रहे हैं; यह प्रेम अत्यन्त बनावटी और अत्यन्त क्षुद्र बन जाता है। ऐसा प्रेम हमें उन स्वदेशाभिमानी व्यक्तियों में देखने को मिलता है जो सदैव बन्धुता का अभ्यास कर रहे हैं, जो केवल मूर्खता है, जड़ता है। यह हमारी वह लालची वृत्ति है जो इनका अभ्यास कराती है। लेकिन यदि आप राष्ट्रीयता के लालच के सत्य का निरीक्षण करते हैं और उस सत्य को ही अपना कार्य करने देते हैं, तब आप महसूस करेंगे कि आप बिना प्रयत्नों के ही बन्धुता से रह रहे हैं। वह मन जो प्रेम का अभ्यास करता है, प्रेम नहीं कर सकता। लेकिन यदि आप प्रेम करते हैं और इसमें हस्तक्षेप नहीं करते हैं, तब प्रेम स्वयम् अपना कार्य करेगा।

प्रश्नकर्ता : श्रीमानजी, यह आत्मविस्तार क्या है ?

कृष्णमूर्ति : यदि आप राज्यपाल या व्याख्याता बनना चाहते हैं, यदि आप किसी बड़े आदमी या किसी नायक का अनुकरण करना चाहते हैं, यदि आप अपने गुरु या संन्यासी का अनुगमन करना चाहते हैं तब यह बनने, अनुकरण करने और अनुगमन करने की प्रक्रिया ही आत्मविस्तार का एकरूप होगी। एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति, एक वह व्यक्ति जो महान् बनना चाहता है, जो कुछ प्राप्त करना चाहता है—वह यह कह सकता है कि "मैं यह शांति के लिए या देश के कल्याण के लिए कर रहा हूँ", लेकिन ये सब आत्मविस्तार के पोषक ही हैं।

प्रश्नकर्ता : धनी व्यक्ति घमंडी क्यों होते हैं ?

कृष्णमूर्ति : एक छोटा-सा बालक पूछ रहा है कि धनी व्यक्ति घमंडी क्यों होते हैं ? क्या आपने यह सचमुच महसूस किया है कि धनी आदमी घमंडी होते हैं ?

और क्या गरीब घमंडी नहीं होते ? हम सभी अपने में एक विशेष प्रकार का अभिमान रखते हैं, जिसे हम विभिन्न तरीकों से दिखाते रहते हैं। अमीर, गरीब, शिक्षित, शक्तिशाली, संन्यासी, नेता आदि व्यक्तियों में से प्रत्येक व्यक्ति ने यह भावना बना रखी है कि 'वह कहीं पहुँच गया है,' 'उसने सफलता उपलब्ध कर ली है', 'वह कुछ है' 'वह कुछ करने की हिम्मत रखता है'। लेकिन वह व्यक्ति जो कुछ भी नहीं है, जो कुछ भी बनना नहीं चाहता है, जो बस, 'स्वयम्' है, और 'स्वयम्' को जानता है, ऐसा ही व्यक्ति अभिमान, गर्व से मुक्त हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : हम क्यों हमेशा "मैं" और "मेरे" में बँधे रहते हैं और हम क्यों इसी अवस्था में उत्पन्न हुई समस्याएँ आपके समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप सचमुच यह ज्ञात करना चाहते हैं या किसी व्यक्तिने आपको यह प्रश्न पूछने के लिए उकसाया है ? यह 'मैं' और 'मेरे' की एक ऐसी समस्या है जिसमें हम सभी समाविष्ट हैं। यही सचमुच हमारी एक मात्र समस्या है और हम प्रतिदिन इसी के सम्बन्ध में विविध रूपों में चर्चा किए जा रहे हैं—कभी सफलता के रूप में तो कभी निराशा और दुख के रूप में। चिरन्तन आनन्द की अभिलाषा, मृत्यु का अथवा सम्पत्ति के खो जाने का भय, चापलूसी का आनन्द व अपमान का क्रोध, हमारे भिन्न-भिन्न ईश्वर व अलग-अलग पंथ के झगड़े, इन्हीं वस्तुओं में हमारा मन अविराम व्यस्त है, जैसे कि इसका दूसरा कोई कार्य ही न हो। यह भले ही शांति की खोज का बहाना बना ले, भले ही यह बन्धुता, भलमनसाहत व प्रेम का अनुभव कर ले, लेकिन इन शब्दों के पर्दे के पीछे वह सतत 'मैं' और 'मेरे' के संघर्ष में फँसा हुआ है और इसीलिए यह समस्याओं का निर्माण करता है, जो आप प्रत्येक प्रातः अलग-अलग शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : औरतें अपने आपको ज्यादा क्यों सजाती हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आपने यह प्रश्न उनसे नहीं पूछा है ? क्या आपने कभी पक्षियों का निरीक्षण किया है ? प्रायः नर-पक्षियों में ज्यादा रंग और ज्यादा प्रफुल्लता होती है। शारीरिक दृष्टि से आकर्षक होना लैंगिक सम्बन्धों का एक भाग है ताकि बच्चे पैदा किए जा सकें। यही जीवन है। और बच्चे भी यही करते हैं। जब वे बड़े होते हैं तब वे एक विशेष शैली से अपने बाल सँवारते हैं, सुन्दर टोपी लगाते हैं, आकर्षक कपड़े पहनते हैं, यह भी वही बात है। हम सभी दिखावा करते हैं—धनी

मनुष्य अपनी बहुमूल्य मोटर में सवारी कर, लड़की अपने आपको ज्यादा सुन्दर दिखाकर, लड़का अपने आपको अधिक प्रफुल्ल साबित कर। ये सभी यह दिखाना चाहते हैं कि 'वे कुछ हैं'। यह एक विचित्र संसार है, क्या नहीं है? आप देखते हैं कि कुमुदिनी या गुलाब कभी दिखावा नहीं करते हैं और इनका सौंदर्य वैसा ही होता है जैसे कि वे वास्तव में होते हैं।

२१. सीखना

"सी ख ना क्या है ?" क्या आप इस विषय की खोज में दिलचस्पी रखते हैं ? आप सीखने के लिए ही तो विद्यालय जाते हैं। आखिर यह 'सीखना' क्या है ? क्या आपने कभी इसके संबंध में सोचा है ? आप कैसे सीखते हैं, आप क्यों सीखते हैं और आप क्या सीखते हैं ? गहराई में यह 'सीखना' क्या है, इसका महत्त्व क्या है ? आपको पढ़ना-लिखना और विविध विषयों का अध्ययन करना होता है, आपको कुशलता संपादन करना व किसी व्यवसाय विशेष के लिए तैयार होना पड़ता है; ताकि आप अपना जीवन-निर्वाह कर सकें। सीखने में इन समस्त विषयों का समावेश होता है—और यहीं हममें से अधिकांश व्यक्ति आकर रुक जाते हैं। ज्यों ही हम कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेते हैं, कोई नौकरी या व्यवसाय प्राप्त कर लेते हैं, त्यों ही हम यह सीखना भूलने लगते है।

परन्तु क्या सीखने का कभी अंत हो सकता है ? हमारा खयाल है कि पुस्तकों से सीखना और अनुभवों से सीखना ये दो पृथक-पृथक वस्तुएँ हैं; क्या नहीं हैं ? उदाहरण के लिए हम पुस्तकों से सीखते हैं कि व्यक्तियों ने विज्ञान के संबंध में क्या लिखा है, तब हम स्वयं इनका परीक्षण करते हैं और इन परीक्षणों के माध्यम से हम सतत सीखते रहते हैं। और दूसरे हम अनुभवों से भी सीखते हैं - कम से कम हम कहते यही हैं। लेकिन आखिरकार जीवन की अद्भुत गहराइयों में गोता लगाने के लिए और यह खोजने के लिए कि ईश्वर क्या है, सत्य क्या है, इसके लिये स्वतंत्रता का होना अनिवार्य है; और इन अनुभवों के माध्यम से सीखने की क्रिया में क्या यह स्वतंत्रता संभव है, जो खोज के लिए आवश्यक है ?

क्या आपने कभी सोचा है कि यह अनुभव क्या है ? यह किसी चुनौती का उत्तर देने की एक भावना है; क्या नहीं है ? चुनौती का उत्तर देना ही अनुभव है। और क्या आप अनुभव के माध्यम से सीखते हैं ? जब आप किसी चुनौती का, किसी उत्तेजना का, उत्तर देते हैं, तो आपका यह उत्तर आपके संस्कारों, आपकी शिक्षा, आपकी सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि पर आधारित रहता है। प्रत्येक चुनौती का उत्तर आप अपने उन संस्कारों के माध्यम से देते हैं जो आप पर हिंदू, ईसाई, साम्यवादी या और कुछ होने के नाते पड़े हुए होते हैं। अतः जब

तक आप अपनी पृष्ठभूमि से पृथक् नहीं हो जाते हैं, तब तक किसी भी चुनौती के प्रति दिया गया आपका उत्तर या तो आपकी पृष्ठभूमि को और अधिक सुदृढ़ करता है अथवा उसमें थोड़ा सुधार मात्र ला देता है। इस प्रकार आप वास्तव में सत्य या ईश्वर को समझने के लिए, उसकी खोज तथा उसके अन्वेषण के लिए, कभी स्वतंत्र ही न हो सकेंगे।

अतः अनुभव हमारे मन को मुक्त नहीं करते और इन अनुभवों के माध्यम से सीखने का अर्थ होगा पुराने संस्कारों के आधार पर नये नमूनों का निर्माण करना। मैं सोचता हूँ कि इसे समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि इस आशा के साथ कि हम अनुभवों से सीखेंगे, हम इनसे अधिकाधिक घिरते जाते हैं। इनसे हम जो कुछ सीखते हैं वह हमारी पृष्ठभूमि का ही दूसरा रूप है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि अनुभवों के माध्यम से जो हम सीखते हैं, उससे कभी हमारी मुक्ति नहीं होती, क्यों कि वह तो केवल इन संस्कारों का ही रूपांतर है।

अब हम देखें कि आखिर यह सीखना क्या है? आपका सीखना पढ़ने-लिखने, शांत बैठने, आज्ञा मानने या नहीं मानने से प्रारंभ होता है। आप भिन्न-भिन्न देशों का इतिहास पढ़ते हैं, आप भाषाएँ पढ़ते हैं; विचार-विनिमय के लिए इसकी आवश्यकता भी है। आप सीखते हैं कि आप कैसे आजीविका कमायें, खेतों को कैसे समृद्ध करें आदि। लेकिन क्या सीखने की एक ऐसी भी अवस्था है, जहाँ हमारा मन समस्त संस्कारों से मुक्त हो—एक ऐसी अवस्था जिसमें हमारी खोज ही समाप्त हो गई हो? क्या आप मेरे प्रश्न को समझ रहे हैं?

जिसे हम सीखना कहते हैं वह सुधार, प्रतिरोध और पराधीनता की एक सतत प्रक्रिया है; हम या तो किसी वस्तु को टालने के लिए सीखते हैं या किसी वस्तु को पाने के लिए। अब क्या एक ऐसी भी कोई अवस्था है, जिसमें हमारा मन इस सीखने की क्रिया का निमित्त न बने, अपितु "होने" की स्थिति में रहे। क्या आप यह अन्तर समझ रहे हैं? जहाँ तक हम प्राप्त कर रहे हैं, कुछ पा रहे हैं, टाल रहे हैं, वहाँ तक हमारा मन सीखेगा निश्चित; पर इस प्रकार के सीखने में सदैव अतिशय तनाव और अत्यधिक प्रतिरोध रहेगा। सीखने के लिए आपको अपना मन एकाग्र करना होगा। क्या आप जानते हैं, यह एकाग्रता क्या है?

क्या आपने कभी निरीक्षण किया है कि जब आप किसी वस्तु पर एकाग्रचित्त होते हैं तब क्या घटित होता है? जब आपको किसी ऐसी पुस्तक का अध्ययन करना होता है जिसका कि आप अध्ययन नहीं करना चाहते, या मान लीजिए कि आप उसका अध्ययन करना भी चाहते हैं तो भी आपको अन्य वस्तुओं का प्रतिरोध करना होगा, और

अन्य चीजों को एक ओर रख देना होगा। तब आपको खिड़की से बाहर देखने की या किसी व्यक्ति से बातचीत करने को इच्छा का प्रतिकार करना होगा ताकि आप एकाग्रता रख सकें। अतः एकाग्रता में सदैव प्रयत्न मौजूद रहता है; रहता है न ? एकाग्रता में सदैव एक उत्तेजना, एक प्रलोभन, एक उद्देश्य, एक प्रयत्न रहता है ताकि हम कुछ सीख सकें, कुछ अर्जित कर सकें; और हमारा संपूर्ण जीवन ही इस प्रकार के प्रयत्नों की एक शृंखला है, एक तनावपूर्ण अवस्था है जिसमें हम हमेशा सीखने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। लेकिन यदि हममें कतई तनाव न हो, संग्रह न हो, ज्ञान का जमाव न हो, तब क्या हमारा मन बहुत ज्यादा गहराई और तीव्रता से सीखने में समर्थ न हो सकेगा ? और तब यह मन सत्य, ईश्वर, सौंदर्य की खोज करने का साधन बन जाएगा। दूसरे शब्दों में यह सचमुच किसी भी सत्ता की शरण नहीं लेगा, फिर वह सत्ता भले ही ज्ञान की हो, समाज की हो, धर्म की हो, संस्कृति की हो या संस्कारों की।

आप देखते हैं कि जब हमारा मन ज्ञान के बोझ से मुक्त हो जाता है, तभी वह सत्य की खोज कर सकता है; और खोज की ऐसी प्रक्रिया में संग्रह नहीं होता है; क्या होता है ? जिस क्षण आप अपने सीखे हुए या अनुभव किए हुए ज्ञान का संग्रह करना प्रारंभ कर देते हैं, उसी क्षण आप एक ठहराव बना लेते हैं जो आपके मन को बाँध लेता है और उसे बढ़ने से रोक देता है। परंतु खोज की प्रक्रिया में हमारा मन, वह सब जो उसने सीखा है, प्रतिदिन बिखेरता चला जाता है ताकि वह सदैव ताज़ा रह सके, कल के अनुभवों से मलिन न हो सके। सत्य जीवंत है, वह स्थिर नहीं है, अतः उसकी खोज करनेवाले मन को भी जीवंत रहना होगा, उसे ज्ञान और अनुभव के बोझ से मुक्त होना होगा। केवल तभी उस अवस्था का आगमन हो सकता है, जिसमें सत्य का प्रादुर्भाव होता है।

भले ही यह सब शाब्दिक दृष्टि से आपको बहुत कठिन जान पड़े लेकिन यदि इसमें आप अपना पूरा मन लगा देते हैं तो यह आसान बन जाएगा। जीवन को गहन वस्तुओं की खोज के लिए मन का स्वतंत्र होना अनिवार्य है; लेकिन जिस क्षण आप सीखते हैं और उसी को यदि आप आगे की खोज का आधार बनाते हैं तो आपका मन मुक्त नहीं रह जाता और आपकी खोज रुक जाती है।

प्रश्नकर्ता : जो वस्तु हमें सीखने में कठिन लगती है, उसे हम इतनी आसानी से भूल क्यों जाते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप महज़ इसलिए सीख रहे हैं कि परिस्थितियाँ आपको सीखने के लिए विवश कर रही हैं ? यदि आप भौतिक शास्त्र और गणित

का अध्ययन कर रहे हैं जब कि वास्तव में आप वकील बनना चाहते हैं, तब आप क्या भौतिक शास्त्र और गणित शीघ्र ही भूल नहीं जाएँगे, भले ही आप इन्हें भूलना नहीं चाहते हों ? क्या आप तब वास्तव में सीख पाते हैं जब आपके सीखने के पीछे कुछ प्रलोभन होता है ? आप कोई परीक्षा सिर्फ इसलिए उत्तीर्ण करते हैं कि आप नौकरी प्राप्त कर सकें, आपका विवाह हो सके। कुछ सीखने के लिए या एकाग्रता के अभ्यास के लिए भले ही आप कुछ प्रयत्न कर लें, लेकिन एक बार आपने परीक्षा उत्तीर्ण कर ली कि शीघ्र ही आपने जो कुछ सीखा है, उसे भूलने लग जाते हैं; क्या नहीं भूलने लगते हैं ? जब सीखना केवल कहीं पहुँचने का साधन है तब उस स्थान पर पहुँचने पर, जहाँ कि आप पहुँचना चाहते थे, आप उस साधन को विस्मृत कर देते हैं और निश्चित रूप से यह कतई सीखना नहीं है। अतएव सीखने के पीछे कोई उत्तेजना न हो, कोई प्रलोभन न हो; बल्कि आप कोई कार्य इसलिए करते हैं कि उसके प्रति आपका प्रेम है।

प्रश्नकर्ता : 'प्रगति' शब्द का क्या अर्थ है ?

कृष्णमूर्ति : अधिकांश व्यक्तियों की तरह आप भी आदर्श रखते हैं; क्या नहीं रखते हैं ? और ये आदर्श वास्तविकता नहीं हैं, सत्य नहीं हैं, ये "क्या होना चाहिए" के रूप हैं, ये भविष्य से सम्बन्धित हैं। अब मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप आदर्श को छोड़कर उसके प्रति सजग हों जो कि आप वास्तव में हैं। "जो होना चाहिए" उसकी ओर न भागें; परन्तु "जो हैं" उसे समझें। आपके लिए आपको "कैसा होना चाहिए" इसकी अपेक्षा आप "जो हैं" उसे समझना अत्यंत आवश्यक है। क्यों ? क्यों कि आप "जो हैं" उसे समझने से आपमें सहज संक्रमण (Transformation) की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसके विपरीत जब आप "आपको जैसा होना चाहिए" वैसा बनने में लगे रहते हैं तब आपमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो पाता। केवल वे ही पुरानी वस्तुएँ भिन्न-भिन्न रूपों में सतत चलती रहती हैं। यदि हमारा मन यह देखकर कि 'यह मूर्खता है', इसे बुद्धिमत्ता में परिवर्तित करने के लिए प्रयत्न करता है जो कि "क्या होना चाहिए" का ही एक रूप है, तो यह प्रयत्न भी एक मूर्खता होगी। इसका न तो कुछ अर्थ ही होगा और न तो यह सत्यता ही होगी। यह केवल अपनी ही कल्पना की एक दौड़ मात्र होगी जो वास्तविकता को समझने से टालने का एक उपाय मात्र है। जहाँ तक मन अपनी मूर्खता को किसी दूसरी वस्तु में परिवर्तित करने का प्रयत्न कर रहा है, वहाँ तक वह मूर्ख ही बना रहता है। लेकिन यदि मन कहता है, "मैं यह स्पष्ट महसूस कर रहा हूँ कि मैं नासमझ हूँ, और मैं समझना

चाहता हूँ कि यह नासमझी आखिर क्या है, अतः मैं इसकी गहराई में उतरूँगा और देखूँगा कि इसका जन्म किस प्रकार होता है'' तब यह खोज की प्रक्रिया ही एक आमूल परिवर्तन लाती है।

'प्रगति' शब्द का क्या अर्थ है ? क्या प्रगति नाम की कोई वस्तु भी है ? आप एक बैलगाड़ी को दो मील प्रति घंटे की चाल से चलते हुए देखते हैं और दूसरी ओर एक अद्भुत वस्तु वायुयान को छः सौ मील प्रति घंटा या इससे भी ज्यादा गति से यात्रा करते हुए देखते हैं। यह प्रगति है; क्या नहीं है ? तकनीकी प्रगति—यातायात के अपेक्षाकृत अच्छे साधन, अच्छा स्वास्थ्य, यह सब प्रगति है। लेकिन क्या कोई एक दूसरे प्रकार की प्रगति भी है ? क्या आत्मिक प्रगति का विचार सचमुच आत्मिक है या यह केवल मन का एक आविष्कार मात्र है ?

आप जानते हैं कि मूलभूत प्रश्न का पूछना अत्यन्त महत्वपूर्ण है लेकिन दुर्भाग्य से हम इन मूलभूत प्रश्नों के अत्यन्त आसान उत्तर प्राप्त कर लेते हैं और समझ लेते हैं कि इन आसान उत्तरों से हमारी सन्देह-निवृत्ति हो चुकी है, परन्तु होती नहीं। हमें एक मौलिक प्रश्न पूछना चाहिये और फिर उस प्रश्न को अपना कार्य करने देना चाहिए। उसे आप अपने अन्तस्थल में कार्य करने दें और सत्य की खोज करने दें।

प्रगति में समय का समावेश है। आखिर बैलगाड़ी से इस विमान तक आते-आते हमने शताब्दियाँ व्यतीत कर दी हैं। इसी प्रकार आप सोचते हैं कि समय के माध्यम से हम ईश्वर या सत्य की भी खोज कर सकते हैं। हम यहाँ हैं और हमारा सोचना है कि चूंकि ईश्वर वहाँ है, या बहुत दूर है, अतः इस फासले को, इस बीच के अवकाश को, पार करने के लिए समय की आवश्यकता है, लेकिन न तो ईश्वर स्थिर है, न सत्य स्थिर है और न तो हम ही स्थिर हैं। इस यात्रा को प्रारम्भ करने का कोई निश्चित बिंदु नहीं है और न इसकी समाप्ति का ही कोई निश्चित स्थान है, जिसकी ओर हम आगे बढ़ सकें। हम हमारी मानसिक सुरक्षा के लिए इस विचार से चिपके रहते हैं कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति में वह बिंदु विद्यमान है और वह सत्य भी स्थिर है, लेकिन यह सब भ्रम है, असत्य है। ज्यों ही हम आंतरिक या आत्मिक प्रगति के लिए, इसके विकास के लिए, समय की माँग करते हैं त्यों ही जो कुछ हम कर रहे होते हैं वह आत्मिक ही नहीं रह जाता क्यों कि सत्य समय से परे है। वही मन, जो समय से बंधा हुआ है, सत्य की खोज के लिए समय की माँग करता है। परन्तु सत्य समय के अतीत है, इसका कोई निश्चित बिंदु नहीं है। मन जब अपने ज्ञात और अज्ञात वाली संग्रह की गई चीजों से अनिवार्य रूप से मुक्त हो जायेगा तभी वह सत्य और ईश्वर की खोज में समर्थ हो सकेगा।

प्रश्नकर्ता : जब हम पक्षी के निकट जाते हैं तब वे उड़ क्यों जाते हैं ?

कृष्णमूर्ति : कितना अच्छा होता यदि हमारे नज़दीक जानेपर भी पक्षी नहीं उड़ते । यदि आप उन्हें स्पर्श कर पाते, उनसे मित्रता कर पाते, तो यह कितना सुन्दर होता ! लेकिन आप देखते हैं कि हम मानव क्रूर प्राणी हैं । हम पक्षियों की हत्या करते हैं, उन्हें पीड़ा देते हैं, हम उन्हें जाल में पकड़ते हैं और पिंजरों में बन्द कर देते हैं । उस सुन्दर तोते के बारे में सोचें जो पिंजरे में बन्द है, जो प्रत्येक संध्या अपने साथी को पुकारा करता है और जो खुले आसमान में उड़नेवाले पक्षियों को देखा करता है । जब हम पक्षियों को कैद करते हैं, उनके साथ क्रूरतायें करते हैं तब क्या आप सोच सकते हैं कि हमारे निकट आने पर पक्षी भयभीत न होंगे ? लेकिन यदि आप किसी एकांत स्थानपर शांति से बैठते हैं, आप सचमुच एकदम स्तब्ध और सरल बन जाते हैं, तब आपको शीघ्र ही दिखाई देगा कि पक्षी आपके निकट आ रहे हैं । वे आपके बहुत करीब उड़ रहे हैं । तब आप उनकी सजग हरकतों को, उनके कोमल पंजों को, उनके पंखों की अद्भुत शक्ति और उनके सौन्दर्य को देख सकेंगे । इसके लिए आपमें अतिशय सहनशीलता होनी चाहिये; दूसरे शब्दों में आपमें अत्यंत प्रेम और निर्भयता का होना आवश्यक है । पशु भी हमारे अन्दर का भय भाँप लेते हैं और इस प्रकार वे भी भयभीत हो जाते हैं और हमसे दूर भाग जाते हैं । अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने आपको समझें ।

आप वृक्ष के तले शांत बैठकर देखें, केवल एक या दो मिनट के लिए ही नहीं क्यों कि इतने थोड़े समय में पक्षी आपसे अभ्यस्त नहीं हो पाते हैं । आप प्रतिदिन उसी वृक्ष के तले शांत बैठें तब आपको महसूस होगा कि आपके चारों ओर प्रत्येक वस्तु जीवन्त है । तब आप देख सकेंगे घास की पत्तियों को, जो सूर्य के प्रकाश में चमक रही हैं, छोटे-छोटे पक्षियों की अविराम हरकतों को, सर्प की विलक्षण प्रभा को और आसमान में ऊँची उड़ान भरते हुए पतंग को, जो बिना हिले-डुले हवा में झूम रही है । लेकिन यह सब देखने के लिये और इसके आनन्द को महसूस करने के लिए आपके मन में वास्तविक स्तब्धता का होना अनिवार्य है ।

प्रश्नकर्ता : आपमें और मुझमें क्या फर्क है ?

कृष्णमूर्ति : क्या सचमुच हममें कोई मूलभूत अन्तर है ? हो सकता है कि आप अधिक गौर वर्ण के हों और मैं एकदम काला होऊँ । आप मुझसे अधिक चतुर और अधिक जानकार हों । यह भी सम्भव है कि मैं एक देहाती होऊँ और आप समस्त

विश्व की सैर करते हों। स्पष्ट रूप से हमारी आकृति में, हमारी बोली में, हमारे ज्ञान और हमारे व्यवहारों में, हमारी परम्परा और हमारी संस्कृति में अन्तर है। लेकिन चाहे हम ब्राह्मण हों या कोई अन्य, चाहे अमरीकी हों, रूसी हों, जापानी हों, चीनी हों, या और कुछ हों, फिर भी क्या हममें अत्यधिक समानता नहीं है ? हम सभी भयभीत हैं, हम सभी सुरक्षा चाहते हैं, हम सभी प्रेम चाहते हैं, हम सभी भोजन करना और खुश होना चाहते हैं। लेकिन आप देखते हैं कि हमारी इस मूलभूत समानता की भावना को कि हम सभी मानव हैं, ये छिछले भेदभाव नष्ट कर देते हैं। अतः इसे समझने और इस समानता से मुक्त होने से हममें एक महान् प्रेम और गहन विचारशीलता का प्रादुर्भाव होता है। दुर्भाग्य से हममें से अधिकांश व्यक्ति इनमें फंस जाते हैं और इसीलिए वे इन जाति, संस्कृति और विश्वास के छिछले भेदभावों से विभाजित हो जाते हैं। विश्वास तो मानो एक अभिशाप है जो इन्सानों को आपस में अलग करते हैं और उनमें विरोध पैदा करते हैं। जब हम इन समस्त विश्वासों, भेदभावों और समानताओं से परे हो जाते हैं तभी हमारा मन सत्य की खोज के लिए मुक्त हो पाता है।

प्रश्नकर्ता : जब मैं धूम्रपान करता हूँ तब शिक्षक मुझपर चिढ़ते क्यों हैं ?

कृष्णमूर्ति : संभवतः शिक्षक ने बहुत बार आपको धूम्रपान करने से रोका होगा; क्यों कि छोटे बच्चों के लिए यह कोई अच्छी बात नहीं है। लेकिन आप धूम्रपान चालू रखते हैं, क्योंकि आपको इसका स्वाद पसंद है; इसलिए आपके शिक्षक आप पर चिढ़ते हैं। अब बतायें कि आपका क्या खयाल है ? क्या आपका खयाल है कि कोई व्यक्ति बचपन से ही धूम्रपान की या अन्य किसी प्रकार की आदत का शिकार हो जाए ? यदि आपका शरीर इस उम्र से ही धूम्रपान का अभ्यस्त हो जाता है तो इसका अर्थ होगा कि वह पहले से ही किसी वस्तु का दास बन चुका है, और क्या यह एक भयानक वस्तु न होगी ? धूम्रपान अधिक उम्रवालों के लिए भले ही ठीक हो, लेकिन उनके लिए भी यह अत्यधिक संदेहास्पद है। दुर्भाग्य से वे तब तक कितनी ही आदतों के दास बन चुके होते हैं, अतः कुछ क्षणों के लिए उन्हें क्षम्य समझा जा सकता है। लेकिन आप अभी बहुत छोटे हैं, अपरिपक्व हैं, युवा हैं, आप अभी बढ़ रहे हैं, फिर आप क्यों किसी आदत के अभ्यस्त बनें ? क्यों आप किसी आदत के दास बनें जिसके बदले में आपको केवल असंवेदनशीलता ही प्राप्त होती है ? ज्यों ही हमारा मन किसी वस्तु का अभ्यस्त हो जाता है, त्यों ही वह आदत के घेरे में कार्य करना प्रारम्भ कर देता है; इसलिए यह

सुस्त बन जाता है, इसके दरवाजे बन्द हो जाते हैं, यह उस सूक्ष्म बोध-क्षमता को भूला देता है जो ईश्वर, सौंदर्य और प्रेम की खोज के लिए आवश्यक है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य बाघ का शिकार क्यों करता है ?

कृष्णमूर्ति : क्यों कि मारने से उन्हें शिकारीपने की उत्तेजना प्राप्त होती है। हम भी ढेरों नासमझी के कार्य किया करते हैं; जैसे कि यह जानने के लिए कि क्या होता है किसी पक्षी के पंख चीरने व नोचने में। हम गपशप करते हैं और दूसरों के संबंध में कठोर बातें कहते हैं; हम खाने के लिए प्राणियों को मारते हैं, हम तथाकथित शांति के लिए हत्या करते हैं, हम हमारे देश के लिए अथवा आदर्शों के लिए दूसरों का हनन करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हममें निर्दयता का बहुत बड़ा अंश है, क्या नहीं है ? लेकिन यदि कोई यह सब समझे और इससे मुक्त हो जाए, तब एक चीते या बाघ को नजदीक से जाते हुए देखना बड़ा आनन्दमय हो सकता है, वैसा ही जैसा कि हममें से कुछ व्यक्तियों के साथ एक दिन सन्ध्या समय बम्बई के निकट हुआ था। एक मित्र हमें अपनी मोटर से एक चीता दिखाने के लिए, जिसे किसी ने निकट ही देखा था, जंगल में ले गए। लौटते समय ज्यों ही एक घुमाव पूरा हुआ त्यों ही अचानक सड़क के बीचों बीच हमने चीता देखा। पीला और काला, पतला और चिकना, लंबी पूंछवाला, वह सौंदर्य और साहस से परिपूर्ण चीता दिखने में एक आनन्दप्रद वस्तु थी। हमने सामने की रोशनी बुझा दी और वह चमकता हुआ हमारे निकट आया और करीब-करीब हमारी मोटर को स्पर्श करता हुआ निकल गया। यह एक अद्भुत दृश्य था। यदि कोई व्यक्ति बिना बन्दूक लिए इस प्रकार किसी वस्तु को देखे तो यह एक बड़ी आनन्दमय और सौंदर्यमय वस्तु होगी !

प्रश्नकर्ता : हम दुख से बोझिल क्यों हैं ?

कृष्णमूर्ति : हमने दुख को जीवन का एक अनिवार्य अंग मान लिया है और इसके चारों ओर दर्शनशास्त्र खड़े कर दिए हैं। हम दुख को न्यायोचित ठहराते हैं और हम कहते हैं कि परमात्मा को पाने के लिए दुख अनिवार्य है। मैं इसके विपरीत यह कहना चाहता हूँ कि मनुष्य मनुष्य के प्रति निर्दयी है, अतः विश्व में दुख है। दुख तो इसलिए आता है कि हम जीवन की कितनी ही वस्तुएँ नहीं समझते हैं—जैसे कि मौत, बेरोजगारी, गरीबी की पीड़ा। हम यह सब नहीं समझते हैं, इसलिए हमें यातनाएँ मिलती हैं। जितने ज्यादा हम भावनाशील होते हैं, उतने ही हम ज्यादा दुखी होते हैं।

वस्तुओं को समझने का प्रयत्न करने के बजाय हम दुख को उचित मान लेते हैं; हम इन समस्त नियमों के खिलाफ क्रांति कर इनसे मुक्त होने के बजाय हम स्वयम् को इनके अनुसार सुधारते हैं। दुख से मुक्त होने के लिए यह अनिवार्य है कि व्यक्ति दूसरे को हानि या लाभ पहुँचाने की इच्छा से मुक्त हो, क्यों कि वह तथाकथित लाभ भी हमारे संस्कारों का ही परिणाम है।



२२. विचारशीलता

पा स ही के ब गी चे में फूल तोड़ने के लिए एक व्यक्ति संन्यासी के वेश में आया करता था। उसकी आँखें और उसके हाथ फूलों के लोभी थे। जहाँ तक वह पहुँच सकता था वहाँ तक के सारे फूल तोड़ डालता था। यह निश्चित था कि वह ये फूल एक प्रतिमा पर चढ़ाता था, जो पत्थर से बनी हुई थी। फूल बड़े सुंदर और कोमल थे जो प्रातः की रवि-किरणों में खिल ही रहे होते थे। वह फूलों को विदीर्ण करता हुआ तोड़ता था, दयालुता के साथ नहीं। वह बगीचे के सारे सौंदर्य को ही उजाड़ डालता था। उसके ईश्वर के लिए ढेरों फूलों की आवश्यकता जो थी। एक पत्थर की निर्जीव मूर्ति के लिये ढेर सारे सजीव फूल !

दूसरे दिन मैंने कुछ बालकों को फूल तोड़ते हुए देखा। उन्हें ये फूल किसी ईश्वर को नहीं चढ़ाने थे। वे तो बातें करते हुए अविचारपूर्वक फूलों को तोड़ते और पंखुड़ियों को चीरते हुए और उन्हें राह में फेंकते हुए चले जा रहे थे। क्या आपने भी कभी अपने आपको ऐसा करते हुए देखा है? मुझे समझ में नहीं आता कि आप ऐसा क्यों करते हैं? घूमते-घूमते आप कोई पेड़ की शाखा तोड़ लेते हैं और फिर उसकी पत्तियों को नोंचकर इसे फेंक देते हैं। क्या आपने कभी स्वतः के इस प्रकार के अविचारपूर्ण कार्यों को नहीं देखा है? वयप्राप्त व्यक्ति भी ऐसा ही किया करते हैं। वे भी इस प्रकार सजीव वस्तुओं के प्रति अपनी आंतरिक क्रूरता और भयानक निरादर की भावना भिन्न-भिन्न तरीकों से प्रकट करते रहते हैं। किसी को नुकसान नहीं पहुँचाने की वे अक्सर बातें तो किया करते हैं, परन्तु उनका प्रत्येक कार्य विध्वंसात्मक होता है।

जब आप बालों में लगाने या किसी व्यक्ति को प्रेम से भेंट करने के लिए एक या दो फूल तोड़ते हैं तब कोई व्यक्ति इसे ठीक भी समझ सकता है; लेकिन आप फूलों कोविदीर्ण क्यों करते हैं? प्रौढ़ व्यक्ति अपनी महत्त्वाकांक्षाओं से डरावने हो जाते हैं, वे युद्धों में एक दूसरे की हत्या करते हैं, पैसों के बलपर एक-दूसरे को भ्रष्ट करते हैं। उनके कार्य घृणित होते हैं और अन्य देशों की भाँति यहाँ भी युवक इन्हीं व्यक्तियों का अनुकरण कर रहे हैं।

पिछले दिन मैं एक बच्चे के साथ घूमने गया हुआ था। हमने एक पत्थर को देखा जो सड़क पर पड़ा हुआ था। मैंने जब उसे वहाँ से हटा दिया तो बच्चे ने

पूछा, "आपने ऐसा क्यों किया ?" इस प्रश्न से क्या प्रकट होता है ? क्या यह विचारशीलता का, आदर का अभाव नहीं है। आप भय के कारण आदर प्रकट करते हैं। आपके कमरे में किसी बड़े व्यक्ति के प्रवेश करते ही आप एकदम खड़े हो जाते हैं; लेकिन यह आदर नहीं है, यह तो भय है क्यों कि यदि आप सचमुच आदर महसूस करते तब आप फूलों का विनाश नहीं करते, आप सड़क से पत्थर को हटा देते, वृक्षों की रक्षा करते और बगीचों की परवरिश करने में सहायता करते। लेकिन चाहे हम प्रौढ हों या युवक, हममें विचारशीलता की भावना ही नहीं है। ऐसा क्यों ? इसलिए कि हम नहीं जानते कि प्रेम क्या है।

क्या आप जानते हैं कि यह सहज प्रेम क्या है ? मेरा मतलब लैंगिक प्रेम से नहीं जिसे आपने उलझा रखा है या भगवत-प्रेमसे भी नहीं अपितु उस प्रेम से है जिसके कारण आप प्रत्येक वस्तु के प्रति सचमुच विनीत और दयालु होते हैं। प्रायः आपको अपने घरों पर यह सहज प्रेम उपलब्ध नहीं हो पाता, क्यों कि आपके माता-पिता अत्यंत व्यस्त रहते हैं। चूंकि आपके घरों में ही यह प्रेम और दयालुतापूर्ण सही वातावरण नहीं होता, अतः आप यहाँ भी उसी हृदयहीनता की पार्श्वभूमि के साथ प्रवेश करते हैं और अन्य व्यक्तियों की तरह व्यवहार करते हैं; और कोई व्यक्ति यह संवेदनशीलता कैसे प्राप्त करे ? इसका अर्थ यह नहीं कि आप फूल तोड़ने के खिलाफ नियम बनावें क्यों कि जब आप केवल नियमों द्वारा किसी कार्य को करने से रोके जाते हैं तब वहाँ भय होता है; लेकिन आपमें एक ऐसी संवेदनशीलता का उदय, जिससे कि आप सजग हो सकें और किसी व्यक्ति, किसी पशु या किसी फूल को कोई हानि न पहुँचाएँ, किस प्रकार हो सकता है ?

क्या आपकी इन सब बातों में दिलचस्पी है ? इनमें आपकी दिलचस्पी तो होनी ही चाहिए। यदि विचारशीलता में आपकी दिलचस्पी नहीं है तो आप मृतक समान हैं और सचमुच अधिकांश व्यक्ति मृत हैं, वे यद्यपि दिन में तीन बार भोजन करते हैं, व्यवसाय करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं, मोटरें चलाते हैं, सुन्दर कपड़े पहनते हैं, फिर भी उनमें से अधिकांश निष्प्राण हैं।

क्या आप जानते हैं कि संवेदनशील होने का क्या अर्थ है ? निश्चित रूप से इसका अर्थ है वस्तुओं के प्रति दयालुतापूर्ण भावनाएँ रखना, किसी पीड़ित पशु को देखकर उसके लिए कुछ करना, सड़क पर के पत्थर को दूर करना, क्योंकि उस राह पर अनेकों नग्न पाँव चलते हैं, रास्ते में पड़ी हुई एक कील को उठा लेना ताकि यह किसी की मोटर में चुभ न जाए। संवेदनशील होने का अर्थ है व्यक्तियों, पक्षियों, फूलों,

वृक्षों के लिए करुणा महसूस करना — इसलिए नहीं कि वे आपके हैं, परन्तु इसलिए कि आप वस्तुओं के अद्भुत सौन्दर्य के प्रति जागरूक हैं। अब प्रश्न यह है कि हम इस संवेदनशीलता को कैसे लायें ?

ज्योंही आप गहराई से संवेदनशील हो जाते हैं, त्योंही आप अपने आप ही फूल तोड़ना बन्द कर देते हैं। तब आपमें सहज ही किसी वस्तु को नष्ट नहीं करने की, किसी व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुँचाने की, इच्छा का प्रादुर्भाव होता है। इसका अर्थ ही है वास्तविक सम्मान और प्रेम का प्रादुर्भाव होना। प्रेम जीवन की अमूल्य निधि है। लेकिन इस प्रेम का अर्थ क्या है ? जब आप किसी व्यक्ति को इसलिए प्रेम करते हैं कि वह भी बदले में आपको प्रेम करें, तब यह निश्चित प्रेम नहीं है। प्रेम करने का अर्थ है उस अद्भुत अनुरागमयी भावना की अनुभूति करना, जो बदले में कुछ भी नहीं चाहती है। भले ही आप बहुत चतुर हों, आप समस्त परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लें, डॉक्टरेट प्राप्त कर लें, महान् पद पर पहुँच जाएँ, लेकिन यदि आपमें यह संवेदनशीलता नहीं है, यह प्रेम की सहज अनुभूति नहीं है, तो आपका हृदय खाली रहेगा और आप आजीवन दुखी रहेंगे।

अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि आपका हृदय इस प्रेम से परिपूर्ण हो। फिर आपसे विनाश न होगा, फिर आप निर्दयी न होंगे, फिर विश्व में युद्ध न होंगे। तब आप आनंदपूर्ण मानव होंगे और चूँकि आप आनंदपूर्ण होंगे अतः आप प्रार्थना नहीं करेंगे, ईश्वर की खोज नहीं करेंगे, क्योंकि वह आनंद ही स्वयम् ईश्वर है।

अब इस प्रेम का कैसे उदय हो ? निःसन्देह इस प्रेम की शुरुआत अध्यापक से होनी चाहिये। यदि उनके हृदय में प्रेम की अनुभूति है और यदि वह आपको गणित, भूगोल या इतिहास की जानकारी देने के साथ-साथ इस प्रेम के सम्बन्ध में भी कुछ कहते हैं, यदि वह सहज स्फूर्ति से सड़क का पत्थर दूर कर देते हैं और सेवक से गंदे कार्य नहीं करवाते, यदि वह अपनी बातचीत में, अपने कार्य में, भोजन करते समय, दूसरों के साथ या अकेले में रहते समय इस अद्भुत वस्तु को स्वयं में महसूस करते हैं, और इसकी ओर प्रायः आपका इंगित करते रहते हैं तब आप भी यह जान सकेंगे कि प्रेम करने का क्या अर्थ है।

चाहे आपका रंग उजला हो, आपका चेहरा भी सुन्दर हो, आप सुन्दर साड़ी पहनती हों अथवा आप एक बड़े पहलवान हों; लेकिन यदि आपके हृदय में प्रेम नहीं है तो आप एक कुरूप —अत्यन्त कुरूप— इन्सान हैं, लेकिन यदि आपके हृदय में प्रेम है फिर आपका मुँह भले ही साधारण हो या सुन्दर हो, वह आनन्द से दीप्त हो जाता है। जीवन की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है प्रेम ! और यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि आप प्रेम के

सम्बन्ध में चर्चा करें, इसे महसूस करें, इसकी वृद्धि करें, इसे बटोरें, अन्यथा यह नष्ट हो जाएगा क्यों कि विश्व बड़ा क्रूर है। बचपन से ही यदि आप प्रेम का अनुभव नहीं करते, यदि आप प्रेम से व्यक्तियों, पशुओं, फूलों का अवलोकन नहीं करते, तो जब आप बड़े होंगे तब आपको ज्ञात होगा कि आपका हृदय खाली है. तब आप अत्यन्त अकेलापन महसूस करेंगे और भय की काली परछाइयाँ सदैव आपका पीछा करती रहेंगी। लेकिन ज्यों ही आपके हृदय में इस विलक्षण प्रेम का उदय होता है, वैसे ही आप इसकी गहराई, इसका आनन्द, इसका असीम ऐश्वर्य महसूस करने लगते हैं। तब आप यह आविष्कार कर सकेंगे कि विश्व आपके लिए एकदम दूसरा ही हो गया है।

प्रश्नकर्ता : विद्यालय के समारोह के समय सदैव इतने धनी एवं महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ही क्यों आमन्त्रित किए जाते हैं ?

कृष्णमूर्ति : आप क्या सोचते हैं ? क्या आप यह नहीं चाहते हैं कि आपके पिता भी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनें ? जब आपके पिता लोकसभा के सभासद बनते हैं और उनके नाम का समाचार-पत्रों में उल्लेख किया जाता है तब क्या आप गर्व नहीं करते ? जब वे आपको विशाल भवन में रहने ले जाते हैं या जब वे यूरोप जाते हैं और सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए वापस लौटते हैं तब क्या आप प्रसन्नता महसूस नहीं करते ?

अमीर और वे व्यक्ति, जिनके हाथों में शक्ति है, संस्थाओं के लिए बड़े लाभदायक होते हैं। संस्था उनकी चापलूसी करती है और वे संस्था के लिए कुछ करते हैं। इस प्रकार दोनों का कार्य हो जाता है। लेकिन मूलभूत प्रश्न यह नहीं है कि विद्यालय क्यों समारोहों के अवसर पर महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को आमंत्रित करता है अपितु यह है कि हम भी स्वयम् बड़े व्यक्ति बनना क्यों चाहते हैं ? क्यों हम सर्वाधिक धनी, सर्वाधिक प्रसिद्ध या सर्वाधिक सुन्दर व्यक्ति से विवाह करना चाहते हैं। क्या आप सभी किसी-न-किसी रूप में बड़े व्यक्ति नहीं बनना चाहते हैं ? और आपमें जब ये अभिलाषाएँ होती हैं तो आपमें इन बुराइयों के बीज भी होते हैं। क्या आप समझ रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ ?

आप थोड़े समय के लिए इस प्रश्न को कि समारोहों में धनी व्यक्तियों को ही क्यों बुलाया जाता है एक ओर रख दें क्यों कि ऐसे अवसरों पर गरीब व्यक्ति भी होते हैं; लेकिन क्या कभी आप गरीब और देहाती व्यक्तियों के पास बैठते हैं ? क्या सचमुच बैठते हैं ? और क्या आपने एक और आश्चर्यजनक वस्तु भी देखी है कि संन्यासी एक विशिष्टता से क्यों बैठते हैं, वे सबसे आगे क्यों बैठना चाहते हैं ? हम सभी प्रधानता

चाहते हैं, प्रसिद्धि चाहते हैं। सच्चा ब्राह्मण तो वही है जो किसी से कुछ भी न माँगे —इसलिए नहीं कि वह अभिमानी है अपितु इसलिए कि वह स्वयम् अपने लिए प्रकाश है; लेकिन हम यह सब खो बैठे हैं।

आप जानते हैं कि सिकन्दर के बारे में, जब वह भारत आया था, उस समय की एक सुन्दर सी कथा है। देश को जीत लेने के पश्चात् उसने वहाँ के प्रधान-मंत्री से मिलने की इच्छा व्यक्त की जिसने अपने राज्य में एक अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था बना रखी थी और जिसके कारण प्रजा में इतनी सचाई और इतनी पवित्रता आ गई थी। राजा ने बताया कि प्रधानमंत्री एक ब्राह्मण था जो अब अपने गाँव को लौट गया है। सिकन्दर ने राजा को आदेश दिया कि प्रधानमंत्री उनसे आकर मिलें। राजा ने प्रधानमंत्री को बुलावा भेजा लेकिन वह नहीं आया क्यों कि उसे अपनी प्रसिद्धि की कोई परवाह न थी। वह नहीं चाहता था कि कोई उसकी प्रशंसा करे। दुर्भाग्य से हम वह चेतना गँवा बैठे हैं। चूंकि हम अपने आपमें रिक्त हैं, मंद हैं, दुखी हैं, मानसिक दृष्टि से भिखमंगे हैं, अतः किसी व्यक्ति या किसी वस्तु की खोज में लगे हुए हैं जो हमें उत्साहित कर सके, हमें आशा बंधा सके, हमें सहारा दे सके और इसीलिए हम सरल वस्तुओं को भी कुरूप बना देते हैं।

यदि कोई प्रसिद्ध अधिकारी आए और किसी इमारत का शिलान्यास करे तब तो यह उसके लिए उचित है। इसमें क्या हानि है? लेकिन इसके पीछे की भावना में बुराई है। आप कभी देहातियों से मिलने नहीं जाते हैं। आप कभी उन्हें बुलाते नहीं हैं, उनके प्रति सहानुभूति नहीं रखते हैं। आप अपने लिए जरा देखें कि उन्हें खाने को कितना कम मिलता है! वे किस प्रकार बिना विश्राम के, दिनों-दिन कार्य किए चले जाते हैं। ऐसा नहीं कि चूँकि मैंने कुछ बातें कीं और आपका ध्यान खींचा इसलिए आप दूसरों की आलोचना करने तैयार हो जाएँ। आप एक घेरे में बैठकर आलोचना न करें, यह व्यर्थ है। लेकिन आप गाँवों में जाएँ और अपने लिए ज्ञात करें कि वहाँ देहातियों की क्या दशा है। आप वहाँ कुछ करें—कोई वृक्ष लगावें, वहाँ के वासियों से चर्चा करें; उन्हें यहाँ बुलावें, उनके बच्चों के साथ खेलें। तब आपको ज्ञात होगा कि एक अलग ही प्रकार के समाज का निर्माण हो रहा है क्योंकि तब धरती से प्रेम उपजेगा। प्रेम के अभाव में समाज वैसा ही निर्जन होता है, जैसे कि सरिताओं के अभाव में वसुधा, लेकिन जहाँ सरिताएँ हैं वहाँ की भूमि उपजाऊ है, समृद्ध है और सौंदर्यमय है। हममें से अधिकांश व्यक्ति इस प्रेम के अभाव में ही बड़े होते हैं और इसीलिए हमने एक ऐसे डरावने समाज का निर्माण किया है जितने कि डरावने व्यक्ति इसमें रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि कोरी गई प्रतिमाओं में ईश्वर नहीं है लेकिन दूसरों का कहना है कि उनमें सचमुच ईश्वर है और यदि हम अपने हृदय में उनके प्रति श्रद्धा रक्खें तो उसकी शक्ति स्वयम् प्रकट होती है। पूजा की सत्यता क्या है ?

कृष्णमूर्ति : विश्व में जितने मानव हैं उतनी ही उनकी मान्यताएँ हैं और आप जानते हैं कि मान्यता क्या है। आप एक बात कहते हैं और दूसरा दूसरी। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मान्यता है; परन्तु मान्यता सत्य नहीं है। अतः आप केवल मान्यताओं को न मान लें, भले ही ये चाहे किसी की भी क्यों न हो, आप तो अपने लिए यह ज्ञात करें कि सत्य क्या है ? मान्यताएँ तो रातोंरात बदल सकती हैं, पर सत्य कभी नहीं बदलता।

अब आप अपने लिए यह ज्ञात करना चाहते हैं कि क्या कोरी गई प्रतिमाओं में सत्य या ईश्वर है ? आप यही जानना चाहते हैं न ? कोरी गई मूर्ति आखिर क्या है ? यह मन द्वारा सोची गई और पत्थर या लकड़ी पर, हाथों द्वारा कोरी गई है। यह मन किसी मूर्ति की कल्पना करता है और क्या आपका खयाल है कि मन द्वारा कल्पित की गई मूर्ति ईश्वर हो सकती है ? भले ही लाखों व्यक्ति इस बात पर जोर दें कि यह ईश्वर है।

आपका कहना है कि यदि आप मूर्ति में श्रद्धा करें तो यह मूर्ति आपके मन को शक्ति प्रदान करेगी। निःसन्देह यह मन मूर्ति का निर्माण करता है और फिर अपनी ही रचना से शक्ति प्राप्त करता है। हमारा मन निरन्तर यही तो किए जा रहा है— यह मूर्तियों का निर्माण कर रहा है और साथ ही साथ इनसे शक्ति, आनन्द और लाभ प्राप्त किए जा रहा है और इसीलिए यह रीता और आन्तरिक दारिद्रय से पीड़ित है। अतः मूर्ति का महत्व नहीं है, इस बात का भी महत्त्व नहीं है कि लाखों व्यक्ति क्या कहते हैं, महत्त्व तो इस बात का है कि आप अपने मन के कार्यों को समझें।

यह मन ही ईश्वर को बनाता है और मिटाता है। यह दयालु भी है और कठोर भी है। यह मन अद्भुत वस्तुओं के निर्माण की क्षमता रखता है, यह मान्यताओं को पकड़ सकता है, संभ्रम की रचना कर सकता है. यह ऐसे वायुयानों का आविष्कार कर सकता है जो आश्चर्यजनक गति से यात्रा कर सकते हैं। यह सुन्दर पुलों का निर्माण कर सकता है, विस्तृत क्षेत्र में रेलें बिछा सकता है। यह ऐसे-ऐसे उपयोगी यंत्रों का आविष्कार कर सकता है जो मनुष्य की शक्ति से परे के हिसाब कर सकते हैं। लेकिन यह मन सत्य की 'रचना नहीं' कर सकता और जो कुछ यह रचता है

वह सत्य नहीं है, वह केवल एक मान्यता है, एक अनुमान है। अतः आपके लिए यह आवश्यक है कि आप अपने लिए सत्य की खोज करें।

सत्य की खोज के लिए यह आवश्यक है कि मन समस्त हरकतों से मुक्त हो, एकदम स्तब्ध हो और वह शांति ही एक प्रकार की पूजा है---वह पूजा नहीं जिसके लिए आप मन्दिर जाते हैं, फूल चढ़ाते हैं और राह के भिखारियों को एक ओर ढकेल देते हैं। आप पूजा कर ईश्वर को इसलिए खुश करते हैं कि आप उससे भयभीत हैं, लेकिन यह कतई पूजा नहीं है। जब आप अपने मन को समझाते हैं और मन एकदम शांत हो जाता है--बनाया गया शांत नहीं--तब यह शांति ही एक पूजा बन जाती है और इसी शांति में ही उस सत्य का आगमन होता है जो सुन्दर है, जो परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : आपने एक दिन कहा था कि हम शांति से बैठकर अपने मन की प्रक्रिया का निरीक्षण करें लेकिन ज्यों ही हम सजगता से देखना प्रारम्भ करते हैं त्यों ही हमारे विचार लुप्त होने लगते हैं। जब हमारा मन ही द्रष्टा और मन ही दृश्य है तब हम कैसे अपने मन को देखें?

कृष्णमूर्ति : यह एक अत्यंत पेचीदा प्रश्न है। इसमें कितनी ही बातों का समावेश है। अब हम देखें कि क्या सचमुच कोई द्रष्टा है या केवल बोध ही है? कृपया यह अच्छी तरह समझ लें। क्या सचमुच कोई विचारक है या केवल बोध ही है? निःसन्देह विचारक की पहले कोई सत्ता नहीं होती। सर्वप्रथम केवल बोध होता है और यही बोध विचारक का निर्माण करता है जिसका अर्थ हुआ कि बोध में पृथक्करण हो गया है। इस पृथक्करण के साथ ही द्रष्टा और दृश्य, विचारक और विचार का आगमन होता है। प्रश्नकर्ता का पूछना है कि यदि आप अपने मन का निरीक्षण करते हैं, यदि आप एक विचार को देखते हैं तब वह विचार लुप्त हो जाता है, क्षीण हो जाता है, लेकिन तब वास्तव में वहाँ बोध रह जाता है, द्रष्टा नहीं। जब आप एक फूल देखते हैं, जब आप उसे केवल देख रहे होते हैं, तो उस क्षण द्रष्टा की क्या कोई स्वतन्त्र सत्ता होती है? अथवा उस समय सिर्फ 'देखना' मात्र होता है। लेकिन जब फूल को देखते हुए आप यह कहने लगते हैं, "यह बहुत सुन्दर है", "मैं इसे चाहता हूँ" तब तत्काल "मैं" का आगमन इस देखने की क्रिया में आत्मभान के साथ ही इच्छा, भय, लालच व महत्त्वाकांक्षा के माध्यम से होता है। 'मैं' की उत्पत्ति के ये ही कारण हैं; इनकी अनुपस्थिति में "मैं" की कोई सत्ता नहीं।

यदि आप इस सम्पूर्ण विषय में गहरे प्रवेश करें, तब आप यह आविष्कृत करेंगे

कि जब मन अत्यन्त स्तब्ध और पूर्णतया शांत हो जाता है, जब विचार-प्रक्रिया पूर्णरूप से विसर्जित हो जाती है जिससे द्रष्टा या दर्शक वहाँ रह नहीं जाता है, तब वह स्तब्धता ही स्वयम् अपनी सृजनात्मक बोध क्षमता को जन्म देती है। उस स्तब्धता में मन का एक दूसरी ही अवस्था में परिवर्तन हो जाता है। लेकिन मन किसी साधन, किसी अनुशासन या किसी अभ्यास के माध्यम से यह स्तब्धता उपलब्ध नहीं कर सकता; किसी कोने में बैठने से या मन को एकाग्र करने के अभ्यास करने से भी वह शांति फलित नहीं हो सकती। इस शक्ति का आगमन तो तभी हो सकता है, जब आप अपने मन की प्रक्रिया को समझ लेते हैं। यह मन ही है जिसने पत्थर की प्रतिमा का निर्माण किया, जिसकी मानव पूजा करते हैं। उसी ने भगवद्गीता का, संगठित धर्मों और अगणित विश्वासों का निर्माण किया है। परन्तु सत्य की खोज के लिए यह आवश्यक है कि आप मन-निर्मित समस्त वस्तुओं से परे हो जाएँ।

प्रश्नकर्ता : क्या मनुष्य केवल मन और मस्तिष्क ही है, अथवा इससे कुछ ज्यादा भी है ?

कृष्णमूर्ति : इसे आप किस प्रकार खोजेंगे ? यदि आप केवल उसी पर विश्वास, उसी की कल्पना और उसे ही स्वीकार कर लेते हैं, जो शंकराचार्य ने या बुद्ध ने या और किसी व्यक्ति ने कहा है तब आप अनुसंधान नहीं कर सकते, सत्य की खोज नहीं कर सकते। इसके लिए आप के पास केवल एक ही तो साधन है, और वह है मन। और यह मन ही मस्तिष्क भी है। अतः इस विषय के सत्य को ज्ञात करने के लिए आपको अपने मन की समस्त क्रियाओं को समझना होगा; क्या नहीं समझना होगा ? यदि आपका मन कुटिल है तो यह सीधा कैसे देख सकेगा ? यदि आपका मन सीमित है तो यह समयातीत को कैसे जान सकेगा ? यह मन बोध का साधन है और वास्तविक बोध के लिए यह अनिवार्य है कि मन सीधा हो, समस्त संस्कारों से मुक्त हो, अभय हो। यह भी आवश्यक है कि मन ज्ञान से मुक्त हो क्योंकि ज्ञान ही मन को दिशा-भ्रम करता है और वस्तुओं को विकृत भी। मन के पास आविष्कार, कल्पना, अन्दाज़ और विचार करने का गज़ब का सामर्थ्य है। क्या यह सामर्थ्य भी एक ओर नहीं रख देना होगा ताकि मन एकदम स्वच्छ और सरल हो सके ?—क्योंकि केवल वह मन, जो मासूम है, विशद अनुभव प्राप्त करने के बाद भी जो अनुभव से मुक्त है, ज्ञान से मुक्त है, उस वस्तु की खोज कर सकता है जो मनुष्य के मस्तिष्क और मन से परे है। अन्यथा आप जो कुछ अनुसन्धान करेंगे वह आपके ही अनुभवों से रंगा हुआ होगा और आप के अनुभव आपके संस्कारों की ही उपज है।

प्रश्नकर्ता : आवश्यकता और लालच में क्या फर्क है ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप स्वयम् नहीं जानते ? क्या आप नहीं जानते हैं कि आपकी आवश्यकता कब पूरी होती है ? जब आप लालची होते हैं तब आपको क्या कोई वस्तु कुछ कहती हुई प्रतीत नहीं होती है ? आप एकदम छोटी वस्तु से प्रारम्भ करें, आपको तब स्पष्ट दिखाई देगा। आप जानते हैं कि जब आप के पास काफी कपड़े, हीरे, जवाहरात आदि होते हैं तब आपको इनके सम्बन्ध में सिद्धांत नहीं बनाने पड़ते; लेकिन ज्यों ही आपकी आवश्यकता लालच के क्षेत्र में प्रवेश करती है, त्यों ही आप इसके लिए सिद्धांत गढ़ते हैं, युक्तियाँ खोजते हैं, अलग-अलग ढंग से व्याख्याएँ करते हैं। उदाहरण के लिए, एक अच्छे अस्पताल के लिए अधिक संख्या में बेड्स, ऊँचे स्तर की स्वच्छता, बहुत-सी कोटाणु-नाशक औषधियाँ चाहिए। एक यात्री के पास सम्भवतः कार, ओवरकोट आदि हों, ये उसकी आवश्यकताएँ हैं। आपके उद्योग को सुचारुरूप से चलाने के लिए कुछ ज्ञान और कुशलता की आवश्यकता है। यदि आप एक तकनीशीयन हैं तब आपके लिए कुछ बातों का ज्ञान आवश्यक है। लेकिन यही ज्ञान लालच का साधन बन सकता है। इस लालच के माध्यम से मन आवश्यकता के उपकरणों को अपनी प्रगति के लिए उपयोग करता है। यदि आप देखें तो आपको यह बड़ी आसान प्रक्रिया प्रतीत होगी। यदि आप अपनी वास्तविक आवश्यकताओं के जागृत रहते हुए यह भी देखें कि इस लालच का किस प्रकार आगमन होता है ?—किस प्रकार मन आवश्यकता के उपकरणों का अपनी ही उन्नति में उपयोग कर रहा है ?—तब आप बड़ी आसानी से आवश्यकता और लालच का फर्क महसूस कर सकेंगे।

प्रश्नकर्ता : यदि मन और मस्तिष्क दोनों एक ही हैं, और जब हमारा "मस्तिष्क" किसी विचार या इच्छा को बुरा कहता है, फिर भी हमारा "मन" उसी को क्यों चालू रखता है ?

कृष्णमूर्ति : वास्तव में क्या घटित होता है ? यदि एक सुई आपके हाथ में चुभोई जाए तो उसी समय हमारे स्नायु यह समाचार मस्तिष्क को ले जाते हैं। मस्तिष्क इसे दुख का नाम देता है और इसके विरुद्ध विद्रोह करता है, और तब आप सुई को उठा लेते हैं या इसके संबंध में और कुछ करते हैं। लेकिन कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें मन किया करता है, यद्यपि वह जानता है कि ये बुरी हैं, मूर्खतापूर्ण है। मन जानता है कि धूम्रपान करना निश्चित रूप से मूर्खतापूर्ण है, फिर भी यह किए जाता है। लेकिन क्यों ? इसलिए कि वह धूम्रपान की संवेदना को पसन्द करता

है। बस, सिर्फ इतना-सा कारण है। यदि हमारा मन धूम्रपान की मूर्खता के प्रति भी उतना ही सजग हो जाए जितना कि वह सुई के चुभने के दर्द के प्रति होता है, तब यह धूम्रपान को तत्काल छोड़ देगा। लेकिन चूंकि मन की धूम्रपान की सुखद आदत पड़ गई है अतः वह इसे साफ देखना ही नहीं चाहता है। ठीक यही बात लोभ और हिंसा के संबंध में भी है। यदि लालच भी आपके लिए सुई को चुभन की ही भांति पीड़ाकारी हो जाता तो आप लोभी बनना एकदम बन्द कर देते। तब आप इसके सम्बन्ध में सिद्धान्त नहीं गढ़ते। इसी प्रकार यदि आप सचमुच हिंसा के अर्थ के प्रति होश से भर जाते तब आप अहिंसा के संबंध में बड़ी-बड़ी पुस्तकें नहीं लिखते, जो सब फिजूल हैं, इसलिए कि आप इसे महसूस नहीं करते। आप तो केवल इसके सम्बन्ध में चर्चा करते हैं। यदि आप कोई ऐसी वस्तु खाते हैं, जिससे आपको असह्य पीड़ा होने लगती है, तब आप उसे और अधिक नहीं खाते; क्या खाते हैं? आप तब उसे तत्काल बन्द कर देते हैं। इसी प्रकार यदि आपने एक बार यह महसूस कर लिया होता कि ईर्ष्या और महत्त्वाकांक्षा विषमय है, वे दुष्टता और निर्दयतापूर्ण हैं, वे भयंकर विषधर के दंश सदृश मृत्युकारी हैं, तब आप इनके प्रति जागृत हो जाते। लेकिन आप देखते हैं कि मन इन वस्तुओं की ओर निकटता से देखता ही नहीं है; क्यों कि इनमें इसके स्वार्थ छिपे हुए हैं। अतः मन यह स्वीकार करने के लिए तैयार ही नहीं है कि महत्त्वाकांक्षा, ईर्ष्या, लालच, वासना विषपूर्ण हैं। इसलिए यह कहता है कि "हम उदारता, अहिंसा आदि के सम्बन्ध में चर्चा करें, "हम आदर्श बनाएँ"', और इसी तरह से यह विष को ढोते रहता है। अतः आप अपने लिए यह ज्ञात करें कि ये वस्तुएँ कितनी दूषित, कितनी विध्वंसक और कितनी हलाहल-युक्त हैं। तब ये स्वयं ही शीघ्र विसर्जित हो जाएँगी। यदि आप केवल यह कहते हैं—"मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए" और पहले ही की भांति आप चलते रहते हैं तो यह केवल एक पाखण्ड होगा। आप या तो यह करें या वह करें। चाहे आप गरम बनें, चाहे ठंडे बनें।



२३. अकेलापन

आ ज वि श्व में मनोरंजन और दिलबहलाव के इतने साधन हो गए हैं कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति दर्शक बन गया है और खिलाड़ी बहुत ही कम। क्या यह अत्यन्त आश्चर्यजनक बात नहीं है ? जब कभी हमें थोड़ी सी भी फुरसत मिलती है वैसे ही हम किसी मनोरंजन की खोज करने लगते हैं। या हम कोई उपन्यास या कोई पत्रिका उठा लेते हैं। यदि हम अमेरिका में हैं तो हम रेडियो या टेलीवीजन की ओर मुड़ते हैं या फिर अपने आपको कभी न समाप्त होनेवाली बहस में डुबो देते हैं। हम सतत मनोरंजन व भुलावे को अभिलाषा किया करते हैं ताकि हम अपने आपसे दूर भाग सकें। हम अकेले रहने में भयभीत हैं, हम अपने साथी की अनुपस्थिति में या किसी मनोरंजन के अभाव में भयभीत रहते हैं। हममें से बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति हैं जोर मैदानों या जंगलों में बिना बात करते हुए, बिना गाते हुए, एकदम शांति से अपने अन्द और अपने बाहर के जगत का अवलोकन करते हुए भ्रमण करते हैं। हम ऐसा कभी नहीं करते हैं क्योंकि आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्ति अत्यन्त थके-माँदे हैं। चूंकि हम अपने सीखने या सिखाने के पारिवारिक या व्यवसायिक आदि कार्यों की नीरस दिनचर्या में फँसे हुए हैं, अतः हम अपने फुरसत के समय में हल्का-फुल्का या कुछ गंभीर मनोरंजन चाहते हैं। हम तब या तो कोई पुस्तक पढ़ते हैं या सिनेमा जाते हैं या फिर धर्म की ओर मुड़ जाते हैं जिसका भी उद्देश्य यही है। यह धर्म भी हमारी उदासीनतापूर्ण दिनचर्या से भागने का एक प्रकार का मनोरंजन, एक प्रकार का गंभीर पलायन बन गया है।

मुझे नहीं मालूम कि आपने यह सब कभी देखा भी है। अधिकांश व्यक्ति निरन्तर किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहते हैं—पूजा में, कुछ शब्दों को दुहराने में, किसी वस्तु की चिन्ता करने में, क्योंकि वे अकेलेपन से भयभीत हैं। यदि आप किसी भी प्रकार के मनोरंजन की अनुपस्थिति में कभी अकेले रहने का प्रयत्न करें तब आप महसूस करेंगे कि आप अपने आपसे कितना जल्दी भागना चाहते हैं, स्वयम् को भूलना चाहते हैं। यही कारण है कि ये विशाल व्यवसायिक मनोरंजन, ये स्वयम्चालित विनोद, हमारी तथाकथित सभ्यता का एक आवश्यक अंग बन गए हैं। यदि आप निरीक्षण

करें तो आपको ज्ञात होगा कि सारे ही विश्व में व्यक्ति अधिकाधिक पलायनवादी व अत्यधिक कृत्रिम और भौतिकवादी बनते जा रहे हैं। वे असंख्य सुख, ये अनगिनत पुस्तकें, ये समाचारपत्रों के पृष्ठ जो मनमोहक समाचारों से परिपूर्ण हैं—निश्चित रूप से इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि हम सतत मनोरंजन चाहते हैं। चूंकि हम अन्दर से रिक्त हैं, उदास हैं, सुस्त हैं, अतः हम अपने सम्बन्धों और अपने सामाजिक सुधारों का उपयोग भी अपने आपसे पलायन के लिए करते हैं। मुझे यह जानकर आश्चर्य होगा, यदि आपने कभी यह देखा हो कि अधिकांश व्यक्ति कितने अकेले होते हैं ? और इस अकेलेपन से भागने के लिए हम मन्दिर, मसजिद और गिरजाघर की ओर भागते हैं; हम सुन्दर कपड़े पहनकर सामाजिक समारोहों में भाग लेते हैं, हम टेलीवीजन देखते हैं, और रेडियो सुनते हैं, पुस्तकें पढ़ते हैं आदि।

क्या आप जानते हैं कि इस 'अकेलेपन' का क्या अर्थ है ? हो सकता है, आपमें से कुछ व्यक्ति इस शब्द से अपरिचित होंगे, लेकिन इसकी अनुभूति को आप भलीभाँति जानते हैं। जब आप बिना किसी पुस्तक या बिना किसी साथी के भ्रमण के लिए जाते हैं तब आप अनुभव करते हैं कि आप कितनी शीघ्रता से ऊब रहे हैं। आप इस अनुभूति से तो भली-भाँति परिचित हैं लेकिन आप यह नहीं जानते हैं कि आप ऊबते क्यों हैं ? आपने कभी इसकी खोज नहीं की है। यदि आप इस ऊब की ज़रा खोज करें तो आपको ज्ञात होगा कि इसका कारण अकेलापन है और इसी अकेलेपन से भागने के लिए हम किसी के साथ रचना चाहते हैं, मनोरंजन चाहते हैं, एवम् गुरु, धार्मिक उत्सव, प्रार्थना या नवीनतम उपन्यासों के रूप में हर प्रकार के भुलावे चाहते हैं। चूंकि हम आंतरिक जगत में अकेले हैं, अतः हम जीवन में केवल दर्शक रह जाते हैं। हम खिलाड़ी तो तभी बन सकेंगे जब हम इस अकेलेपन को समझ लें और इससे आगे चले जाएँ।

आखिरकार हममें से अधिकांश व्यक्ति इसलिए विवाह करते हैं या अन्य सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं कि वे अकेले रहना ही नहीं जानते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई व्यक्ति विवाह ही न करे। लेकिन यदि आप केवल प्यार किए जाने के लिए विवाह करते हैं, या आप इसलिए कोई पेशा अख्तियार करते हैं कि आप उसमें अपने आपको भुला सकें, तब आपको यह ज्ञात होगा कि आपका पूरा-का-पूरा जीवन ही इन भुलावों की खोज की एक अतंहीन कहानी बन गया है। बहुत ही कम व्यक्ति इस अकेलेपन के विलक्षण भय के परे जा पाते हैं। लेकिन व्यक्ति को इसके परे जाना ही चाहिये क्योंकि उसके परे जाने पर ही जीवन का वास्तविक वैभव दिखाई देता है।

क्या आपको ज्ञात है कि 'एकांत' और 'अकेलेपन' में अत्यधिक अन्तर है? कुछ छोटे बच्चे अभी तक इस अकेलेपन से अपरिचित होंगे लेकिन वयप्राप्त व्यक्ति इसे जानते हैं। इसका अर्थ है—अपने आपको पूर्णतया अकेला महसूस करना, बिना किसी स्पष्ट कारण के अत्यंत भयभीत होना। जिस क्षण हमारा मन महसूस करता है कि उसका कोई भी आसरा नहीं है, उसकी रिक्तता को भरने के लिए कोई भी भुलावा (Distraction) समर्थ नहीं है तब वह भयंकर डर महसूस करता है। यह है अकेलापन। लेकिन एकांत बिलकुल ही दूसरी वस्तु है। यह मुक्ति की वह अवस्था है जिसका आगमन इस अकेलेपन में प्रवेश करने और इसे समझ लेने से होता है। इस एकांत अवस्था में आप किसी पर भी मानसिक दृष्टि से आश्रित नहीं रहते क्यों कि तब आप सुख, आराम और संतोष नहीं चाह रहे होते हैं। तभी मन पूर्णतया एकांत होता है और ऐसा ही मन सृज़नशील होता है।

इस अकेलेपन की पीड़ा का, उस रिक्तता की अजीब अनुभूति का जिससे हम सभी परिचित हैं, सामना करना, इसके आगमन पर भयभीत नहीं होना; रेडियो की ओर नहीं मुड़ना, स्वतः को कार्य में मशगूल नहीं करना, सिनेमा न भागना, लेकिन इस रिक्तता में उतरना और इसे समझना, यह सब शिक्षा का ही एक अंग है। विश्व में ऐसा एक भी इन्सान नहीं होगा जिसने इस कंपित कर देनेवाली चिन्ता को महसूस न किया हो, या नहीं करेगा। हम अपनी इस चिन्ता को इसलिए नहीं समझ पाते हैं कि हम इससे सदैव समस्त भुलावों के माध्यम से—मनोरंजन से, समाधान से, वासना से, परमात्मा से, कार्य से, शराब से, कविता-लेखन से या किन्हीं नामों के उच्चारण से जिन्हें आपने सतत सीखे हैं, भागने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अतः जब आप में यह अकेलेपन की पीड़ा प्रवेश करे तब आप इससे भागने का बिलकुल ही नहीं सोचते हुए इसका सामना करें, इसे अनुभव करें। यदि आप इससे भागते हैं तब आप इसे कभी नहीं समझ सकेंगे और यह हमेशा चुपके से एक कोने में आपकी प्रतीक्षा करता रहेगा। इसके विपरीत यदि आप इस अकेलेपन को समझते हैं और इसका अतिक्रमण कर जाते हैं तब आप यह खोज सकेंगे कि भागने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई है, समाधान और दिलबहलाव की कामना ही विसर्जित हो चुकी हैं; क्यों कि तब आपका मन एक समृद्धि को उपलब्ध हो गया होगा जो न तो दूषित की जा सकती है, न नष्ट।

यह सब शिक्षा का ही अंग है। यदि आप विद्यालय में केवल कुछ विषय इसलिये सीख लेते हैं कि आप परीक्षा उत्तीर्ण कर सकें, तब आपकी यह शिक्षा ही इस

अकेलेपन से पलायन का साधन मात्र बन जायेगी। यदि आप इसके सम्बन्ध में थोड़ा-सा सोचते हैं तो यह आपको स्पष्ट दिखाई देगा। आप अपने शिक्षकों से इसके सम्बन्ध में चर्चा करेंगे तो आपको यह शीघ्र ही ज्ञात होगा कि वे कितने अकेले हैं, आप कितने अकेले हैं! लेकिन वे मानव, जिनके अन्तर में एकांत है, जिसके दिल और दिमाग इस अकेलेपन की पीड़ा से मुक्त हैं, वे ही सही माने में मानव हैं; क्यों कि वे ही अपने लिए यह आविष्कार कर सकेंगे कि सत्य क्या है। वे ही समयातीत अवस्था की अनुभूति कर सकेंगे।

प्रश्नकर्ता : सजगता और संवेदनशीलता में क्या अन्तर है ?

कृष्णमूर्ति : इनमें संभवतः कोई फर्क नहीं है। आप जानते हैं कि जब आप कोई प्रश्न करते हैं तब महत्त्व इस बात का होता है कि आप अपने लिए उस प्रश्न की सचाई को खोजें न कि केवल दूसरे के कथन को मान्य कर लें। अतः अब हम मिलकर यह खोजें कि सजग होने का क्या अर्थ है ?

जब आप अभी-अभी हुई बरसात से दमकती हुई पत्तियों से युक्त एक सुन्दर वृक्ष को देखते हैं, या सूर्य की किरणों को पानी की सतह पर या पक्षी के भड़कीले रंगोंवाले पंखों पर विकीर्ण होते हुए देखते हैं या जब आप भारी बोझा उठाए हुए ग्रामीणों को शहर की ओर जाते हुए देखते हैं और उनके अट्टहास को सुनते हैं, या जब आप एक कुत्ते को भोंकते हुए या बछड़े को अपनी माँ को पुकारते हुए सुनते हैं— यह सब सजगता का ही एक अंग है जिसका अर्थ है कि आपके चारों ओर जो कुछ हो रहा है उसके प्रति आप सजग हैं, यही है न ? आप थोड़े और निकट आते हैं—आप व्यक्तियों, विचारों और वस्तुओं के साथ के अपने संबंधों को देखते हैं; आप मकान व सड़क के बारे में अपनी भावनाओं के प्रति सजग रहते हैं, आपके सम्बन्ध में व्यक्ति जो कहते हैं उसके प्रति होनेवाली अपनी प्रतिक्रियाओं का आप निरीक्षण करते हैं। आप यह भी देखते हैं कि आपका मन किस प्रकार सदैव मूल्यांकन, निर्णय, तुलना और निंदा किए जा रहा है। यह सब सजगता है जो सतह पर से प्रारम्भ होकर अधिकाधिक गंभीर होती चली जाती है। लेकिन हममें से अधिकांश व्यक्तियों की सजगता किसी स्थान विशेषपर पहुँचकर रुक जाती है। हम आवाजों, गीतों, सुन्दर या क्रूरता पूर्ण दृश्यों के प्रति सजग तो रहते हैं, परन्तु इनसे होनेवाली प्रतिक्रियाओं के प्रति हम सचेत नहीं रहते। हम तो बस, इतना कहकर कि "यह सुन्दर है, वह कुरूप है" आगे निकल जाते हैं। लेकिन हम यह खोज नहीं करते हैं कि यह सौन्दर्य क्या है, यह कुरूपता क्या है। निःसंदेह अपनी प्रतिक्रियाओं को देखना, अपने विचारों की प्रत्येक हरकत के

प्रति अधिकाधिक सावधान रहना और इसका निरीक्षण करना कि आपका मन जो आपके माता-पिता, आपके शिक्षक, आपकी जाति और आपकी संस्कृति के प्रभावों से जकड़ा हुआ है—यह सब सजगता का एक भाग है; क्या नहीं है ?

मन जितनी गहराई से अपनी ही विचार-प्रक्रिया में प्रवेश करता है उतनी ही स्पष्टता के साथ वह यह समझने लगता है कि हमारे सारे के सारे विचार ही सशर्त हैं, प्रतिबद्ध हैं, और तब हमारा मन एकदम अत्यंत शांत हो जाता है, जिसका यह अर्थ नहीं कि वह तंद्रा में होता है, बल्कि इसके विपरीत तब हमारा मन असाधारण रूप से सजग हो जाता है। तब यह मन्त्रों से, विशेष प्रकार के नामों के उच्चारण से अथवा अनुशासन से बेहोश नहीं होना चाहता ! शांत जागरूकता की यह अवस्था भी सजगता का ही एक अंग है। और यदि आप इसमें और भी गहराई से प्रवेश करें तो आपको ज्ञात होगा कि सजग रहनेवाले व्यक्ति और उस वस्तु में जिसके प्रति कि वह सजग है, कोई अन्तर ही नहीं रह गया है।

अब हम देखें कि इस 'संवेदनशीलता' का क्या अर्थ है ? आकृति एवम् रंगों के प्रति सावधान रहना, इसके प्रति सावधान रहना कि व्यक्ति क्या कहते हैं और उसके प्रति आपकी प्रतिक्रियाएँ क्या होती हैं, विचारशील होना, अच्छी रुचि एवम् अच्छे आचार रखना, कठोर न होना, व्यक्तियों को शारीरिक या मानसिक दृष्टि से कष्ट पहुँचाने का खयाल तक न आना, किसी सुन्दर वस्तु को देखना और उसे देखते जाना, बिना ऊबे जो कुछ कहा जा रहा है उसे परीक्षण करते हुए सुनना ताकि आपका मन तीक्ष्ण और सूक्ष्म बन सके, यह सब संवेदनशीलता है; है न ? अतएव क्या सजगता एवम् संवेदनशीलता में बहुत फर्क है ? मैं ऐसा नहीं सोचता हूँ।

आप देखते हैं कि जहाँ तक आपका मन निंदा कर रहा है, निर्णय कर रहा है, मान्यताएँ बना रहा है, तत्त्व ढूंढ रहा है, तब तक यह न तो सजग है और न संवेदनशील। जब आप व्यक्तियों के प्रति असभ्यतापूर्ण व्यवहार करते हैं, जब आप फूलों को तोड़ते हैं और उन्हें फेंक देते हैं, जब आप पशुओं के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते हैं, जब आप फर्निचर पर अपना नाम खोदते हैं अथवा किसी कुर्सी की टांग तोड़ देते हैं, जब आप भोजन करने में अनियमित हैं, जब आपके व्यवहार प्रायः गलत होते हैं—इन सबसे यह ध्वनित होता है कि आप संवेदनशील नहीं हैं। क्या यह असत्य है ? इससे यह ज़ाहिर है कि आपका मन आवश्यकतानुसार लचीला होने में असमर्थ है। अतः निश्चित रूप से यह शिक्षा का कार्य है कि वह विद्यार्थी को संवेदनशील होने में सहायता करे ताकि वह किसी वस्तु को मानता या उसका प्रतिकार न करता हुआ जीवन की समस्त गतिविधियों के प्रति सजग रह सके। वे मानव जो संवेदनशील हैं, उन मानवों की अपेक्षा

जो असंवेदनशील हैं, अधिक दुख उठा सकते हैं लेकिन यदि वे इस दुख को समझते हुए इसका अतिक्रमण कर जाते हैं, तो वे अपने जीवन में अद्‌भुत रहस्यों का आविष्कार कर पाते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब कोई व्यक्ति ठोकर खाकर गिर पड़ता है तब हम क्यों हँसते हैं ?

कृष्णमूर्ति : यह एक प्रकार की असंवेदनशीलता है; क्या नहीं है ? एक वस्तु और भी है जिसे हम परपीड़न (Sadism) कहते हैं। क्या आप जानते हैं, इस शब्द का क्या अर्थ है ? मार्क्विस डी सेड नामक लेखक ने एक पुस्तक लिखी, जिसमें उसने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया जो दूसरे व्यक्तियों को चोट पहुँचाकर, उन्हें दुखी देखकर, आनंद का अनुभव करता था। यहीं से यह शब्द प्रचलित हुआ; जिसका अर्थ है दूसरों को दुखी कर आनन्द प्राप्त करना। आप अपना निरीक्षण करें और ज्ञात करें कि कहीं आपमें भी यही भावना तो काम नहीं कर रही है ? हो सकता है, यह भावना अस्पष्ट हो, लेकिन यदि आपमें यह भावना है तो वह दूसरे को गिरते हुए देखकर आपको हँसने के लिए अवश्य उत्तेजित करेगी। आप उन व्यक्तियों को, जो ऊँचे हैं, नीचे खींचना चाहते हैं, आप आलोचना करते हैं, अविचारपूर्वक दूसरों के सम्बन्ध में गपशप किया करते हैं। यह सब असंवेदनशीलता का परिणाम है और इसके पीछे दूसरों को दुख पहुँचाने की इच्छा है। चाहे कोई जान-बूझकर प्रतिशोध के लिए किसी को दुख पहुँचाए या कोई अनजाने में ही किसी शब्द, किसी भाव या किसी नजर द्वारा किसी को दुखी करे लेकिन इन दोनों अवस्थाओं में एक ही इच्छा—दूसरे को दुख पहुँचाने की इच्छा—काम कर रही है और हममें से ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम हैं जो आनन्द के इस गलत रूप से मुक्त हो गये हों।

प्रश्नकर्ता : हमारे एक प्राध्यापक का कहना है कि आप जो कुछ हमें कह रहे हैं वह बिलकुल ही अव्यवहारिक है। वे आपको यह चुनौती देते हैं कि आप १२० रु. के वेतन से छः लड़के और छः लड़कियों का पालन-पोषण करके तब बतावें। इस आलोचना के सम्बन्ध में आपका क्या कहना है?

कृष्णमूर्ति : सर्वप्रथम बात तो यह है कि यदि मेरा वेतन १२० रु. होता तो मैं छः लड़के व छः लड़कियाँ पैदा ही नहीं करता। दूसरी बात यह कि यदि मैं प्राध्यापक होता तो मेरा कार्य एक समर्पण का कार्य होता, व्यवसाय नहीं। क्या आप दोनोंका अन्तर समझते हैं ? अध्यापन किसी भी स्तरपर व्यवसाय नहीं है, यह केवल नौकरी

नहीं है, यह तो एक समर्पण का कार्य है। क्या आप इस समर्पण शब्द का अर्थ समझते हैं ? समर्पित होने का अर्थ है– बदले में किसी भी वस्तु की आशा नहीं करते हुए अपने आपको सम्पूर्ण रूप से किसी कार्य के लिए दे देना और ऐसा हो जाना जैसा कि कोई फकीर, कोई संन्यासी या कोई महान शिक्षक या वैज्ञानिक होता है; उनकी तरह नहीं जो कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर अपने आपको प्राध्यापक कहलवा लेते हैं। मैं उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में चर्चा कर रहा हूँ जिन्होंने अपने आपको पैसों के लिए नहीं, अपितु अध्यापन के लिए समर्पित कर दिया हो, केवल इसलिए कि यह उनका कार्य है, इसके प्रति उनका प्रेम है। यदि कोई सचमुच ऐसे शिक्षक हैं तो उन्हें ज्ञात होगा कि वे वह सब कुछ, जिसके सम्बन्ध में मैं चर्चा कर रहा हूँ, निश्चित रूप से लड़के-लड़कियों को सिखा सकेंगे। लेकिन केवल वह शिक्षक या प्राध्यापक, जिसके लिए अध्यापन केवल आजीविका का एक साधन है, आपसे यह कहेगा कि ये समस्त बातें अव्यवहारिक हैं।

आखिरकार व्यवहारिक होने का क्या अर्थ है ? इसपर आप जरा सोचें। क्या उन मार्गों को आप व्यवहारिक कहते हैं जिनके अनुसार हम जिए जा रहे हैं, अध्यापन कर रहे हैं और जिनके अनुसार हमारी सरकारें भ्रष्टाचार और अविराम युद्धों के साथ अपना कार्य करती चली जा रही हैं ? क्या महत्त्वाकांक्षा व्यवहारिक है ? क्या लालच व्यवहारिक है ? महत्त्वाकांक्षा जन्म देती है प्रतिस्पर्धा को और प्रतिस्पर्धा से विनाश होता है मानव का। वह समाज, जो लालच और अधिकार-लिप्सा पर आधारित है, उसमें सदैव युद्ध का पिशाच छिपा रहता है, इसमें संघर्ष है, दुख है, और क्या यह सब व्यवहारिक है ? निश्चित रूप से यह व्यवहारिक नहीं है और यही मैं इन समस्त चर्चाओं में आपसे कहने का प्रयास कर रहा हूँ।

प्रेम विश्व में सबसे ज्यादा व्यवहारिक वस्तु है। प्रेम करना, दयालु होना, लालची नहीं होना, महत्त्वाकांक्षी नहीं होना, व्यक्तियों से बिना प्रभावित हुये स्वयम अपने से सोचना, ये समस्त अत्यन्त व्यवहारिक वस्तुएँ हैं, और ये ही एक व्यवहारिक और आनन्दमय समाज की रचना कर सकेंगी। लेकिन वह अध्यापक, जिसका जीवन समर्पित जीवन नहीं है, जो प्रेम नहीं करता है, जिसने भले ही अपने नामके आगे कुछ अक्षर लगा लिए हों, लेकिन वह केवल कुछ पुस्तकीय ज्ञान का व्यापार करनेवाला है, केवल वही — केवल वही व्यक्ति आपको ये सारी बातें अव्यवहारिक बताएगा क्योंकि उसने कभी इसके सम्बन्ध में सोचा ही नहीं है। प्रेम करने का अर्थ है व्यवहारिक होना और यह व्यवहारिकता उस व्यवहारिकता से कहीं ज्यादा अच्छी है जो ऐसे नागरिकों का निर्माण कर रही है जो अकेले खड़े होने और एक भी समस्या पर स्वतंत्र रूप से विचार करने में सर्वथा असमर्थ हैं।

आप देखें कि यह सजगता का ही एक भाग है : कि इस वास्तविकता के प्रति सजग होते हुए भी 'वे एक कोने में मूर्खों के समान हँसे जा रहे हैं' और फिर भी वे अपनी गंभीरता को बनाए रख रहे हैं।

मुश्किल तो यह है कि अधिकांश वयप्राप्त व्यक्ति अपनी स्वयम् की ही समस्या नहीं सुलझा सके हैं, फिर भी वे आपसे कहा करते हैं—"मैं आपको बताऊँगा कि क्या व्यवहारिक है और क्या अव्यवहारिक है।" अध्यापन जीवन का महानतम कार्य है। यह सबसे ऊँचा और सबसे पवित्र व्यवसाय है यद्यपि आज यह अत्यन्त तुच्छ रह गया है। लेकिन शिक्षक के लिए यह अनिवार्य है कि वह पूर्णतया समर्पित हो, वह अपने आपको पूर्णतया इस कार्य में लगा दे। वह अपने दिल, अपने मन और अपनी समग्रता से पढ़ाए और इस समर्पण से ही ये वस्तुएँ संभव हो सकेंगी।

प्रश्नकर्ता : यदि हम शिक्षा-ग्रहण करने की अवस्था में ही वर्तमान विश्व की विलासिता द्वारा विनष्ट कर दिए जाते हैं तो फिर शिक्षा का क्या अर्थ है?

कृष्णमूर्ति : मुझे लगता है कि आप गलत शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। कोई व्यक्ति आराम के कुछ साधनों का अवश्य उपभोग करे; क्या न करे? जब कोई व्यक्ति शांति से अपने कमरे में बैठता है तो यह उचित है कि वह कमरा स्वच्छ हो, सुव्यवस्थित हो, भले ही उसमें बिलकुल ही फर्नीचर न हो, पर चटाई तो भी हो, उसका आकार उचित हो, उसकी खिड़कियाँ बराबर हों। यदि कमरे में कोई तस्वीर हो तो वह सुन्दर हो, यदि गुलदस्ते में कोई फूल हो तो उसमें उस व्यक्ति की प्रफुल्लता हो, जिसने उसे वहाँ रक्खा है। यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति को अच्छा भोजन मिले, उसके सोने का कमरा शांत हो। ये सब आराम के साधन हैं जो मानव को आधुनिक विश्व द्वारा प्रदान किये गये हैं और क्या यह आराम तथाकथित शिक्षित व्यक्ति को नष्ट कर रहा है? या यह तथाकथित शिक्षित व्यक्ति ही अपनी महत्त्वकांक्षा और अपने लालच के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के साधारण आराम को भी नष्ट किये जा रहा है? सम्पन्न देशों में आधुनिक शिक्षा तो व्यक्तियों को ज़्यादा-से-ज़्यादा भौतिकवादी बनाये जा रही है और इसीलिए विलासिता अनेकों रूपों में मन को विकृत और नष्ट किए जा रही है। दूसरी ओर भारत के समान गरीब देशों में शिक्षा, व्यक्तियों को पूर्णतया नवीन संस्कृति के निर्माण करने में उत्साहित नहीं कर रही है। यह आपको क्रांति करने में सहायता नहीं कर रही है। क्रान्ति से मेरा तात्पर्य क्या है यह मैं स्पष्ट कर चुका हूँ। क्रांति से मेरा तात्पर्य बम फेंकने अथवा सामूहिक हत्याएँ करने से नहीं है। ऐसी

क्रांति तो वास्तव में क्रांति ही नहीं है। एक वास्तविक क्रांतिकारी वह है जो समस्त प्रलोभनों से मुक्त हो, जो समस्त आदर्शों और समाज के, जो अनेकों व्यक्तियों की सामूहिक इच्छा का परिणाम है, समस्त बन्धनों से स्वतन्त्र हो और आपकी शिक्षा आपको इस प्रकार क्रांतिकारी बनने में सहयोग नहीं दे रही है, यह तो इसके विपरीत आपको यह सिखा रही है कि आप विश्वासों को मान लें या इन्हीं में सुधार करते रहें।

अतः यह आपकी तथाकथित शिक्षा ही आपको नष्ट किये जा रही है, न किये आराम के साधन, जो आधुनिक विश्व द्वारा प्रदान किये गये हैं। क्यों न आपके पास मोटरें हों, सैर के लिए सुन्दर सड़कें हों ? लेकिन आप देखते हैं कि आज के सारे के सारे यन्त्रों और आविष्कारों का या तो युद्धों की तैयारी में उपयोग किया जा रहा है, या फिर स्वयं से पलायन करने के मनोरंजन के साधन जुटाने में। अतः हमारा मन इन यांत्रिक उपकरणों (gadgets) में ही खो जाता है और ऐसी वस्तुओं का निर्माण करना ही आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य बन गया है। ऐसे-ऐसे यांत्रिक उपकरणों और यन्त्रों का अविष्कार किया गया है जो खाना बनाने, सफाई करने, हिसाब करने आदि के आवश्यक कार्य कर सकते हैं ताकि आपको इन विषयों पर हर समय सोचने की आवश्यकता ही न पड़े। आपके पास ये सब भड़कीली वस्तुएँ तो हों लेकिन अपने आपको डुबोने के लिए नहीं, उसमें खो जाने के लिये नहीं, अपितु अपने मन को इसलिये मुक्त करने के लिये ताकि आप एक बिल्कुल भिन्न ही कोई चीज कर सकें।

प्रश्नकर्ता : मैं बहुत ज्यादा काला हूँ और अधिकांश व्यक्ति गौरवर्ण पसन्द करते हैं। ऐसी अवस्था में मैं उनकी कैसे प्रशंसा प्राप्त करूँ ?

कृष्णमूर्ति : मुझे ऐसा लगता हैं कि ऐसी कुछ औषधियाँ हैं जिनसे कहा जाता है कि वर्ण गोरा हो जाता है, लेकिन क्या उससे आपकी समस्या हल हो सकेगी ? आप फिर भी प्रशंसा चाहेंगे, सामाजिक प्रसिद्ध चाहेंगे, आप सम्मान और प्रतिष्ठा की अभिलाषा करेंगे। इस प्रशंसा की चाह में, इस प्रसिद्ध बनने के संघर्ष में, हमेशा दुख का दर्द छिपा हुआ है। जहाँ तक आप प्रशंसित व प्रसिद्ध होने की इच्छा करते हैं वहाँ तक यह शिक्षा आपको नष्ट करती रहेगी क्योंकि इसके माध्यम से आप इस समाज में कुछ बनने का प्रयत्न करते रहेंगे, जो सड़ चुका है। हमने ही अपनी लालच, अपनी ईर्ष्या और भय के माध्यम से इस विनाशकारी समाज का निर्माण किया है और अब हम इसके प्रति उपेक्षा कर या इसे माया कहकर पूर्णतया बदल नहीं सकते। केवल उचित प्रकार की शिक्षा ही, लालच, भय और अधिकार-लिप्सा को समाप्त कर सकेगी और तभी हम पूर्णतया नवीन संस्कृति और एक-दूसरे ही विश्व का निर्माण कर सकेंगे। और सही प्रकार की शिक्षा का आगमन तभी हो सकेगा जब कि हमारा मन मुक्त हो और वह अपने आपको समझना चाहता हो। ●

२४. सत्य की खोज

हमारे युग की सबसे कठिन समस्याओं में से एक समस्या है अनुशासन की, जो सचमुच अत्यधिक उलझी हुई है। आप देखते हैं कि समाज नागरिक को नियंत्रित व अनुशासित करना चाहता है; वह उसके मन को किसी विशेष धार्मिक, सामाजिक, नैतिक व आर्थिक ढाँचों के अनुसार ढालना अनिवार्य समझता है।

अब हम देखें कि क्या अनुशासन सचमुच आवश्यक है? कृपया इसपर ज़रा गहराई से सोचें। जल्दी से आप केवल 'हाँ' या 'नहीं' न कह दें। हममें से अधिकांश व्यक्ति, विशेषकर युवावस्था में, यह महसूस करते हैं कि 'समाज में अनुशासन न हो', 'हमें अपनी इच्छानुसार कार्य करने दिया जाए' और हम इसे ही स्वतंत्रता मान बैठे हैं। लेकिन जब तक हम इस अनुशासन की सम्पूर्ण समस्या को ही नहीं समझ लेते हैं तब तक हमारे इस कहने का कि 'हम अनुशासन रक्खें' या 'न रक्खें', 'हम स्वतन्त्र हों', बहुत ही नगण्य अर्थ होगा।

एक सच्चा खिलाड़ी प्रति क्षण स्वयम् को अनुशासित करता है; क्या नहीं करता है? खेल खेलने का आनन्द लेने और उसके लिए स्वयम् को उपयुक्त बनाए रखने की आवश्यकता से ही वह स्वतः ठीक समय पर सोता है, धूम्रपान से बचता है, सही प्रकार का भोजन करता है और अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नियमों का पालन करता है। उसके लिए अनुशासन कोई ज़बरदस्ती या संघर्ष नहीं है। यह तो उसके खेलों के आनन्द से स्वतः ही फलित होता है।

अब हम यह देखें कि यह अनुशासन मानवीय शक्ति को बढ़ाता है या कम करता है? विश्व के कोने-कोने में, प्रत्येक धर्म में, दर्शन के प्रत्येक सम्प्रदाय में, मानव-समाज अपने मन पर अनुशासन थोपता आया है—जिसका अर्थ है नियंत्रण करना, प्रतिकार करना, समझौता करना, दमन करना। लेकिन क्या यह अनुशासन आवश्यक भी है? हाँ, यदि अनुशासन मानवीय शक्ति में अधिक वृद्धि करता है तब तो यह स्तुत्य भी है, इसका कुछ अर्थ भी है; लेकिन यदि मानवीय शक्ति का केवल दमन करे तो यह अत्यन्त हानिकारक और विनाशकारी है। हम सबमें शक्ति है परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या यह शक्ति अनुशासन के माध्यम से अधिक जीवन्त, अधिक समृद्ध और अधिक विशाल

बनाई जा सकती है अथवा यह अनुशासन हमारी जो कुछ शक्ति है उसे ही नष्ट कर देता है ? मैं सोचता हूँ, यह हमारा एक बुनियादी प्रश्न है ।

बहुत-से व्यक्तियों में अधिक शक्ति ही नहीं होती, और उनकी जो कुछ थोड़ी-सी शक्ति है वह भी उनके समाज एवम् उनकी तथाकथित शिक्षा के नियंत्रणों, धमकियों व अवरोधों द्वारा दमित कर दी जाती है, विनष्ट कर दो जाती है । परिणामस्वरूप व्यक्ति नकलची और निष्प्राण नागरिक बन जाते हैं । और क्या यह अनुशासन उस व्यक्ति को कुछ अधिक शक्ति प्रदान कर सकता है जो जीवन में कुछ ऊँची खोज करना चाहता है ? क्या यह अनुशासन उसके जीवन को ज्यादा समृद्ध और जीवन्तता से परिपूर्ण बना सकता है ?

जब आप बहुत छोटे होते हैं, जैसे कि आप अभी हैं, तब आप शक्ति से परिपूर्ण होते हैं; होते हैं न ? आप चाहते हैं कि आप खेलें, दौड़ें, चर्चा करें । आप तब शांत नहीं बैठ सकते हैं, आप तो जीवन से परिपूर्ण होते हैं । तब क्या घटित होता है ? जब आप बड़े होने लगते हैं तब आपके शिक्षक आपकी उस शक्ति को एक विशेष आकार देकर व उसे भिन्न-भिन्न साँचों में ढालकर कम करना प्रारम्भ कर देते हैं और अन्त में जब आप पुरुष या स्त्री बन जाते हैं तब आपकी बची हुई थोड़ी-सी शक्ति समाज द्वारा शीघ्र ही यह कहकर कि "आप अनिवार्य रूप से अच्छे नागरिक बनें", "आप किसी एक विशेष प्रकार से ही व्यवहार करें", कुंठित कर दी जाती है । इस प्रकार इस तथाकथित शिक्षा और सामाजिक जबरदस्ती से आपको बचपन की वह महान् शक्ति क्रमशः नष्ट कर दी जाती है ।

अब हम देखें कि आपकी यही शक्ति क्या अनुशासन के माध्यम से और अधिक बढ़ाई जा सकती है ? यदि आपमें अल्प-सी शक्ति है तो क्या अनुशासन उसमें वृद्धि कर सकता है ? यदि ऐसा हो सकता है तो अनुशासन का कुछ अर्थ भी है । लेकिन यदि अनुशासन सचमुच शक्ति को नष्ट कर देता है, तब इसे अनिवार्यतः छोड़ देना उचित होगा ।

यह शक्ति क्या है जो हममें से प्रत्येक में विद्यमान है ? चिन्तन, अनुभूति, दिलचस्पी, जोश, लालच, उत्कण्ठा, वासना, महत्वाकांक्षा, घृणा, ये सब शक्ति के रूप हैं । यही शक्ति चित्रकारी में, यन्त्रों के आविष्कार में, पुलों के निर्माण में, सड़कें बनाने में, खेलने में, कविताएँ रचने में, गाने में, नाचने में, मन्दिर जाने में, खेतों को उपजाऊ बनाने में, पूजा करने में प्रकट होती है और यही शक्ति भ्रम, उपद्रव और पीड़ा का भी निर्माण करती है । यह मानवीय शक्ति श्रेष्ठतम या अत्यन्त संहारक वस्तुओं के निर्माण में समान रूप से प्रकट होती है । लेकिन आप देखते हैं कि इस शक्ति को नियंत्रित व

अनुशासित करने एवम् इसे एक दिशा में रोककर दूसरी दिशा में प्रवाहित करने की यह प्रक्रिया अन्ततः एक सामाजिक सुविधा मात्र बनकर रह जाती है। इससे हमारा मन एक विशिष्ट संस्कृति के ढाँचे में ढल जाता है और इस प्रकार इस शक्ति का क्रमशः ह्रास हो जाता है।

अतः हमारी समस्या यह है कि यह शक्ति, जो किसी न किसी रूप में हम सबमें विद्यमान है, क्या बढ़ाई जा सकती है? क्या यह अधिक जीवन्त की जा सकती है? और यदि हाँ तो फिर किसलिए? किसके लिए है आखिर यह शक्ति? क्या यह शक्ति युद्ध करने के लिए है? क्या यह वायुयान एवम् अन्य अगणित यंत्रों के आविष्कार के लिए है? क्या यह किसी गुरु का पीछा करने, परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने, बच्चे पैदा करने या किसी समस्या पर दिनरात चिन्ता करने के लिए है? अथवा क्या इस शक्ति का उपयोग एक भिन्न ढंग से नहीं किया जा सकता है ताकि हमारी सारी क्रियाओं की अर्थवत्ता उस चीज से जुड़ जाये जो इन सबों के पार हो? निःसन्देह मानवीय मन, जिसमें इतनी आश्चर्यजनक महान् शक्ति है, यदि सत्य की, परमात्मा की, खोज नहीं करता तो इसकी शक्ति द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य विनाश और पीड़ा का कारण बन जाएगा। सत्य की खोज के लिए अनन्त शक्ति की आवश्यकता है, और यदि मानव यह खोज नहीं करता है तो वह अपनी शक्ति को जिस किसी कार्य में खर्च करेगा उससे केवल उपद्रव ही पैदा होंगे और तब समाज को उसपर नियंत्रण थोपना पड़ेगा। अब प्रश्न यह है कि क्या परमात्मा या सत्य की खोज की दिशा में इस शक्ति (ऊर्जा) को मुक्त करना संभव है और क्या यह भी संभव है कि सत्य की खोज की इस प्रक्रिया में ही व्यक्ति एक ऐसा नागरिक बन जाये जो जीवन के मौलिक प्रश्नों को समझता हो तथा जिसे समाज विनष्ट न कर सके? क्या आप मेरी बात समझ पा रहे हैं या यह कुछ पेचीदी बन गई है?

मानव स्वयं शक्ति है और यदि मानव सत्य की खोज नहीं करता तो यह शक्ति विनाशकारी हो जाती है। अतः तब समाज व्यक्ति को नियंत्रित करता है, उसे एक आकार देता है, जिससे यह शक्ति कुंठित हो जाती है। सारे ही विश्व में अधिकांश वयप्राप्त व्यक्तियों के साथ यही तो घटित हुआ है। और आपने एक दूसरी बड़ी दिलचस्प और सहज की वास्तविकता अवश्य महसूस की होगी कि जिसक्षण आप सचमुच किसी कार्य को करना चाहते हैं, उसी क्षण आपमें उस कार्य के लिए आवश्यक शक्ति भी आ जाती है। जब आप कोई खेल खेलने के लिए तत्पर होते हैं, तब क्या होता है? तत्काल आपमें खेलने की शक्ति आ जाती है; क्या नहीं आ जाती? और यही शक्ति

स्वयम् को अनुशासित करने का साधन भी बन जाती है। अतः तब आपके लिए किसी बाहरी अनुशासन की जरूरत ही नहीं रह जाती। सत्य की खोज में शक्ति स्वयम् अपना नियंत्रण करती है। वह मानव जो सत्य की खोज कर रहा है, सहज में ही सही प्रकार का नागरिक बन जाता है। वह किसी समाज या सरकार विशेष के ढाँचे के अनुसार नहीं होता है।

अतः विद्यार्थी और साथ-साथ शिक्षक दोनों इस सत्य, परमात्मा या वास्तविकता की खोज में अपनी शक्ति को मुक्त रूप से प्रवाहित करें। इस सत्य की खोज में अनुशासन अपने आप आएगा और तब आप केवल एक हिंदू या एक पारसी की तरह से किसी विशेष संस्कृति या समाज में सीमित नहीं रहेंगे; अपितु आप एक वास्तविक और पूर्ण मानव बन सकेंगे। यदि शिक्षा आपकी शक्ति को कम करने की अपेक्षा इसे सत्य की खोज में जागृत करने में सहयोग दे तो आपको महसूस होगा कि अनुशासन का एक बिलकुल ही दूसरा अर्थ होगा।

ऐसा क्यों है कि आपको घर पर या कक्षा में या छात्रावास में निरन्तर यह कहा जाता है कि 'आप अमुक कार्य अवश्य करें' और 'अमुक कार्य कतई न करें'? निश्चित रूप से यह इसलिए कि आपके शिक्षक और आपके माता-पिता ने भी सारे समाज की ही भाँति यह बात महसूस ही नहीं की है कि मानव के अस्तित्व का केवल एक ही उद्देश्य है और वह है सत्य को खोज, परमात्मा की खोज करना। यदि थोड़े-से शिक्षकों का एक छोटा-सा समुदाय भी इसे समझ ले और अपना समग्र ध्यान इस खोज में लगा दे तो वे एक नूतन शिक्षा का निर्माण करेंगे और साथ ही एकदम भिन्न समाज की सृष्टि भी होगी।

क्या आप नहीं देखते हैं कि आपके आसपास के अधिकांश व्यक्तियों में, जिनमें आपके माता-पिता और आपके शिक्षक भी सम्मिलित हैं, कितनी कम शक्ति रह गई है? वे धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं, यद्यपि उनका शरीर युवा है। ऐसा क्यों? इसलिए कि वे समाज की ज़बरदस्तियों से चोट खाए हुए हैं। आप देखते हैं कि हमारे जीवन का मूलभूत उद्देश्य है, इस अद्‌भुत मन को समझना, जिसमें आणविक पनडुब्बी और जेट वायुयान के निर्माण की सामर्थ्य है, जो आश्चर्यजनक काव्य और गद्य की रचना कर सकता है, जिसमें विश्व को सौंदर्य-मंडित करने की या उसे ध्वंस करने की महान् शक्ति विद्यमान है और इस मन के मौलिक उद्देश्य को, जो सत्य या परमात्मा की खोज है, समझे बिना यह शक्ति विनाशकारी सिद्ध होती है और

तब समाज कहता है—"हम व्यक्ति की शक्ति को एक विशेष आकार दें, उसे नियंत्रित करें।"

अतः मुझे लगता है कि शिक्षा का उद्देश्य ही व्यक्ति की इस शक्ति को मुक्त रूप से प्रवाहित करने में सहयोग देना है ताकि वह करुणा या सत्य या परमात्मा की खोज करे और जिससे वह एक सही मानव और सही नागरिक बन सके। लेकिन इसे पूर्णतया समझे बिना हमारे लिए अनुशासन का कुछ भी अर्थ नहीं होगा। बल्कि यह अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध होगा। अतः जब तक कि आप इस प्रकार से शिक्षित नहीं किए जाते और विद्यालय छोड़ने के पश्चात् विश्व में पूर्ण जीवन्तता, मेधा एवम् उस अनन्त शक्ति के साथ, जो सत्य की खोज के लिए आवश्यक है, प्रवेश नहीं करते तब तक समाज आपको निगलता रहेगा, आपको नष्ट करता रहेगा और आप भयंकर रूप से आजीवन दुखी बने रहेंगे। जिस प्रकार सरिता स्वयम् ही स्वयम् को सम्हालने के लिए तटों का निर्माण कर लेती है, इसी भाँति सत्य का अन्वेषण करने वाली हमारी शक्ति भी स्वयम् अपना अनुशासन बना लेती है, जिसमें किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं है। अन्त में जिस प्रकार सरिता सागर को खोज लेती है इसी प्रकार वह शक्ति भी मुक्ति को ढूंढ लेती है।

प्रश्नकर्ता : भारत में शासन करने के लिए अंग्रेज़ क्यों आए ?

कृष्णमूर्ति : आप देखते हैं कि जो व्यक्ति अधिक शक्ति-सम्पन्न, अधिक जीवंत, अधिक समर्थ और अधिक उत्साही होते हैं वे अपने से कम समर्थ पड़ोसियों के लिये या तो अधिक आनंद लाते हैं या अधिक पीड़ाएँ। एक समय था जब भारत ने सम्पूर्ण एशिया को कंपित कर दिया था। उसके निवासी सृजनात्मक जोश से परिपूर्ण थे और उन्होंने चीन, जापान, इंडोनेशिया, बर्मा आदि देशों में धर्म का प्रसार किया। दूसरे देश व्यापार करते थे, जो आवश्यक है, भले ही वह अपने साथ दुख लावे, लेकिन जीवन का यह भी एक अंग है। अद्भुत बात तो यह है कि जो सत्य या परमात्मा की खोज करते हैं वे अत्यधिक सामर्थ्यसम्पन्न होते हैं। वे इस अद्भुत शक्ति को केवल अपने में ही नहीं अपितु दूसरों में भी मुक्त रूप से प्रवाहित करते हैं और ये ही वे मानव हैं जो सही माने में क्रांतिकारी हैं न कि वे जो साम्यवादी, या समाज-सुधारक कहे जाते हैं। विजेता एवं शासक आते हैं और चले जाते हैं लेकिन मानवीय समस्याएँ सदैव से वैसी ही रही हैं। हममें से प्रत्येक दूसरों पर अधिकार चाहता है, वह स्वीकार या प्रतिरोध करना चाहता है लेकिन वह इन्सान जो सत्य की खोज कर रहा है, समस्त समाजों एवं संस्कृतियों से मुक्त होता है।

प्रश्नकर्ता : ध्यान के समय भी व्यक्ति सत्य की अनुभूति करता है ऐसा ज्ञात नहीं होता है। अतः कृपया क्या आप बताएँगे कि सत्य क्या है ?

कृष्णमूर्ति : हम क्षण भर के लिए इस प्रश्न को कि सत्य क्या है, एक ओर रख दें और हम पहले इस पर विचार करें कि ध्यान क्या है। आपकी पुस्तकों और आपके गुरुओं ने आपको जो कुछ ध्यान के सम्बन्ध में सिखाया है, उससे मेरी मान्यता बिलकुल ही अलग है। स्वयम् के मन को समझने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। यदि आप अपने ही विचारों को नहीं समझते अर्थात् स्वयम् को ही नहीं समझते तब तक आप चाहे कुछ भी सोचें उसका कोई अर्थ नहीं होगा। आत्मज्ञान की बुनियाद की अनुपस्थिति में हमारा सोचना हमें उपद्रवों की ओर अग्रसर करता है। प्रत्येक विचार का एक अर्थ है, एक स्थान है, और यदि हमारा मन केवल एक या दो विचारों को ही नहीं अपितु उठनेवाले प्रत्येक विचार को समझने में समर्थ नहीं है और वह केवल किसी विशेष विचार या प्रतिमा या कुछ शब्दों पर एकाग्र होना चाहता है जिसे साधारणतया ध्यान कहा जाता है तो वह एक प्रकार का आत्मसम्मोहन होगा, ध्यान नहीं।

अतः आप चाहे शान्त बैठे हों, चाहे चर्चा कर रहे हों या खेल रहे हों, क्या आप अपने मन में घटित होनेवाले प्रत्येक विचार, प्रत्येक प्रतिक्रिया, के प्रति सजग रह सकते हैं ? इसे करके देखें और आप महसूस करेंगे कि कितना कठिन है अपने विचार की प्रत्येक हरकत के प्रति सजग रहना क्योंकि विचार कितनी तीव्रता के साथ एक दूसरे के ऊपर इकट्ठे होते जा रहे हैं। लेकिन यदि आप अपने प्रत्येक विचार का परीक्षण करना चाहते हैं, यदि आप सचमुच इसके अर्थ को समझना चाहते हैं, तब आपको मालूम होगा कि आपके विचारों की गति धीमी होती जा रही है और तब आप उनका निरीक्षण कर सकते हैं। यह विचारों की गति का धीमा होना और प्रत्येक विचार का परीक्षण करना ही ध्यान की प्रक्रिया है और यदि आप इसमें प्रवेश करें तब आपको ज्ञात होगा कि प्रत्येक विचार के प्रति आपकी सजगता से आपका मन—जो अभी तक आपस में संघर्ष करते हुए एवं व्याकुल विचारों का विशाल भंडार था—अत्यधिक शान्त और पूर्णतया स्तब्ध होता जा रहा है। तब वहाँ कोई इच्छा, कोई जबरदस्ती और किसी भी प्रकार का भय नहीं रह जाता है और इसी शांति की अवस्था में सत्य का विस्फोट होता है। तब सत्य को अनुभव करनेवाले के रूप में 'आप' नहीं रह जाते हैं बल्कि मन की उस स्तब्धता में सत्य का स्वतः उद्घाटन होता है। जब तक 'आप' हैं वहाँ तक 'दर्शक' है और यह 'दर्शक' विचारों की ही उत्पत्ति है, विचारों की अनुपस्थिति में उसका कोई अस्तित्व नहीं।

प्रश्नकर्ता : यदि हम कोई गलती करते हैं और कोई व्यक्ति हमें वह गलती बताता है फिर भी हम वही गलती दुहराते क्यों हैं ?

कृष्णमूर्ति : इसके सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं ? आप फूल क्यों तोड़ते हैं, पौधों को क्यों विदीर्ण करते हैं, क्यों आप फर्निचर नष्ट करते हैं या कोई कागज़ इधर-उधर फेंक देते हैं, यद्यपि मुझे विश्वास है कि आपको यह सब नहीं करने के लिए कई बार कहा जा चुका होगा ? सावधानी से सुनें तो आपको यह ज्ञात हो सकेगा । ये सब करते समय आप अविचारशीलता की अवस्था में होते हैं; क्या नहीं होते हैं ? आप ये सब, जो स्पष्टतया मूर्खतापूर्ण हैं, इसीलिए करते हैं कि आप असावधान हैं, आप सोचते ही नहीं हैं, आपका मन तंद्रा में रहता है । जब तक कि आप पूर्णतया सजग नहीं हैं, स्वयम् ''उस स्थान'' पर उपस्थित नहीं हैं, तब तक मात्र आपको कुछ बातों को करने से मना करने का कुछ भी अर्थ नहीं होगा । लेकिन यदि आपके शिक्षक आपको विचारशील होने में, सही अर्थों में सजग होने में, वृक्षों, पक्षियों, सरिता और वसुधा के अद्भुत् ऐश्वर्य का आनंद के साथ अवलोकन करने में सहायता कर सकें, तब आपके लिए इशारा मात्र काफी होगा; क्योंकि तब आप बाहर की व अपने अन्दर की प्रत्येक वस्तु के प्रति संवेदनशील होंगे ।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक आपको सतत् यह कह-कहकर कि आप 'अमुक करें', ''अमुक नहीं करें' आपकी संवेदनशीलता ही नष्ट कर दी जाती है । आपके माता-पिता, शिक्षक, समाज, धर्म, पादरी और आपकी स्वतः की महात्वाकांक्षाएं, आपका लालच व ईर्ष्याएँ, ये सभी आपको कहते हैं—आप ''यह करें'', ''वह न करें'' । अतः आप इन समस्त 'करने' और 'नहीं करने' से मुक्त हों और साथ ही आप संवेदनशील भी हों ताकि आप सहज दयालु बन सकें, किसी को चोट नहीं पहुँचाएँ, इधर-उधर कागज नहीं फेंकें, राह पर का पत्थर बिना हटाए आगे नहीं बढ़ें—इन सारी बातों के लिए अतिशय विचारशीलता की आवश्यकता होती है । और शिक्षा का उद्देश्य निश्चित रूप से आपको कुछ उपाधियाँ प्रदान कर देना मात्र नहीं है, अपितु आपमें इस विचारशीलता की ज्योति को जागृत करना है ताकि आप संवेदनशील, सजग, जागृत, सावधान और दयालु बन सकें।

प्रश्नकर्ता : जीवन क्या है और हम सुखी कैसे हो सकते हैं ?

कृष्णमूर्ति : एक छोटे-से बच्चे ने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया है—जीवन क्या है ? यदि आप एक व्यापारी से यह पूछें तो वह कहेगा कि वस्तुएँ बेचना और पैसे कमाना

ही जीवन है क्योंकि वह प्रातः से रात्रि तक यही कार्य किए जा रहा है। एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति कहेगा कि जीवन कुछ पाने के लिए, कहीं पहुँचने के लिए 'संघर्ष' है। जिसने सम्मान और सामर्थ्य का संग्रह किया है या जो किसी संगठन या किसी देश का प्रधान है, उस व्यक्ति के लिए अपने द्वारा किए गए कार्यों का समूह ही जीवन है। और एक मजदूर के लिए, विशेषकर इस देश में, बिना क्षणभर के विश्राम के निरंतर कार्य किए जाना, गन्दा रहना, दुखी होना, आधे पेट रहना ही जीवन है।

अब क्या व्यक्ति इस कलह, इस संघर्ष, इस भुखमरी और इस पीड़ा के बीच में प्रसन्न रह सकता है ? निःसंदेह नहीं। अतः वह क्या करता है ? वह इसके संबंध में खोज नहीं करता, वह यह नहीं पूछता कि जीवन क्या है; लेकिन वह प्रसन्नता का एक दर्शन शास्त्र रचता है। वह दूसरों का शोषण करता हुआ बन्धुता की भावना के सम्बन्ध में चर्चा करता है। वह किसी 'महानता' या 'अतिमानव' का आविष्कार करता है ताकि वह अक्षय आनन्द को उपलब्ध कर सके। लेकिन जब आप प्रसन्नता की अभिलाषा करते हैं, तब उसका आगमन नहीं हो सकता। यह तो एक प्रासंगिक उपज है। यह तब प्रकट होती है जब आपमें करुणा हो, प्रेम हो, महत्त्वाकांक्षा न हो, जब आपका मन शांति से सत्य की खोज कर रहा हो।

प्रश्नकर्ता : हम आपस में क्यों लड़ते हैं ?

कृष्णमूर्ति : मैं सोचता हूँ, वयप्राप्त व्यक्ति भी यही प्रश्न करते हैं; क्या नहीं करते ? हम क्यों लड़ते हैं ? अमेरिका रूस के और चीन पश्चिम के विरोध में खड़े हैं। हम शांति की तो बातें करते हैं परन्तु तैयारी करते हैं युद्ध की; पर ऐसा क्यों ? क्योंकि अधिकांश व्यक्ति स्पर्धा करने में, लड़ने में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं, यह सीधा-सा तथ्य है; अन्यथा हम युद्ध बन्द कर देते। लड़ाई में एक ऊँचे जोश की भावना होती है और यह भी एक तथ्य है। हमने सोच रखा है कि हर प्रकार की लड़ाई अपने को जिंदा रखने के लिये आवश्यक है। लेकिन आप जानते हैं कि इस प्रकार का जोश अत्यन्त विध्वंसात्मक है। एक ऐसा भी जीवन है जहाँ संघर्ष नहीं है। एक कमल की तरह, एक फूल की तरह जो खिलता है, यह संघर्ष नहीं करता, बस वह है। किसी भी वस्तु का अपने आपमें होना ही उसका सौंदर्य है; लेकिन हम इसके लिए शिक्षित ही नहीं किए जाते। हम सभी तो इसलिए शिक्षित किए जाते हैं कि हम सैनिक, वकील, पुलिस, प्राध्यापक, प्राचार्य, व्यापारी बनने के लिए प्रतिस्पर्धा करें, हम सबसे आगे निकल जाना चाहते हैं, हम सभी सफलता चाहते हैं। बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी हैं

जो बाह्य नम्रता का दिखावा करते हैं परन्तु वास्तव में आनन्दित व्यक्ति तो वे ही हैं जिनमें आन्तरिक नम्रता है, जो किसी से लड़ते नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : हमारा मन दूसरे व्यक्तियों का और खुद का भी दुरुपयोग क्यों करता है ?

कृष्णमूर्ति : दुरुपयोग से आपका क्या तात्पर्य है ? वह मन, जो महत्त्वाकांक्षी है, लालची है, ईर्ष्यालु है, वह मन जो विश्वास और परम्परा से बोझिल है, वह मन जो क्रूर है और मनुष्यों का शोषण करता है, निश्चित रूप से उपद्रवों की सृष्टि करता है और वह एक ऐसे समाज का निर्माण करता है जो संघर्षों से परिपूर्ण है। जहाँ तक मन स्वयम् को ही नहीं समझ लेता है, वहाँ तक उसके कार्य निश्चित रूप से विनाशकारी होंगे। जब तक मन आत्मज्ञान नहीं करता तब तक वह दुश्मनी पैदा करेगा ही। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप केवल पुस्तकें ही नहीं पढ़ें अपितु आप अपने आपको भी जानें। कोई भी पुस्तक भले ही आपको आत्मज्ञान के सम्बन्ध में कुछ जानकारी दे दे; परन्तु वह जानकारी आत्मज्ञान कदापि नहीं है। जब मन स्वयम् को अपने सम्बन्धों के आईने में देखता है तब इस निरीक्षण के माध्यम से ही आत्मज्ञान का आगमन होता है और आत्मज्ञान के बिना हम इस उपद्रव को, इस घनी पीड़ा को, जिसका हमने ही निर्माण किया है, कभी नहीं मिटा सकते।

प्रश्नकर्ता : सफलता को खोजनेवाला मन क्या उस मन से भिन्न है जो सत्य की खोज करता है ?

कृष्णमूर्ति : मन एक ही है चाहे वह सफलता की खोज करता हो या सत्य की। लेकिन जब तक मन सफलता के पीछे भागा जा रहा है तब तक वह सत्य की खोज नहीं कर सकता। सत्य को समझने का अर्थ है जो वस्तु जैसी है वैसी ही देखना और उस वस्तु में भी सत्य की खोज करना जो असत्य है।



२५. संघर्ष

क्या आ प ने क भी इस बातपर गौर किया है कि व्यक्ति बड़े होने के साथ-साथ जीवन का संपूर्ण आनन्द क्यों खो बैठते हैं ? इस समय आपमें से अधिकांश व्यक्ति जो युवा हैं, काफी प्रसन्न हैं। वैसे आपकी भी कुछ समस्याएँ हैं, परीक्षाओं की चिन्ता है, लेकिन इन सभी मुसीबतों के बावजूद भी आपके जीवन में कुछ आनन्द है; क्या नहीं है ? आप जीवन को सहज और सरल रूप से स्वीकार करते हैं, वस्तुओं को सरलता व आनन्द से देखते हैं। परन्तु ऐसा क्यों है कि जब हम बड़े होते हैं तो हमें हर्ष और आनन्द का वह सन्देश मिलना बन्द हो जाता है जो मानो किसी और लोक से आता है एवं जिसकी अर्थवत्ता कहीं बड़ी है। क्यों हममें से अधिकांश इस तथाकथित प्रौढ़ता को प्राप्त होने के साथ ही साथ जीवन के आनन्द व सौंदर्य के प्रति, इस मुक्त गगन एवं अद्भुत वसुन्धरा के प्रति, असंवेदनशील और उदासीन होते चले जाते हैं ?

जब कोई स्वयं अपने से इस प्रकार का प्रश्न पूछता है तो उसके मन में कई विचार उठने लगते हैं। एक विचार तो यह हो सकता है कि हम अत्यधिक आत्मकेंद्रित हैं—हम 'कुछ बनने', 'कुछ पाने' और ''अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने'' के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं; हमपर अपने बालबच्चों को पालने की व अन्य जिम्मेदारियाँ हैं, हमें धन भी कमाना होता है। ये समस्त बाहरी वस्तुएँ शीघ्र ही हम पर हावी हो जाती हैं और इस प्रकार हम जीवन का आनन्द खो बैठते हैं। यदि आप अपने चारों ओर के प्रौढ़ व्यक्तियों की मुद्राओं को देखें तो आपको ज्ञात होगा कि उनमें से अधिकांश कितने दुखी हैं; वे कितने चिंतित, कितने रुग्ण, कितने उदासीन, कितने अकेले और कभी कभी कितने चिड़चिड़े और मनहूस बन जाते हैं। क्या आप अपने आप से कभी इसका कारण पूछते हैं ? और आपने यदि अपने आपसे इसका कारण कभी पूछा भी, तो फिर आपमें से अधिकांश व्यक्ति केवल व्याख्याओं से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

कल सन्ध्या मैंने एक नाव को सरिता में देखा, जो पछुआ हवाओं के साथ पूरे वेग से बही जा रही थी। नाव काफी बड़ी थी, जो लकड़ियों से लदी हुई थी। ये लकड़ियाँ शहर में जलाई जाएँगी। सूर्य डूब रहा था और खुले आसमान के तले यह नाव अद्भुत सौंदर्यमयी प्रतीत हो रही थी। नाविक का कार्य तो कुछ भी नहीं रह गया

था, वह तो केवल नाव को राह भर दिखा रहा था क्योंकि हवा स्वयं ही सारा कार्य कर रही थी। इसी प्रकार यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति इस संघर्ष और कलह की समस्या को समझ ले तो मैं सोचता हूँ कि हम अपने मुँह पर मुस्कान लिए हुए आनन्द के साथ, बिना प्रयत्नों के, जी सकने में समर्थ होंगे।

मेरा खयाल है कि हमारे ये प्रयत्न और संघर्ष ही, जिनमें हम अपने जीवन का करीब-करीब प्रत्येक क्षण खर्च किए चले जा रहे हैं, हमारी पीड़ा के कारण हैं। यदि आप अपने आसपास के प्रौढ़ व्यक्तियों का निरीक्षण करें तो आपको विदित होगा कि उनमें से अधिकांश व्यक्तियों का पूरा का पूरा जीवन ही तमाम कलह की एक शृंखला मात्र बन गया है—स्वयं अपने साथ के, अपनी पत्नी या अपने पति या अपने पड़ोसी के साथ के कलह की शृंखला। और ये ही अविराम कलह हमारी शक्ति का नाश किए जा रहे हैं। वह व्यक्ति, जो आनन्दित है और सचमुच प्रसन्न है, प्रयत्नों में नहीं बंधता है। प्रयत्नों से रहित होने का यह अर्थ नहीं कि आप निष्क्रिय हो जाएँ, उदासीन और मन्द हो जाएँ, बल्कि इसके विपरीत सचाई तो यह है कि जो समझदार हैं, जो विलक्षण रूप से बुद्धिमान हैं, केवल वे ही व्यक्ति प्रयत्नों से, संघर्षों से सचमुच मुक्त हैं।

लेकिन जब हम इस "प्रयत्न-शून्यता" के सम्बन्ध में सुनते हैं, तब हम भी उसी प्रकार जीना पसन्द करते हैं, और एक ऐसी अवस्था प्राप्त करना चाहते हैं जिसमें न तो प्रयत्न हो और न तो संघर्ष हो। इस प्रकार हम एक उद्देश्य, एक आदर्श, खड़ा कर लेते हैं और उसके लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर देते हैं; और ज्योंही हम यह प्रयत्न प्रारम्भ कर देते हैं त्योंही हम जीवन का आनन्द खो देते हैं। इस प्रकार हम पुनः इन प्रयत्न और संघर्ष के घेरे में फँस जाते हैं। संघर्ष का उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो सकता है; परन्तु समस्त संघर्ष आवश्यक रूप से एक ही जैसे हैं। कोई समाज-सुधार के लिए, तो कोई परमात्मा की प्राप्ति के लिए, तो कोई अपनी पत्नी या अपने पति अथवा अपने पड़ोसी के साथ के अपने सम्बन्धों को सुधारने के लिए संघर्ष कर सकता है अथवा कोई गंगा के किनारे बैठ सकता है, या कोई गुरू के चरणों को पूज सकता है, लेकिन ये सभी के सभी संघर्ष हैं, प्रयत्न हैं। अतः संघर्ष का उद्देश्य क्या है इस बात का महत्त्व नहीं; महत्त्व तो इस बात का है कि हम इस संघर्ष को कैसे समझें?

अब हम यह देखें कि क्या हमारे मन के लिए यह सम्भव है कि वह आकस्मिक रूप से कुछ क्षणों के लिए ही नहीं, अपितु हमेशा के लिए इस संघर्ष से, प्रयत्न से, मुक्त हो जाए ताकि यह आनन्द की एक ऐसी अवस्था को आविष्कृत कर सके जहाँ उच्च या हीन, अच्छा या बुरा का भाव ही विसर्जित हो जाए?

हमारी कठिनाई यह है कि हमारा मन स्वयं को हीन महसूस कर लेता है और इसीलिए वह "कुछ होने" या 'कुछ बनने" के लिए संघर्ष करता है, अथवा वह अपनी ही परस्पर-विरोधी इच्छाओं के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न करता है। लेकिन अभी हमें इसके कारणों को खोजने की आवश्यकता नहीं है कि हमारा मन इस संघर्ष से क्यों परिपूर्ण है? हममें से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति यह जानता है कि हममें यह आंतरिक और वाह्य संघर्ष क्यों है? हमारी ईर्ष्या, हमारा लोभ, हमारी महत्त्वाकांक्षा और हमारी यह प्रतिस्पर्धा, जो हमें निष्ठुर कुशलता की ओर अग्रसर करती है, जाहिर है कि संघर्षों के ये ही कारण हैं जो हमें संघर्ष करने को बाध्य करते हैं। अतः यह जानने के लिए कि हम संघर्ष क्यों करते हैं, हमें मनोविज्ञान की पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम यह खोजें कि क्या हमारा मन पूर्णतया संघर्ष से मुक्त हो सकता है?

जब हम संघर्ष करते हैं तो हमारा यह संघर्ष हम "जो है" और हमें "जैसा होना चाहिए" के ही बीच तो है। अब क्या कोई इस संघर्ष की सम्पूर्ण प्रक्रिया को बगैर व्याख्या किए समझ सकता है ताकि यह विसर्जित हो जाए? क्या हमारा मन भी उस नाव की भाँति, जो हवा के साथ बही जा रही है, संघर्ष से रहित हो सकता है? हमारे सामने यही प्रश्न है। यह नहीं कि हम किस प्रकार उस संघर्षरहित अवस्था को उपलब्ध करें? क्योंकि ऐसी अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न भी संघर्ष की ही तो प्रक्रिया हुई। अतः वह अवस्था कभी साधी नहीं जा सकती है। लेकिन यदि आप क्षण प्रतिक्षण इस बात का निरीक्षण करें कि आपका मन किस प्रकार अविराम संघर्ष किए चला जा रहा है, और यदि आप इस वस्तुस्थिति को, इसे बदलने या इस पर उस अवस्था को थोपने का, जिसे आप शांति कहते हैं, प्रयत्न किए बिना केवल देखते रहें, तब आपको महसूस होगा कि आपका मन अपने आप संघर्ष के प्रति विसर्जित होता जा रहा है, और यही वह अवस्था है जब यह अतिशय सीख सकता है। तब सीखना उसके लिए केवल जानकारी संग्रह करना नहीं रह जाता है. अपितु यह उस अद्भुत विपुलता की खोज कर लेता है जो मन की सीमाओं से परे है और वह मन, जो इसकी खोज कर लेता है, अनन्त आनन्द को उपलब्ध हो जाता है।

आप अपना ही निरीक्षण करें तो आपको ज्ञात होगा कि आप प्रातः से रात्रि तक किस प्रकार संघर्ष करते रहते हैं और किस प्रकार आपकी शक्ति इस संघर्ष से नष्ट हो रही है। यदि आप अपने संघर्षों के कारणों की केवल व्याख्या करते हैं तो आप इन व्याख्याओं में ही गुमराह हो जाएँगे और संघर्ष चलता ही रहेगा। इसके विपरीत यदि आप व्याख्याएँ नहीं करते हुए अत्यन्त स्तब्धता से अपने मन का निरीक्षण करें, यदि

आप अपने मन को उसके ही संघर्षों के प्रति सजग रहने दें, तब आपको ज्ञात होगा कि एक ऐसी अवस्था का आगमन हो रहा है जिसमें संघर्ष ही नहीं है। वहाँ तो केवल आश्चर्यचकित कर देनेवाली सजगता है। उस जागृतावस्था में ऊँच-नीच का भाव ही नहीं रह गया है, तब न तो कोई बड़ा है न कोई छोटा है और न कोई गुरू है। तब चूँकि हमारा मन पूर्णतया शान्त एवं सजग हो जाता है, अतः ये समस्त मूर्खताएँ विलीन हो जाती हैं और वह मन जो पूर्णतया सजग होता है, आनन्द को उपलब्ध हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : मैं कोई कार्य करना चाहता हूँ, परन्तु अनेक बार प्रयत्न करने के बावजूद भी मैं उसमें सफल नहीं हो पाया हूँ। अब क्या मैं सब प्रयत्न बन्द कर दूँ या चालू रखूं ?

कृष्णमूर्ति : सफल होने का अर्थ है कहीं पहुँचना, कुछ प्राप्त करना। और हम सफलता की पूजा करते हैं; नहीं करते क्या? जब एक गरीब लड़का बड़ा होने पर करोड़पति बन जाता है, अथवा एक साधारण व्यक्ति जब प्रधान-मंत्री बन जाता है तब उसकी वाहवाही होती है, उसका गुणगान किया जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक लड़का या लड़की किसी-न-किसी रूप में सफलता चाहती रहती है।

अब हम देखें कि क्या सफलता नाम की कोई वस्तु भी है या यह केवल एक विचार है जिसके पीछे मानव भागता है? क्योंकि जिसी क्षण आप कहीं पहुँच जाते हैं, उसी क्षण वहाँ से आगे आपको एक स्थान दिखाई देता है, जहाँ आपको अभी तक पहुँचना बाकी है। जहाँ तक आप सफलता के पीछे भाग रहे हैं, फिर चाहे वह सफलता किसी भी दिशा में क्यों न हो, वहाँ तक यह जरूरी है कि हम कलह में होंगे, संघर्ष में होंगे। क्या नहीं होंगे? यहाँ तक कि जब आप कहीं पहुँच भी जाते हैं तब भी आपको विश्राम नहीं मिल पाता; क्योंकि तब आप कुछ और ऊपर जाना चाहते हैं, कुछ और अधिक पाना चाहते हैं। क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं? सफलता की अभिलाषा करने का अर्थ है—'अधिक' की इच्छा करना और वह मन, जो सतत 'अधिक' की इच्छा कर रहा है, बुद्धिमान मन नहीं है। इसके विपरीत ऐसा मन नीरस और नासमझ मन है; क्योंकि इसकी 'अधिक' की माँग में ही सतत 'संघर्ष' निहित है, जो विविध रूपों में समाज द्वारा निर्मित किया जाता है।

आखिर यह संतोष क्या है? यह असन्तोष क्या है? असन्तोष का अर्थ है—'अधिक' के लिए संघर्ष और संतोष का अर्थ है—उस संघर्ष का अन्त। लेकिन जब तक आप इस 'अधिक' की सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही नहीं समझ लेते और यह

नहीं ज्ञात कर लेते कि मन इसे क्यों चाहता है तब तक आप सन्तोष नहीं प्राप्त कर सकते ।

माना आप परीक्षा में असफल हो गए हैं । तब आप पुनः परीक्षा देते हैं; क्या नहीं देते ? परीक्षाएँ प्रत्येक अवस्था में दुर्भाग्यपूर्ण हैं क्योंकि ये किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु का संकेत नहीं देतीं और न ही ये आपकी वास्तविक बुद्धिमत्ता का ही उद्घाटन करती हैं । परीक्षा उत्तीर्ण करना प्रायः हमारी स्मृति की चतुरता है या यह एक संयोग का विषय है । लेकिन आप तो परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना ही चाहते हैं और यदि आप असफल भी हो गए तो पुनः पुनः प्रयत्न करते हैं । हममें से अधिकांश व्यक्तियों के दैनिक जीवन में भी यही प्रक्रिया चलती रहती है । हम तो बस किसी वस्तु के लिए संघर्ष किये जा रहे हैं और हम कभी क्षणभर रुककर यह जाँच भी नहीं करते कि क्या वह वस्तु संघर्ष के योग्य भी है जिसके पीछे हम भागे जा रहे हैं ? हमने कभी स्वयं से यह पूछा ही नहीं है कि क्या वह वस्तु संघर्ष के योग्य है ? हम तो बस, अपने माता-पिता, अपने समाज, अपने समस्त पैगंबरों और गुरुओं की मान्यताएँ पकड़े बैठे हैं ! 'सफलता' और 'असफलता' की संज्ञाएँ देना हमसे तभी बंद हो सकेगा जब कि हम इस 'अधिक' के संपूर्ण अर्थ को भली भाँति समझ लेंगे ।

आप देखते हैं कि हम असफल होने से, गलतियाँ करने से, परीक्षाओं में ही नहीं अपितु जीवन में भी, कितने भयभीत हैं । गलती करना अत्यधिक बुरा माना जाता है, क्योंकि इससे व्यक्ति हमारी आलोचना करते हैं, लोग हमें झिड़कते हैं । लेकिन आखिर आप गलतियाँ क्यों नहीं करें ? क्या विश्व के सारे ही व्यक्ति गलतियाँ नहीं कर रहे हैं ? और यदि आप गलतियाँ नहीं भी करें तो क्या यह विश्व इस खौफनाक अवस्था से मुक्त हो जाएगा ? यदि आप गलतियाँ करने से भयभीत हैं, तो आप कभी नहीं सीख सकते । बड़े व्यक्ति हर समय गलतियाँ किए जा रहे हैं, लेकिन वे यह नहीं चाहते कि आप गलतियाँ करें । वे इस प्रकार आपकी सहज शक्ति को ही कुंठित कर देते हैं । पर क्यों ? इसलिए कि उन्हें इस बात का भय है कि कहीं आप प्रत्येक वस्तु का परीक्षण कर, निरीक्षण कर, संदेह कर और गलतियाँ कर अपने लिए किसी ऐसी वस्तु की खोज न कर लें कि जिससे आप माता-पिता, समाज और परम्परा के अधिकारों से मुक्त हो जाएँ ? यही कारण है कि आपके समक्ष सदैव सफलता का आदर्श रखा जाता है ताकि आप उसका अनुकरण करते रहें । आपको यह महसूस हुआ होगा कि यह 'सफलता' सम्मान का ही दूसरा नाम है । यहाँ तक कि एक संत के लिए भी उसकी तथाकथित आध्यात्मिक उपलब्धियों में 'सम्माननीय' होना आवश्यक है, अन्यथा उसे मान्यता नहीं मिलेगी, उसके अनुयायी नहीं होंगे ।

अतः हम सदैव सफलता के रूप में "अधिक" के लिए सोचते जा रहे हैं और इस 'अधिक' का मूल्यांकन प्रतिष्ठित समाज द्वारा किया जाता है। दूसरे शब्दों में, समाज ने बड़ी चतुराई से कुछ कसौटियाँ स्थापित की हैं, जिनके अनुसार आप 'सफल' या 'असफल' घोषित कर दिए जाते हैं। परन्तु यदि आप कोई कार्य प्रेम से व अपने पूरे सामर्थ्य से करते हैं तो आपको सफलता या असफलता से मतलब ही नहीं रहता। विश्व में बुद्धिमान पुरुष हों तब तो? लेकिन दुर्भाग्य से बहुत थोड़े ही व्यक्ति बुद्धिमान हैं परन्तु आपको इन समस्त बातों के सम्बन्ध में कोई नहीं कहता। बुद्धिमान् व्यक्ति का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह सचाई को देखे और समस्या को समझे—'सफलता' या 'असफलता' की दृष्टि से नहीं। हम इन पहलुओं से केवल तभी सोचते हैं, जब हम सचमुच उस कार्य को जिसे कि हम कर रहे हैं, प्रेम से नहीं करते।

प्रश्नकर्ता : हम मूल रूप में स्वार्थी क्यों हैं? हम अपने व्यवहारों में निःस्वार्थी होने का कितना ही प्रयत्न क्यों न करें लेकिन जब हमारे स्वयं का स्वार्थ बीच में खड़ा होता है तब हम आत्मकेन्द्रित और दूसरों के प्रति उदासीन बन जाते हैं।

कृष्णमूर्ति : मेरा खयाल है कि कोई स्वयं को 'स्वार्थी' या 'निःस्वार्थी' का नाम न दे और यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मन पर इन शब्दों का विलक्षण प्रभाव पड़ता है। आप किसी को 'स्वार्थी' कहिए तो वह अत्यन्त दुखी हो जाएगा, किसी को 'प्रोफेसर' कहिए और आप देखेंगे कि आपका उससे मिलना विशेष रूप का हो जाएगा; किसी को महात्मा कहिए तो उसके चारों ओर प्रभामंडल फैल जाएगा। यदि आप स्वयं 'वकील', 'व्यापारी', 'राज्यपाल', 'नौकर', 'परमात्मा' आदि शब्दों के प्रति अपनी ही प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करें तो आपको ज्ञात होगा कि आपके स्नायु और आपका मन इनसे कितना प्रभावित होता है। ऐसे शब्द जो किसी व्यक्ति के कार्य को सूचित करते हैं, वे प्रायः उसके ओहदे और पद का भी आभास देते हैं। अतः सर्वप्रथम यह आवश्यक हैं कि हम किन्हीं शब्दों के साथ अपनी भावनाओं को जोड़ देने की अचेतन आदत से मुक्त हों। आपका मन इस प्रकार सोचने का अभ्यस्त बन गया है कि 'स्वार्थी' शब्द अत्यन्त बुरा है, अनात्मिक है, और जिस क्षण आप इस नाम का प्रयोग करते हैं, उसी क्षण उस व्यक्ति के प्रति जिसके लिए आप इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं आपका मन निंदा से भर जाता है। अतः जब आप यह प्रश्न पूछते हैं—"हम मूल रूप से स्वार्थी क्यों है?" तब इसमें पहले से ही निंदा की भावना समाविष्ट है।

इस बात से सचेत रहना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि कुछ शब्द हमारे स्नायविक,

भाविक और बौद्धिक प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकृति या निंदा पैदा करते हैं। उदाहरण के लिए, ज्यों ही आप स्वयं को 'ईर्ष्यालु' कह देते हैं त्यों ही आप आगे की खोज बन्द कर देते हैं। इस प्रकार आप ईर्ष्या की सम्पूर्ण प्रक्रिया में प्रवेश करना ही बन्द कर देते हैं। इसी प्रकार विश्व में ऐसे कई व्यक्ति हैं जो यह कहा करते हैं कि वे 'बंधुत्व' के लिए कार्य कर रहे हैं, फिर भी उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य इस बन्धुता से विपरीत दिशा में होता है। लेकिन वे इस सत्य को नहीं देखते; क्योंकि 'बन्धुता' शब्द का उन्होंने एक विशेष अर्थ मान रखा है और वे उसी का अनुगमन कर रहे हैं। वे इसके आगे कोई खोज नहीं करना चाहते और इसीलिए वे केवल इन शब्दों द्वारा उत्तेजित की गई स्नायविक और भाविक प्रतिक्रियाओं को ही जान पाते हैं। वे कभी शब्दों के सत्य को नहीं खोज पाते।

अतः सर्वप्रथम बात तो यह है कि हम किन्हीं शब्दों के साथ जुड़ी हुई प्रशंसा और निंदा की भावनाओं के बगैर हम वास्तविकताओं का परीक्षण करें, उन्हें जानें। यदि आप सत्य को निंदा या प्रशंसा के बगैर देख सकें तब आपको मालूम होगा कि उस निरीक्षण की प्रक्रिया में ही वे समस्त दीवारें ढह जाती हैं जिनका निर्माण मन ने सचाई और स्वयं के बीच किया था।

ज़रा आप यह करके देखें कि आप एक ऐसे व्यक्ति से किस प्रकार मिलते हैं जिसे लोग 'महान्' या बड़ा आदमी कहते हैं। 'महान् व्यक्ति' शब्दों ने आपको प्रभावित कर रखा है। समाचार-पत्र, पुस्तकें, अनुयायी सभी कहते हैं कि वह 'महान्' व्यक्ति है और आपके मन ने यह स्वीकार कर लिया है। यह भी सम्भव है कि आप ठीक इसके विपरीत अपनी धारणा बना लें और कहने लगे–'वह कितना बेवकूफ है,' 'वह कतई महान् नहीं है'। और यदि आप अपने मन को इन समस्त प्रभावों से मुक्त कर लें और सहजता से सत्य को देखें तब आप महसूस करेंगे कि व्यक्ति से आपका मिलना बिलकुल ही भिन्न प्रकार का हो जायेगा। इसी प्रकार "गँवार" शब्द भी गरीबी, गन्दगी, मैलापन आदि की भावनाओं से युक्त है और वह आपको प्रभावित करता है; लेकिन हमारा मन जब इन प्रभावों से मुक्त हो जाता है, जब यह न तो निन्दा करता है और न प्रशंसा, लेकिन सिर्फ देखता है, निरीक्षण करता है, तब वह स्वकेंद्रित ही नहीं रह जाता और वहाँ स्वार्थी या निस्वार्थी बनने की तब समस्या ही नहीं रह जाती।

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों है कि व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक सदा ही प्रेम चाहता है और यदि उसे यह प्रेम नहीं मिलता है तो अपने अन्य साथियों की तरह उसका मन संतुलित और विश्वास से परिपूर्ण नहीं हो पाता है?

कृष्णमूर्ति : क्या आप सोचते हैं कि उसके साथी विश्वास से परिपूर्ण हैं? भले

ही वे अकड़कर चलते हों, वृथाभिमान करते हों, लेकिन आपको मालूम होना चाहिए कि इस विश्वास के दिखावे के पीछे अधिकांश व्यक्ति रिक्त हैं, उदासीन हैं, सुस्त हैं, उनमें विश्वास है ही नहीं। और हम यह चाहते ही क्यों हैं कि लोग हमें प्रेम करें? क्या आप अपने माता-पिता, अपने अध्यापकों और अपने मित्रों से प्रेम नहीं चाहते? और यदि आप बड़े हैं तो फिर आप अपनी पत्नी, या अपने पति या गुरु से प्रेम चाहते हैं। हममें यह कभी न समाप्त होनेवाली प्रेम पाने की लालसा ही क्यों है? कृपया आप सावधानी से सुनें। आप प्रेम महज इसलिए चाहते हैं कि आप स्वयं प्रेम ही नहीं करते हैं; लेकिन जिस क्षण आप प्रेम करने लगते हैं त्यों ही यह समस्या ही समाप्त हो जाती है। तब आप इस बात की परवाह नहीं करते कि कोई आपको प्रेम कर रहा है या नहीं। जहाँ तक आप प्रेम की माँग करते हैं, वहाँ तक आपमें प्रेम ही नहीं होता और यदि आप स्वयम् प्रेम की अनुभूति नहीं करते हैं तो आप कुरूप हैं, कठोर हैं, निर्दयी हैं: फिर क्यों कोई आपको प्रेम करें? बिना प्रेम के आप एक मृत वस्तु हैं और एक मुर्दा वस्तु भले ही प्रेम की अपेक्षा करे पर फिर भी वह मुर्दा ही रहेगी। इसके विपरीत यदि आपका हृदय प्रेम से परिपूर्ण है तो आप कभी भी प्रेम के लिए भीख नहीं माँगते; तब आप अपना भिक्षापात्र प्रेम के लिए किसी के आगे नहीं फैलाते। जो हृदय खाली-खाली होता है वही स्वयम् को भरना चाहता है परन्तु एक खाली हृदय हमेशा खाली ही बना रहेगा, भले ही वह गुरुओं की ओर भागता रहे अथवा अन्य सैकड़ों मार्गों से प्रेम की खोज करता फिरे।

प्रश्नकर्ता : प्रौढ़ व्यक्ति चोरी क्यों करते हैं?

कृष्णमूर्ति : क्या आप यदा-कदा चोरी नहीं करते? क्या आपको ज्ञात नहीं है कि एक छोटा बच्चा वह वस्तु, जिसकी उसे जरूरत होती है, दूसरे की चुरा लिया करता है? ठीक इसी भाँति हम जीवन भर किया करते हैं फिर चाहे हम युवा हों या वृद्ध। फर्क केवल इतना ही है कि बड़े आदमी यह अधिक धूर्तता से और अधिक सुहावने शब्द देकर करते हैं। वे भी धन, शक्ति व प्रतिष्ठा चाहते हैं और इसे पाने के लिए बहाने बनाते हैं, उपाय करते हैं, सिद्धांत गढ़ते हैं। वे भी चोरी करते हैं; पर वे इसका नाम चोरी नहीं देते। इसे वे कोई सम्मानजनक शब्द देते हैं। अब प्रश्न है कि हम चोरी क्यों करते हैं? पहली बात तो यह है कि चूँकि सारे समाज की रचना ही इस प्रकार की है कि अनेकों व्यक्ति जीवन की आवश्यकताओं से वंचित रह जाते हैं। वे पूरा अन्न, पूरा कपड़ा और पूरा आवास नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इसीलिए ऐसे व्यक्ति कुछ चोरी कर लिया करते हैं। समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो इसलिए नहीं चुराते हैं कि

उन्हें भरपेट खाने को नहीं मिलता; बल्कि इसलिए कि वे समाज-द्रोही हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए चोरी एक खेल है, एक उत्तेजना है—जिसका अर्थ ही यह है कि उन्हें सही शिक्षा नहीं मिली है। सही शिक्षा का अर्थ केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए रट लेना नहीं है; अपितु जीवन के अर्थ को समझना है। एक ऊँचे स्तर की भी एक चोरी है, और वह है दूसरे व्यक्ति के विचारों की चोरी, ज्ञान की चोरी। जब हम किसी भी रूप में "अधिक" चाह रहे हैं, तब हम चोरी कर रहे हैं।

ऐसा क्यों है कि हम सदैव माँगते हैं, हाथ फैलाते हैं, चोरी करते हैं, अभिलाषा करते हैं? केवल इसीलिए कि हम स्वयम् में खाली हैं, हम मानसिक जगत में, अपने आंतरिक जगत में, बिलकुल रीते ढोल के समान हैं; चूँकि हम स्वयम् रीते हैं, अतः हम अपने आपको भरने के लिए केवल चोरी ही नहीं करते, अपितु दूसरों का अनुकरण भी करते हैं। अनुकरण भी एक प्रकार की चोरी ही है। आप स्वयम् "कुछ नहीं" हैं, लेकिन अमुक 'कुछ' है। अतः आप उसका अनुकरण कर उसका कुछ अंश स्वयम् प्राप्त करना चाहते हैं। यह भ्रष्टता हमारे सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त है और हममें से बहुत ही कम इससे मुक्त हो पाते हैं। अतः महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि क्या यह आंतरिक रिक्तता या खालीपन कभी भरा भी जा सकता है? जहाँ तक हमारा मन इसे भरने का प्रयत्न करता रहेगा वहाँ तक यह हमेशा रिक्त ही बना रहेगा। जब हमारा मन स्वतः की रिक्तता को भरने के सारे प्रयत्न ही छोड़ देता है तभी यह रिक्तता विसर्जित हो सकेगी।

२६. धार्मिक जीवन

आप जानते हैं कि अत्यंत मौन रहना, भव्यता व मनःशान्ति के साथ एकदम सीधा बैठना कितना सौंदर्यमय है–और यह उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि पत्तियोंरहित वृक्षों का अवलोकन करना। क्या आपने प्रभात के सुनहरे नीले आसमान के सामने खड़े इन सुन्दर वृक्षों को कभी देखा है ? समस्त नग्न शाखाएँ वृक्ष के सौंदर्य को अभिव्यक्त कर रही होती हैं; और वृक्षों का सौंदर्य भी अद्भुत होता है–फिर चाहे वसंत हो, शरद हो या ग्रीष्म हो। ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ उनके सौंदर्य में भी परिवर्तन होता जाता है और इस सौंदर्य को देखना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि अपनी जीवन-प्रक्रिया पर विचार करना।

हम चाहे रूस में रहें, चाहे अमेरिका में रहें, चाहे भारत में; परन्तु हम सभी मानव हैं और मानव होने के नाते हमारी समस्याएँ भी समान हैं। अत: हिन्दू, अमरीकी, रूसी, चीनी या अन्य के रूप में अपने बारे में सोचना कितना हास्यास्पद है। विश्व राजनैतिक, भौगोलिक, जातीय एवं आर्थिक विभागों में बँटा हुआ है, लेकिन इन विभागों पर ज़ोर देकर हम केवल पारस्परिक विरोध एवं नफरत ही पैदा करते हैं। थोड़े समय के लिए अमरीकी भले ही अधिक समृद्ध हों, उनके पास ज़्यादा तड़क-भड़क के साधन हों, अधिक रेडियो और अधिक टेलीवीजन हों, उनके पास आवश्यकता से अधिक अनाज हो, प्रत्येक वस्तु की बहुतायत हो, जब कि इस देश में अत्यन्त भुखमरी है, गंदगी है, घनी आबादी है, बेरोजगारी है; लेकिन हम चाहे कहीं के भी रहने वाले क्यों न हों, हम सभी मानव हैं और मानव होने के नाते हम सभी अपनी मानवीय समस्याओं का निर्माण करते रहते हैं। अतः यह समझ लेना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि एक हिंदू, अमरीकी या अँग्रेज अथवा श्वेत, गेहुँए, काले या पीले व्यक्ति के रूप में विचार कर हम अपने बीच में अनावश्यक खाइयों का निर्माण ही करते रहते हैं।

हमारी प्रमुख कठिनाइयों में से एक कठिनाई यह है कि सारे ही विश्व में आधुनिक शिक्षा का प्रयोजन हमें केवल यांत्रिक बना देना मात्र रह गया है। हमें सिखाया जाता है कि हम किस प्रकार जेट वायुयान उड़ाएँ, कैसे हम सुगम मार्गों का निर्माण करें, कैसे मोटरें बनाएँ, किस प्रकार सागर के अंतस्थल में प्रवेश करनेवाली पनडुब्बियों का संचालन करें और इस सम्पूर्ण यांत्रिकता की प्रक्रिया में हम यह तो भूल ही जाते हैं कि हम मानव भी हैं; इसका अर्थ ही यह हुआ कि हम अपने हृदय को

मन की सारी वस्तुओं से भरे जा रहे हैं। अमेरिका में स्वचालित यंत्रों द्वारा अधिकाधिक व्यक्ति कार्य के अधिक घण्टों से मुक्त होते जा रहे हैं जैसा कि इस देश में भी आज हो रहा है, और तब हमलोगों के सामने यह गंभीर समस्या उठेगी कि हम किस प्रकार फुरसत के समय का उपयोग करें। आज जिन भारी-भारी उद्योगों में हजारों व्यक्ति कार्य कर रहे हैं, भविष्य में वह कार्य संभवतः कुछ ही टेकनिशीयन द्वारा पूरा कर लिया जायेगा और तब उन व्यक्तियों का क्या होगा जो वहाँ पहले कार्य करते थे और जिनके पास अब अधिक ज़्यादा फुरसत का समय होगा। अतः शिक्षा जब तक इसे और इसी प्रकार की अन्य मानवीय समस्याओं को अपने हाथ में नहीं लेती तब तक हमारा जीवन खोखला ही बना रहेगा।

आज का हमारा जीवन अत्यधिक खाली-खाली जैसा है। आपके पास भले ही महाविद्यालय की उपाधि हो, भले ही आप विवाह कर लें और सम्पन्न बन जाएँ, भले ही आप अत्यंत चतुर हों और आप दुनिया भर की जानकारी संग्रह कर लें, चाहे आप नवीनतम पुस्तकें पढ़ लें; परन्तु जहाँ तक आप अपने हृदय को इस मन की वस्तुओं से भरते रहेंगे वहाँ तक यह निश्चय है कि आपका जीवन रीता ही रहेगा, कुरूप ही रहेगा, इसका कोई अर्थ ही नहीं रहेगा। जीवन में सौंदर्य और अर्थ तो तभी आ सकता है जब हमारा हृदय मन की समस्त वस्तुओं से परे हो गया हो।

यह हममें से प्रत्येक की व्यक्तिगत समस्या है। आप इसे कोई ऐसी काल्पनिक समस्या न समझ लें जिसका हमसे कोई प्रयोजन नहीं है। यदि हम मानव होने के नाते इस वसुधा की ओर, इसकी वस्तुओं की ओर, खयाल नहीं देते, यदि हम इसके बच्चों को प्रेम नहीं करते और हम केवल अपनी व अपने राष्ट्र की प्रगति व सफलता के सम्बन्ध में ही सोचा करते हैं, तब हम अपने विश्व को डरावना बना देंगे जैसा कि पहले से ही बनाते चले आ रहे हैं। भले ही एक देश अत्यंत धनी हो जाए लेकिन इसकी सम्पन्नता तब तक विषमय होगी जबतक कि कोई दूसरा देश भूखों मर रहा हो। हम सब एक मानव हैं और यह वसुधा हमारी सबकी है। हमारे स्नेहमय पालन-पोषण से ही यह वसुधा हम सभी के लिए भोजन, कपड़ा और आवास की उत्पत्ति करेगी।

अतः शिक्षा का कार्य आपको कुछ परीक्षाओं के लिए तैयार करना मात्र नहीं है बल्कि आपको जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने में, जिसमें कामवासना, अट्टहास, सहज स्फूर्ति, विनय, गम्भीर चिंतन आदि समाविष्ट हैं, सहायता करना है। ईश्वर की खोज भी हमारी एक समस्या है, क्यों कि यही हमारे जीवन की बुनियाद है। सुदृढ़ बुनियाद की अनुपस्थिति में एक मकान अधिक समय तक नहीं टिक सकता और यदि

हम परमात्मा या सत्य की खोज नहीं कर रहे हैं तो हमारे ये समस्त स्वार्थ युक्त आविष्कार व्यर्थ है ।

आप ये सारी बातें समझ सकें, इसलिए यह आवश्यक है कि आपके शिक्षक इस कार्य में आपकी सहायता करने में समर्थ हों क्यों कि आपको बचपन से ही यह खोज प्रारम्भ कर देनी होगी, न कि तब जब आप साठ वर्ष के हो गये होंगे । आप साठ वर्ष की उम्र में ईश्वर को बिलकुल नहीं खोज सकते; क्योंकि उस समय तक अधिकांश व्यक्ति जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं । आप अपनी नन्हीं-सी उम्र में ही यह खोज प्रारम्भ कर दें; क्योंकि तभी आप उचित बुनियाद का निर्माण कर सकेंगे और फिर आपका मकान उन समस्त आँधियों में खड़ा रह सकेगा जो मनुष्यों द्वारा स्वयं पैदा की गई हैं । तभी आप आनन्द से रह भी सकेंगे, क्यों कि तब आपका आनन्द किसी वस्तु पर आधारित न रहेगा, तब यह साड़ियों, रत्नों, मोटरों व रेडियो पर अवलंबित नहीं रहेगा । तब यह इस बात पर भी आश्रित नहीं रहेगा कि कोई व्यक्ति आपको प्रेम करता है या आपको अस्वीकार करता है । आप इसलिए आनंदित नहीं होते हैं कि आपके पास कोई वस्तु है, पद है, अथवा दौलत है, अथवा ज्ञान है, अपितु इसलिए कि आपका जीवन स्वयम् अर्थमय है । आप जीवन के इस अर्थ की खोज तो तभी कर सकेंगे जब आप क्षण प्रतिक्षण सत्य की खोज करेंगे और सत्य प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है । इसे आप किसी गिरजाघर, किसी मन्दिर, किसी मसजिद या किसी क्रियाकांड में नहीं खोज सकते ।

सत्य की खोज के लिए हमें यह अनिवार्य रूप से ज्ञात करना होगा कि हमें उस धूल को, जो शताब्दियों से इस पर जमी हुई है, किस प्रकार पोंछ सकें और कृपया आप विश्वास करें कि सत्य की खोज ही वास्तविक शिक्षा है । कोई भी चतुर व्यक्ति कुछ पुस्तकें पढ़कर जानकारी का संग्रह कर सकता है और फिर कोई पद प्राप्त कर दूसरों का शोषण भी कर सकता है । कुछ विषयों का अध्ययन कर लेना शिक्षा का केवल एक छोटा-सा अंग है; किन्तु हमारा जीवन विशाल है, व्यापक है और इसे समझने के लिए हमें शिक्षित ही नहीं किया जाता । इसे समझने का हमारे पास कोई मार्ग नहीं है ।

यह पता लगाना कि हम जीवन का सामना कैसे करें ताकि हमारा दैनिक जीवन और इसमें काम आनेवाली वस्तुएँ जैसे रेडियो, मोटरकार, हवाई जहाज, इन सबों की अर्थवत्ता एक 'ऐसी चीज' से जुड़ जाये जो इन सबों को समाविष्ट करते हुये भी इन सबों के पार हो—यह पता लगाना ही शिक्षा है । दूसरे शब्दों में शिक्षा का

प्रारम्भ अनिवार्य रूप से धर्म के साथ हो। लेकिन धर्म का सम्बन्ध किसी पादरी, किसी गिरजाघर, किसी मान्यता या किसी विश्वास से नहीं है। धर्म का उद्देश्य है निरुद्देश्य प्रेम करना, विशाल अन्तःकरण रखना, दयालु होना। और हम केवल तभी सच्चे मानव होते हैं; लेकिन सत्य की खोज के बिना करुणा, उदारता और प्रेम का आगमन नहीं हो सकता।

दुर्भाग्य से हमारे जीवन का यह सम्पूर्ण विशाल क्षेत्र ही आज इस तथाकथित शिक्षा द्वारा उपेक्षित रक्खा गया है। आप या तो निरन्तर पुस्तकों में व्यस्त रहते हैं या परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने में, जिनका वास्तव में कुछ भी विशेष अर्थ नहीं है। परीक्षाएँ आपको कोई व्यवसाय दिला सकती हैं और इसलिए इनका थोड़ा-सा अर्थ है; लेकिन भविष्य में कितने ही कारखाने करीब-करीब पूर्णतया यन्त्रों से चलाए जाएँगे और इसीलिए हमें अभी से ही अपने फुरसत के सही समय का उपयोग करने के लिये शिक्षित किया जाये—आदर्शों के पीछे भागने में नहीं, अपितु जीवन के उन विशाल क्षेत्रों में अनुसन्धान करने में, उन्हें समझने में, जो आज तक अज्ञात हैं और जिनके सम्बन्ध में हम बिलकुल ही नहीं जानते हैं। यह चतुराई से भरा तार्किक मन ही सब कुछ नहीं है। इस मन से परे कुछ विशाल और कुछ असीम भी कोई चीज है और उसके सौंदर्य को समझना मन की सामर्थ्य से दूर है। उसी महानता में अनन्त आनन्द है, वैभव है, और उस अवस्था में जीना और उसकी अनुभूति करना ही शिक्षा का मार्ग है। यदि आपको इस प्रकार की शिक्षा नहीं मिलती तो जब आप संसार में प्रवेश करेंगे तो आप भयावह अराजकता को बनाये रक्खेंगे जिसका निर्माण पीढ़ियों ने कर रखा है।

अतः शिक्षक एवं विद्यार्थी इसके सम्बन्ध में अवश्य सोचें। वे शिकायतें न करते हुए, इसके लिए तैयार हों और एक ऐसी संस्था के निर्माण में सहयोग दें, जिसमें धर्म की सही अर्थों में खोज की जाती हो, उसे प्रेम किया जाता हो, उसके लिए कार्य किया जाता हो, उसी में जिया जाता हो। तब आप महसूस करेंगे कि जीवन अद्भुत रूप से सम्पन्न हो गया है जिसके समक्ष विश्व के समस्त बैंकों के खाते भी फीके हैं।

प्रश्नकर्ता : मानव ने इतना ज्ञान किस प्रकार अर्जित किया? किस प्रकार उसने इतनी भौतिक प्रगति की? कहाँ से उसे इतनी विशाल शक्तियाँ प्राप्त हुईं।

कृष्णमूर्ति : मानव ने इतना ज्ञान किस प्रकार अर्जित किया? यह काफी आसान है। आप कुछ जानते हैं और उसे अपने बच्चों तक पहुँचा देते हैं। आपके

बच्चे इसमें कुछ और जोड़ते हैं और इसे अपने बच्चों के हाथों सुपुर्द कर देते हैं और यह प्रक्रिया युगों तक चलती रहती है। हम ज्ञान को थोड़ा-थोड़ा करके एकत्रित करते हैं। हमारे पितामह यह बिलकुल ही नहीं जानते थे कि आज के वायुयान क्या हैं, विद्युत चमत्कार क्या है; लेकिन विस्मय, आवश्यकता, युद्ध, भय और लालच ने इस ज्ञान को बढ़ाया है।

ज्ञान के सम्बन्ध में एक निराली ही बात है। माना, आपको बहुत कुछ ज्ञात है, आपके पास जानकारी का भण्डार है; लेकिन जो मन ज्ञान से घिरा हुआ है, जानकारी से बोझिल है, वह अनुसन्धान के अयोग्य है। वह भले ही ज्ञान व कुशलता के माध्यम से किसी आविष्कार का उपयोग कर ले, परन्तु आविष्कार स्वयम् एक मौलिक वस्तु है, जो ज्ञान निरपेक्ष है और जिसका मन में अचानक विस्फोट होता है; और आविष्कार का अचानक विस्फोट ही वह है जो अत्यन्त आवश्यक है। अधिकांश व्यक्ति, विशेषकर इस देश में, ज्ञान से, परंपरा से, मान्यता से और इस भय से कि माता-पिता क्या कहेंगे, पड़ोसी क्या कहेंगे, बुरी तरह से दबे जा रहे हैं। उनका पूरा आत्मविश्वास ही नष्ट हो गया है। वे केवल निष्प्राण व्यक्तियों की तरह हो गए हैं। ज्ञान का बोझ सचमुच हमारे मन को मृत्युतुल्य बना देता है। ज्ञान अवश्य उपयोगी है परन्तु यह "किसी वस्तु" की अनुपस्थिति में अत्यन्त विनाशकारी है और आज की विश्व की घटनाओं से यह दिखाई दे रहा है।

आप जरा देखें कि विश्व में हो क्या रहा है? आज हमारे पास सभी आश्चर्यजनक आविष्कार हैं—रडार जो बहुत दूर उड़ते हुए वायुयान की पहुँच की सूचना पहले से ही दे देता है, पनडुब्बियाँ जो एक बार भी सागर के बाहर अपना मुँह निकाले बिना ही सारे विश्व का चक्कर लगा लेती हैं, बातचीत करने के अद्‌भुत साधन जिनसे हम बंबई में बैठे-बैठे बनारस या न्यूयार्क से बातचीत कर लेते हैं। यह सब ज्ञान का परिणाम है। लेकिन हम "किसी वस्तु" को खो बैठे हैं और इसीलिए ज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है। इसीलिए विश्व में युद्ध है, विनाश है, पीड़ा है और असंख्य व्यक्ति भूखों मर रहे हैं। उन्हें केवल दिन में एक ही बार या उससे भी कम खाना मिलता है और आप इसके संबंध में कुछ नहीं जानते। आप तो केवल बनारस, दिल्ली अथवा बंबई के किसी कोने में बैठे हुए अपनी पुस्तकों, अपनी छोटी-छोटी समस्याओं और सुखों को जानते हैं। आप देखते हैं कि भले ही हम ज्ञान की विशाल मात्रा प्राप्त कर लें परन्तु 'उस वस्तु' की अनुपस्थिति में, जिसमें मानव जीता है, जिसमें आनंद है, वैभव है, समृद्धि है, परम सुख है, हम अपना ही विनाश किये जा रहे हैं।

यही बात इस भौतिकता पर भी घटती है। मानव ने शनैः-शनैः भौतिक विकास किया है। ये महान् शक्तियाँ मानव को कहाँ से प्राप्त होती हैं? प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करनेवाले महान् आविष्कारक, अनुसंधानकर्ता, शोधक में अतिशय शक्ति अवश्य रही होगी; लेकिन हममें से अधिकांश व्यक्तियों में बहुत ही कम शक्ति है; है न? जब तक हम छोटे रहते हैं तब तक हम खेलते हैं, मौज करते हैं, नृत्य करते हैं, गाते हैं; लेकिन ज्यों ही हम बड़े हो जाते हैं, त्यों ही यह शक्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। क्या आपने कभी यह महसूस नहीं किया है? तब हम घरों की चिंतित पत्नियाँ बन जाती हैं या फिर हम आजीविका के लिए किसी दफ्तर में दिन-प्रति-दिन, मास-प्रतिमास, कभी न समाप्त होनेवाली नीरस घड़ियाँ बिताया करते हैं। तब हममें बहुत ही थोड़ी या बिलकुल ही शक्ति नहीं रह जाती है। यदि हममें शक्ति होती तो हम इस सड़े हुए समाज को नष्ट कर देते। कहीं हम क्षुब्धता पैदा करनेवाला कोई कार्य न कर बैठें, इसलिए समाज यही चाहता है कि हममें वह शक्ति ही न रह जाए और इसीलिए वह "शिक्षा", परम्परा, तथाकथित धर्म और संस्कृति के माध्यम से, क्रमशः हमारी शक्ति को कुचल डालता है। अतः आपने देखा कि सही शिक्षा का कार्य है—हमारी इस शक्ति को जागृत करना, इसे उभारते हुए, इसे गतिशील, तीव्र, सुदृढ और भावाकुल बनाते हुए और इसके साथ-साथ इसका सहज नियंत्रण कर, इसे सत्य की खोज में अग्रसर करना। तब यह शक्ति विशाल और अनंत हो जाती है। फिर यह शक्ति और अधिक पीड़ा पैदा नहीं करती है, अपितु यह स्वयम् में नूतन समाज का सृजन करनेवाली होती है।

मैं जो कह रहा हूँ उसे आप सुनें। इसे कहीं आप एक ओर न रख दें; क्यों कि यह सचमुच अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आप इसे केवल स्वीकार या अस्वीकार न कर लें; लेकिन आप अपने लिए यह खोज करें कि आपको जो कहा जा रहा है उसमें सत्य क्या है? आप उदासीन न हों। आप या तो 'गरम' बनें या 'ठंडे'। यदि आप इस कथन के सत्य को महसूस करते हैं और इसमें आप सचमुच यदि 'गरम' हैं तो आपकी यह 'गर्मी', यह शक्ति, स्वतः विकसित होगी और यही एक नूतन समाज का निर्माण करेगी। तब यह शक्ति वर्तमान समाज के घेरों में ही क्रांति कर स्वयं को क्षीण नहीं करेगी जो जेल की दीवारों को अलंकृत करने जैसा ही होगा।

अतः विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में हमारी समस्या यह है कि हमारे पास जो कुछ शक्ति है, उसे हम किस प्रकार जागृत कर सकें, किस प्रकार इसे अधिक सामर्थ्य और विस्फोटक बना सकें। इसके लिए आत्यंतिक बोधक्षमता की आवश्यकता है। शिक्षक विद्यार्थियों को उनकी सृजनात्मक शक्ति को जागृत करने में सहायता नहीं दे

सकते, क्योंकि स्वयं उनमें ही बहुत कम शक्ति है, वे स्वयम् ज्ञान के बोझ से दबे हुए हैं और अपनी ही समस्याओं में डूबे हुए हैं। अतः इन समस्त बातों का जितना सम्बन्ध अध्यापकों से है उतना ही संबंध विद्यार्थियों से भी है।

प्रश्नकर्ता : जब मैं अपने माता-पिता से यह कहता हूँ कि मैं दूसरा धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ तब वे नाराज क्यों हो जाते हैं ?

कृष्णमूर्ति : सर्वप्रथम बात तो यह है कि उनका अपने धर्म से मोह है; उनका मानना है कि उनका धर्म विश्व का एक मात्र धर्म भले ही न हो, परन्तु वह सर्वश्रेष्ठ धर्म अवश्य है। अतः वे स्वभावतः यही चाहते हैं कि आप भी उसी धर्म को मानें। इससे आगे वे यह भी चाहते हैं कि आप भी उनके सोचने के विशेष तरीके से, उनके सम्प्रदाय, उनकी जाति और उनके दर्जे से चिपके रहें। ये ही कुछ कारण हैं। एक कारण और ! आप जानते ही हैं कि यदि आप अन्य धर्मावलम्बी बनेंगे तो आप अपने परिवार के लिए कलह और दुःख पैदा करेंगे।

लेकिन यदि आपने एक संगठित धर्म को त्याग कर दूसरा धर्म स्वीकार भी कर लिया तब भी क्या होगा ? क्या इसका अर्थ केवल यही नहीं होगा कि आप एक जेल से दूसरी जेल में चले गए हैं ? आप देखते हैं न ? जब तक आपका मन किसी विश्वास से अटका हुआ है, तब तक वह कारागृह में है। यदि आप एक हिन्दू के रूप में जन्मे हैं और यदि आप ईसाई बन जाते हैं, तब आपके माता-पिता अवश्य नाराज़ होंगे, लेकिन यह गौण प्रश्न है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह महसूस करना है कि आप अन्य धर्मानुयायी बनकर केवल पुरानी मान्यता के स्थान पर नई मान्यता अपना रहे हैं। इससे भले ही आप अपेक्षाकृत कुछ अधिक उत्साही व कुछ अधिक 'यह' या 'वह' बन जाएँ लेकिन फिर भी आप किसी विश्वास, किसी मान्यता के घेरे में ही हैं।

अतः आप धर्मपरिवर्तन न करें, जो कारागृह के अन्दर की क्रान्ति जैसा ही है; अपितु आप तो इस कारागृह की दीवारों को धराशायी करें और अपने लिए खोजें कि सत्य क्या है, परमात्मा क्या है ? और सचमुच यही अर्थमय है और इसी से आपको अतिशय जीवन्तता और अनन्त सामर्थ्य प्राप्त हो सकता है। लेकिन एक कारागृह से दूसरे कारागृह में जाना और इस बात के लिए लड़ना कि कौन-सा कारागृह अपेक्षाकृत अच्छा है, एक बच्चे के खेल से अधिक कुछ नहीं है।

मान्यताओं की काराओं को तोड़ने और उनसे मुक्त होने के लिए आवश्यकता है एक प्रौढ़ मन की, एक विचारशील मन की और एक ऐसे मन की जो स्वयम् कारा-

गृह के स्वभाव को समझता है और एक कारागृह की तुलना दूसरे कारागृह से नहीं करता है। जब आप किसी वस्तु को समझते हैं, तब उसकी तुलना दूसरी वस्तु से नहीं करते। तुलना के माध्यम से नहीं अपितु स्वयम् उस वस्तु के परीक्षण से ही बोधक्षमता का आगमन होता है। उदाहरण के लिए यदि आप संगठित धर्मों के स्वभाव का परीक्षण करें तो आपको ज्ञात होगा कि समस्त धर्म निश्चित रूप से एक जैसे ही हैं, फिर चाहे वह हिंदू धर्म हो या बौद्ध धर्म हो या ईसाई या इस्लाम धर्म हो या फिर वह साम्यवाद हो जो आधुनिक धर्म का ही एक रूप है। जिस क्षण आप इस कारागृह को समझ लेते हैं, इसकी समस्त मान्यताओं, धार्मिक विधियों और पादरियों को अच्छी तरह समझ लेते हैं तब फिर आपका कभी किसी धर्म से प्रयोजन ही न रहेगा, क्योंकि केवल वही व्यक्ति, जो विश्वासों से मुक्त होता है, उसका आविष्कार कर लेता है जो समस्त विश्वासों से परे है।

प्रश्नकर्ता : चरित्र निर्माण का सही मार्ग कौन-सा है ?

कृष्णमूर्ति : चरित्रवान बनने का निश्चित अर्थ है, असत्य को त्यागने और सत्य को अपनाने का सामर्थ्य रखना। लेकिन चरित्र निर्माण करना अत्यन्त कठिन है; क्योंकि हममें से अधिकांश व्यक्तियों के लिए—वे स्वयम् क्या सोचते हैं इसे खोजने की अपेक्षा—वह अधिक महत्त्वपूर्ण होता है जो उन्हें पुस्तक, शिक्षक, माता-पिता व सरकार द्वारा कहा जाता है। अतः इस बात से बिना प्रभावित हुए कि इससे पीड़ा आएगी या आनन्द, अपने लिए स्वयम् सोचना और सत्य की खोज करना और उस सत्य पर दृढ़ रहना, इसी का अर्थ है चरित्र निर्माण।

उदाहरण के लिए मान लीजिए, आप युद्ध में विश्वास नहीं करते हैं। इसलिए नहीं कि किसी सुधारक ने अथवा किसी धार्मिक नेता ने आपको ऐसा कहा है; अपितु इसलिए कि आपने स्वयम् अपने लिए इसके सम्बन्ध में सोचा है, आपने इसकी खोज की है, इसकी गहराई में आप उतरे हैं, इसपर चिंतन किया है; और आप हर प्रकार की हत्या को बुरा समझते हैं—फिर वह हत्या खाने के लिए की गई हो, या नफरत के कारण अथवा उस तथाकथित राष्ट्रप्रेम के लिए की गई हो। अब यदि आप इस सत्य को गहराई से महसूस करते हैं और हर परिस्थिति में इसपर अटल रहते हैं, भले ही इसके लिए जेल जाना पड़े अथवा गोली का निशाना बनना पड़े, जैसा कि किसी देश में ऐसा होता है, तब आप वास्तव में चरित्रवान होंगे। तब आपके लिए चरित्र का अर्थ समाज द्वारा प्रतिपादित उस साधे गए चरित्र से नहीं होगा; अपितु इसका बिलकुल ही भिन्न अर्थ होगा।

लेकिन आप देखते हैं कि आपको इस दिशा में उत्साहित ही नहीं किया जाता है। सत्य को खोजने, उसे पकड़ने और असत्य को जाने देने के लिए सोचने का वह सामर्थ्य, वह जीवंतता न तो शिक्षक में दिखाई देती है और न छात्र में ही; लेकिन यदि आप यह कर सकते हैं तब आप किसी राजनेता व धार्मिक गुरु का अनुगमन ही नहीं करेंगे; क्योंकि आप तब स्वयम् अपने लिए प्रकाश होंगे। और केवल युवावस्था में ही नहीं, अपितु पूरे जीवनभर उस प्रकाश की खोज और उसकी साधना करना ही शिक्षा है।

प्रश्नकर्ता : परमात्मा की खोज में उम्र किस प्रकार बाधक होती है ?

कृष्णमूर्ति : उम्र का अर्थ क्या है ? क्या यह उन वर्षों की संख्या है, जितने आपने जिये हैं ? यह उम्र का एक भाग है। आप अमुक-अमुक वर्ष में जन्मे और आज आप पंद्रह या चालीस या साठ वर्ष के हैं। आपका शरीर जर्जर होता जाता है। और यही बात आपके मन के साथ भी घटित होती है जब वह जीवन के समस्त अनुभवों, दुखों और चिंताओं से बोझिल रहता है और ऐसा मन कभी भी सत्य को खोज नहीं कर सकता है। मन तभी खोज कर सकता है, जब वह युवा हो, नवीन हो, सरल हो। लेकिन इस सरलता का उम्र से कोई संबंध नहीं है। सरलता का संबंध केवल बचपन से ही नहीं है; हो सकता है, बच्चा सरल न भी हो। सरल मन तो एक ऐसा मन है जो, अनुभवों के अवशेषों को इकट्ठा न करता हुआ, अनुभव कर रहा है। मन अवश्य अनुभव करे और यह अपरिहार्य है। मन प्रत्येक वस्तु के प्रति सजग हो—सरिता व बीमार पशु के प्रति, जलाने के लिए ले जाए जाते हुए शव व भारी बोझा उठाए चलते हुए गरीब देहाती के प्रति, जीवन की पीड़ाओं व अत्याचारों के प्रति, अन्यथा यह मुर्दा है लेकिन हमारा मन अनुभवों से बिना बंधे ही उनका प्रत्युत्तर देने में समर्थ हो। हमारी परंपराएँ, हमारे अनुभवों का संग्रह व हमारी स्मृति की राख ही हमारे मन को पुराना बनाते हैं। वह मन जो प्रतिदिन 'कल' की स्मृतियों के प्रति, भूत के समस्त सुखों और दुखों के प्रति विसर्जित हो जाता है, वही मन नवीन है, सरल है, उसकी कोई उम्र नहीं होती और इस सरलता की अनुपस्थिति में आप ईश्वर की खोज नहीं कर सकते—फिर चाहे आप दस वर्ष के हों या साठ वर्ष के।

२७. नूतन संस्कृति

जिन समस्याओं का हम सभी को और विशेषकर उन व्यक्तियों को सामना करना पड़ रहा है, जो शीघ्र ही शिक्षा समाप्त कर विश्व में प्रवेश करने वाले और इसका सामना करने वाले हैं, उनमें से एक समस्या है-सुधार की। समाजवादी, साम्यवादी व अनेकों प्रकार के सुधारवादियों के भिन्न-भिन्न समुदाय, ये सभी विश्व में नाना प्रकार के परिवर्तन, जो सचमुच आवश्यक हैं, लाना चाहते हैं। कुछ देशों में यद्यपि अच्छी प्रगति भी हुई है फिर भी विश्व में चारों ओर आज भी लोग भरपेट भोजन नहीं पाते हैं, भुखमरी है, आज भी करोड़ों व्यक्तियों के पास तन ढँकने को कपड़ा नहीं और सोने के लिये जगह नहीं है। और वह मूलभूत परिवर्तन किस प्रकार लाया जा सकता है कि फिर विश्व में और अधिक अराजकता, और अधिक पीड़ा व और अधिक संघर्ष पैदा न हों ? यही है हमारी बुनियादी समस्या। यदि कोई कुछ इतिहास के पृष्ठों का अवलोकन करे और वर्तमान राजनैतिक गतिविधियों का निरीक्षण करे तो यह एकदम स्पष्ट हो जायेगा कि जिसे हम सुधार कहते हैं, जो यद्यपि वांछनीय व आवश्यक है, फिर भी वह अपने साथ सदैव भिन्न प्रकार की भ्रांतियाँ और अनेकों संघर्ष लाता है और इन भ्रांतियों और संघर्षों को दूर करने के लिए फिर और अधिक पीड़ाएँ, और अधिक कानून, और अधिक प्रतिबन्ध, और अधिक बन्धन लाने आवश्यक हो जाते हैं। इन सुधारों से नई अराजकतायें जन्म लेती हैं और इसे दूर करने के लिए और अधिक अराजकता लानी होती है, और इस प्रकार यह विषैला क्रम अविराम चलता रहता है। यही वह समस्या है, जिसका हम सभी सामना कर रहे हैं और इस प्रक्रिया का कहीं अन्त नहीं दिखाई दे रहा है !

अब कोई किस प्रकार इस विषैले चक्र का उच्छेदन करे ? आप ज़रा सोचें ! यह ठीक है कि सुधार आवश्यक है; लेकिन क्या यह सुधार, और अधिक भ्रांतियाँ पैदा किये बगैर, सम्भव है ? मेरा सोचना है—यह एक बुनियादी प्रश्न है और इसका सम्बन्ध प्रत्येक विचारशील व्यक्ति से है। हमारी समस्या अतः यह नहीं है कि किस प्रकार का या किस स्तर का सुधार आवश्यक है, अपितु यह है कि क्या कोई ऐसा सुधार सम्भव भी है, जो अपने साथ अन्य समस्याएँ नहीं लाये जिससे और सुधार की आवश्यकता ही न पड़े ? अब कोई इस अन्तहीन प्रक्रिया को किस प्रकार रोके ? एक नन्हें से विद्यालय से लेकर एक विशाल विश्वविद्यालय तक शिक्षा का यह निश्चित रूप से कार्य है कि वह इस समस्या का निदान खोजे—इसे काल्पनिक, सैद्धांतिक या दार्शनिक

रूप देकर अथवा इसके सम्बन्ध में पुस्तकें लिखकर नहीं, अपितु वास्तविक रूप में इसका सामना कर, ताकि सही अर्थों में इसका हल खोजा जा सके। मानवता इस सुधार के विषैले कारागृह में, जो सदैव और अधिक सुधारों को जन्म देता चला जा रहा है, जकड़ी हुई है और यदि इसका अन्त नहीं किया जाता तो हमारी समस्या का कोई अन्त सम्भव नहीं है।

अतः इस दुश्चक्र को खण्डित करने के लिए किस प्रकार की शिक्षा व किस प्रकार के चिन्तन की आवश्यकता है? वह कौन-सा कार्य है जो हमारी इन समस्त समस्याओं की वृद्धि को रोके जो हमारे ही कार्यों से पैदा होती है? क्या किसी भी दिशा में हमारे सोचने की कोई ऐसी क्रिया सम्भव है जो हमारे इस प्रकार के जीने से, और इन सुधारों के क्रम से, जो सदैव नवीन सुधारों को जन्म देता है, हमें मुक्त कर दे? दूसरे शब्दों में, क्या ऐसा कोई कार्य सम्भव है, जिसकी उत्पत्ति किसी प्रतिक्रिया से न हुई हो?

मेरा सोचना है—जीने का एक मार्ग और भी है, जहाँ यह सुधार की प्रक्रिया, जो और अधिक पीड़ाओं को जन्म देती है, अनुपस्थित है। वह मार्ग है—धार्मिक मार्ग। एक सच्चे व्यक्ति का, जो धार्मिक है, जिसका सुधार से कोई प्रयोजन ही नहीं है, उसका इससे भी कोई सम्बन्ध नहीं है कि सामाजिक व्यवस्था में केवल कुछ परिवर्तन भर कर दिया जाये। इसके विपरीत वह तो सत्य की खोज कर रहा होता है। और यही वह खोज है जो समाज का रूपान्तर कर देती है। अतएव शिक्षा का बुनियादी कार्य है— विद्यार्थी को सत्य को, परमात्मा की खोज में सहायता करना, न कि केवल उसे समाज के बंधे बंधाये ढाँचे में रहने के लिए तैयार करना।

मैं सोचता हूँ, यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप यह सब बचपन से ही सीख लें, क्योंकि, जब हम बड़े होने लगते हैं और जब एक-एक कर छोटे-छोटे मनोरंजन, दिल बहलाव के साधन, लैंगिक वासनाएँ व क्षुद्र महत्त्वाकांक्षाएँ हम कम करते चले जाते हैं, तब हम उन विकराल समस्याओं के प्रति, जिनका सामना सम्पूर्ण विश्व को ही करना पड़ रहा है, अधिक गम्भीरता से सजग हो जाते हैं और तब हम समाज में कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं। लेकिन जब तक हम धार्मिक नहीं है, तब तक हम केवल और अधिक भ्रान्ति व और अधिक पीड़ाएँ पैदा करते रहेंगे। लेकिन धर्म का सम्बन्ध न तो पुजारियों से है और न तो गिरजाघरों, मान्यताओं अथवा संगठित विश्वासों से है। ये समस्त वस्तुएँ कतई धार्मिक नहीं हैं। ये तो केवल हमें किसी विचार या किसी कार्य-विशेष के घेरे में बाँधे रखने के लिए सामाजिक सुविधाएँ मात्र हैं। ये

हमारे भोलेपन, भय और हमारी आशा का शोषण करने के तरीके हैं। धर्म का अर्थ है सत्य को, परमात्मा को, खोज करना और इस खोज के लिए आवश्यक है आत्यन्तिक सामर्थ्य, विशाल बुद्धिमत्ता और तीक्ष्ण चिन्तन। इस अनन्त की खोज में ही सही सामाजिक कार्य सम्भव होता है, न कि किसी समाज विशेष के उस तथा-कथित सुधार में।

सत्य की खोज के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मानव समस्त वस्तुओं के साथ अपने संबंधों के प्रति अखण्ड प्रेम और गहरी सजगता रक्खे। जिसका अर्थ ही यह है कि वह केवल अपनी ही प्रगति व अपनी ही सफलता के घेरे में सीमित न रहे। सत्य का अन्वेषक ही एकमात्र धार्मिक व्यक्ति है। ऐसा मानव अपने प्रेम के कारण समाज से पृथक है और उसका कार्य उस व्यक्ति के कार्य से सर्वथा भिन्न है, जो समाज के अन्दर रहकर सुधार कर रहा है। एक सुधारक कभी भी नूतन संस्कृति का निर्माण नहीं कर सकता। अत: उस खोज की—सही धार्मिक व्यक्ति की खोज की—आवश्यकता है; क्योंकि यही वह खोज है, जो नूतन संस्कृति का निर्माण करती है और उसी खोज में हमारी आशा निहित है। आप देखते हैं कि यह सत्य की खोज ही हमारे मन को एक विस्फोटक सृजनशीलता प्रदान करती है और यही वास्तविक क्रान्ति है, क्योंकि इस खोज की प्रक्रिया में मन सामाजिक आदेश या सज़ा के भय से दूषित नहीं होता। इन समस्त बातों से मुक्त होने के कारण ही धार्मिक व्यक्ति सत्य की खोज करने में समर्थ होता है और सत्य की यही क्षण-क्षण खोज नूतन संस्कृति का निर्माण करती है।

इसलिए, आपके लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आपको सही प्रकार की शिक्षा प्राप्त हो। इसके लिए शिक्षक का सही रूप में शिक्षित होना अनिवार्य है ताकि उसके लिए अध्यापन केवल आजीविका का साधन मात्र बनकर न रह जाए बल्कि वह छात्रों को समस्त मान्यताएँ छोड़ने में सहायता दे सके। जो व्यक्ति किसी धार्मिक प्रभुता की बुनियाद पर या किन्हीं आदर्शों की पूर्ति के लिए संगठित होते हैं वे सभी समाज सुधार से सम्बन्धित हैं। दूसरे शब्दों में वे कारागृह की दीवारों को सजाने में लगे हुए हैं। केवल वे मानव, जो वास्तव में धार्मिक हैं, सही अर्थों में क्रांतिकारी हैं और शिक्षा का यह कार्य है कि वह हमें सही माने में धार्मिक बनने में सहायता दे, क्योंकि केवल उसी दिशा में हमारी मुक्ति सम्भव है।

प्रश्नकर्ता : मैं सामाजिक कार्य करना चाहता हूँ; परन्तु मैं यह नहीं जानता कि यह कैसे प्रारम्भ करूँ?

कृष्णमूर्ति : मैं सोचता हूँ, यह ज्ञात करने की अपेक्षा कि यह कैसे प्रारम्भ किया

जाय, यह जान लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आप सामाजिक कार्य क्यों करना चाहते हैं ? आप क्यों करना चाहते हैं सामाजिक कार्य ? क्या इसलिए कि आप इस विश्व में दुख, भुखमरी, बीमारी व शोषण देखते हैं अथवा इसलिए कि चारों ओर अतिशय सम्पत्ति और हृदयविदारक गरीबी का यह निष्ठुरतापूर्ण भेदभाव है, अथवा इसलिए कि मानव-मानव के बीच में दुश्मनी है। क्या ये ही कारण हैं ? अथवा आप इसलिए समाजसेवा करना चाहते हैं कि आपके हृदय में प्रेम है और इसलिए आपको केवल अपनी सफलता से ही प्रयोजन नहीं है। कहीं आपके लिए यह सामाजिक कार्य स्वयम् से पलायन करने का साधन तो नहीं है ? क्या आप मेरी बात समझ रहे हैं ? उदाहरण के लिए यदि रूढ़िवादी विवाह की समस्त कुरूपताओं को देखकर आप यह कहते हैं—"मैं कभी विवाह नहीं करूँगा", और आप विवाह करने के बजाय सामाजिक कार्य में उतर जाते हैं; या अपने माता-पिता की आज्ञा मानकर या किसी आदर्श की पूर्ति के लिए आप ऐसा करते हैं अथवा यदि स्वयम् से पलायन के लिए आप ऐसा करते हैं, या फिर आप किसी ऐसे आदर्श का अनुसरण कर रहे हैं जिसका प्रतिपादन किसी नेता ने, किसी पुजारी ने या आपने स्वयम् किया है, तब ऐसी अवस्था में आपका सामाजिक कार्य केवल और अधिक मुसीबत ही पैदा करेगा। परन्तु यदि आपके हृदय में प्रेम है, यदि आप सत्य की खोज कर रहे हैं और इसलिए आप धार्मिक व्यक्ति हैं, यदि आप महत्त्वाकांक्षी नहीं है, आपमें सफलता की चाह नहीं है, आपके गुण आपको प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर नहीं कर रहे हैं, तब आपका जीवन स्वयम् समाज के आमूल परिवर्तन में सहायक सिद्ध होगा।

मैं समझता हूँ कि यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। जब हम युवक होते हैं जैसे कि हममें से अधिकांश आज हैं, तो हम कुछ-न-कुछ करना चाहते हैं, तो हमें चारों ओर सामाजिक सेवा की बातें सुनाई पड़ती हैं, पुस्तकें इसी के सम्बन्ध में कहती हैं, समाचारपत्र इसी का प्रचार करते हैं, संस्थाएँ समाज-सेवा के लिए प्रशिक्षण देती हैं। लेकिन आप देखते हैं कि आत्मज्ञान के बिना और बिना यह समझे कि आप स्वयम् क्या हैं, आपके द्वारा की गई किसी भी प्रकार की समाजसेवा पीड़ाकारी सिद्ध होगी।

केवल वह व्यक्ति, जो आनन्दित है, वही सचमुच का क्रांतिकारी है। वह नहीं जो आदर्शवादी है, दुखी है, पलायनवादी है। और आनन्दपूर्ण व्यक्ति वह नहीं है जो ढेरों चीजें संग्रह किए बैठा हो। आनन्दपूर्ण व्यक्ति ही सही माने में धार्मिक व्यक्ति है और उसका जीना ही समाज-सेवा है; लेकिन यदि आप भी उन अनगिनत सामाजिक कार्यकर्ताओं की तरह एक कार्यकर्ता मात्र बन जाते हैं तो आपका हृदय भी रिक्त रहेगा। भले ही आप अपना सम्पूर्ण धन दान में दे दें, दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उत्सा-

हित कर लें, भले ही आप समाज में आश्चर्यजनक सुधार कर लें लेकिन जहाँ तक आपका हृदय रीता है, जहाँ तक आपका मन सिद्धान्तों से परिपूर्ण है, वहाँ तक आपका जीवन उदास, चिन्तित और दुखी रहेगा; अतः सर्वप्रथम आप स्वयम् को जानें और उसी आत्मज्ञान से सही कार्य स्वतः स्फुरित होता है ।

प्रश्नकर्ता : मानव इतना निष्ठुर क्यों है ?

कृष्णमूर्ति : यह समझना काफी आसान है; क्या नहीं है ? जब शिक्षा स्वयम् को केवल कुछ जानकारी देने व छात्र को किसी व्यवसाय के लिए तैयार भर कर देने तक ही सीमित रखती है, जब यह केवल आदर्शों को पकड़े रखती है और छात्र को केवल अपनी ही सफलता से सम्बन्धित रहना सिखाती है, तो यह जाहिर है कि मानव निष्ठुर होगा । आप देखते हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्तियों के हृदय में प्रेम ही नहीं है । हम कभी रात्रि में तारों का अवलोकन नहीं करते हैं और न पानी की कलकल ध्वनि में आनन्द ही लेते हैं; हम न तो कभी बहते हुए झरने में चंद्रकिरणों को थिरकते हुए देखते हैं और न पक्षी को उड़ान ही भरते हुए । हमारे हृदय में संगीत नहीं है । हम तो हर क्षण व्यस्त रहते हैं । हम तो मानवता को बचाने के लिए अनेकों योजनाएँ और आदर्श अपने मन में ठूँसे रखते हैं । हम घोषणा तो विश्वबंधुत्व की करते हैं, परन्तु हमारी प्रत्येक नजर इसके विपरीत होती है । इसीलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप बचपन से ही सही शिक्षा ग्रहण करें ताकि आपके मन और आपके हृदय मुक्त रह सकें, संवेदनशील व जिज्ञासु रह सकें । लेकिन यदि हम भयभीत हैं तो यह जिज्ञासा, यह सामर्थ्य, यह विस्फोट करनेवाला बोध, सब नष्ट हो जाते हैं; और हममें से अधिकांश व्यक्ति भयभीत हैं । हम माता-पिता से, शिक्षक से, पुजारी से, सरकार एवं अधिकारी से और यहाँ तक कि अपने आप से भयभीत हैं । अतः जीवन हमारे लिए एक भय की, अन्धकार की, वस्तु बन गया है और यही कारण है कि मानव निष्ठुर है ।

प्रश्नकर्ता : अपने मनपसन्द कार्य को नहीं करने पर भी क्या कोई व्यक्ति स्वतन्त्रता की खोज कर सकता है ?

कृष्णमूर्ति : आप जानते हैं कि केवल किशोरावस्था में ही नहीं अपितु संपूर्ण जीवन भर हमारे लिए यह ज्ञात करना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि हम वास्तव में क्या करना चाहते हैं और जब तक कि आप अपने लिए यह ज्ञात नहीं कर लेते हैं कि आप सचमुच कौन-सा कार्य अपनी समग्रता से करना चाहते हैं, तब तक आप अपने जीवन को एक ऐसे कार्य में नष्ट करते रहेंगे, जिसमें आपको कतई दिलचस्पी नहीं है ।

तब आपका जीवन अत्यन्त दुखी बना रहेगा और फिर उसी दुख से बचने के लिए आप सिनेमा में, शराब में, अगणित पुस्तकों में, समाज-सुधार में या किसी अन्य कार्य में अपना मनोरंजन खोजते फिरेंगे।

अतः इस बात की परवाह किए बगैर कि आपका समाज या आपके माता-पिता आपसे क्या चाहते हैं, क्या आपके शिक्षक आपको उस कार्य की खोज में सहायता कर सकते हैं, जिसे आप सचमुच आजीवन करना चाहते हैं ? वास्तविक शिक्षा का यही कार्य है; क्या नहीं है ? जब आपने एक बार यह खोज लिया कि कौन-सा कार्य आप अपनी समग्रता से, अपने प्रेम से करना चाहते हैं, तब आप एक स्वतन्त्र मानव होंगे, तब आपमें सामर्थ्य, विश्वास और स्वयम् स्फूर्ति होगी। लेकिन यदि यह जाने बिना कि आप सचमुच कौन-सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं, आप एक वकील, एक राजनेता, अथवा और कुछ हो जाते हैं, तब आप कभी भी आनन्दित नहीं हो सकेंगे क्योंकि तब आपका यह व्यवसाय ही आपको व दूसरों को नष्ट करने का साधन बन जाएगा।

आपको यह अवश्य ज्ञात कर लेना होगा कि आप कौन-सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं। केवल यह सोचकर आप किसी व्यवसाय का चुनाव न कर लें कि आप किस प्रकार समाज के अनुकूल बन सकेंगे; क्योंकि ऐसा कर आप कभी उस कार्य की खोज नहीं कर सकेंगे जिसे आप प्रेम से करना चाहते हैं। जब आप किसी कार्य को प्रेम से करना चाहते हैं, तब चुनाव का प्रश्न ही नहीं रह जाता। जब किसी कार्य के प्रति आपमें प्रेम है और उस प्रेम को ही अपना कार्य करने देते हैं, तब जो कुछ होगा वह सही होगा, क्योंकि प्रेम कभी भी सफलता की कामना नहीं करता, वह कभी अनुकरण नहीं करता। लेकिन यदि आप कोई ऐसा कार्य करते हैं, जिसके प्रति आपमें प्रेम नहीं है, तब आप कभी स्वतंत्र नहीं हो सकेंगे।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि आपका इच्छित कार्य सदैव वही कार्य होता है जिसे आप प्रेम से करना चाहते हैं। यह खोजने के लिए कि आप सचमुच कौन-सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं, गहरा अन्वेषण व गंभीर अन्तर्दृष्टि चाहिए। आप केवल आजीविका कमाने की दृष्टि से सोचना प्रारम्भ न करें; लेकिन आप उस कार्य की खोज करें जिसके प्रति आपमें प्रेम है। आजीविका का प्रश्न तब अपने आप हल हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : क्या यह सच है कि केवल निर्दोष मानव ही निर्भय हो सकता है ?

कृष्णमूर्ति : आप शुद्धता, पवित्रता, बंधुता, अहिंसा तथा इस प्रकार के अन्य आदर्श न रक्खें, क्योंकि उनका कुछ भी अर्थ नहीं है। आप साहसी बनने का प्रयत्न

न करें; क्योंकि वह केवल भय की ही प्रतिक्रिया होगी। अभय होने के लिए आवश्यकता है गहरी अन्तर्दृष्टि की, ताकि आप भय और इसके कारणों की संपूर्ण प्रक्रिया को समझ सकें।

आप देखते हैं कि भय तब तक बना रहेगा जब तक कि आप सुरक्षित होना चाहते हैं—विवाह में सुरक्षित, व्यवसाय, पद व जिम्मेदारी में सुरक्षित, विचारों व विश्वासों में सुरक्षित, दुनिया व परमात्मा के साथ अपने संबंधों में सुरक्षित। जिस क्षण हमारा मन सुरक्षा या संतोष की अभिलाषा करने लगता है, फिर चाहे वह किसी भी रूप में या किसी भी स्तर पर क्यों न हो, उसी क्षण अनिवार्य रूप से भय उपस्थित होगा ही। अतः महत्त्व इस बात का है कि हम इस भय की संपूर्ण प्रक्रिया के प्रति सजग रहें और इसे समझें। यह तथाकथित शुद्धता का प्रश्न नहीं है। मन जो जागरूक है, सावधान है, जो भय से मुक्त है, वही मन सरल है; और ऐसा ही सरल मन वास्तविकता, सत्य, या परमात्मा को समझ सकता है।

दुर्भाग्य से अन्य देशों की भांति इस देश में भी आत्यन्तिक महत्व दिया गया है आदर्श को—'क्या होना चाहिए' का आदर्श, 'मुझे अहिंसक होना चाहिए' 'मुझे अच्छा होना चाहिए' आदि का आदर्श। "क्या होना चाहिए" का आदर्श सदैव बहुत दूर होता है; अतः वह कभी भी 'जो है' नहीं बन सकता है। 'आदर्श' एक अभिशाप है जो आपको 'जो है' का सामना करते समय सीधे, सरलता, और वास्तविकता के साथ सोचने में रुकावट डालता है। 'क्या होना चाहिए' का आदर्श 'जो है' उससे पलायन मात्र है। वास्तविकता तो यह है कि आप भयभीत हैं कि आपके माता-पिता क्या कहेंगे, लोग क्या कहेंगे, आप समाज, बीमारी और मृत्यु से भयभीत हैं; और यदि आप 'जो है' उसका सामना करें, उसका निरीक्षण करें, उसमें गहराई से प्रवेश करें, उसे समझें, भले ही इससे आपको पीड़ाएँ सहन करनी पड़े, तब आपको ज्ञात होगा कि आपका मन अत्यधिक सरल और सुस्पष्ट होता जा रहा है। और उसी सुस्पष्टता में ही भय तिरोहित हो जाता है। दुर्भाग्य से हम इन सैद्धान्तिक मूर्खतापूर्ण आदर्शों में शिक्षित किए जाते हैं, जो केवल कार्य का स्थगन है और जिनका कुछ भी अर्थ नहीं है।

उदाहरण के लिए माना कि आपके पास 'अहिंसा' का आदर्श है; पर क्या आप सचमुच अहिंसक हैं? अतः आप अपनी हिंसा का ही सामना क्यों नहीं करते? क्यों नहीं आप अपने वास्तविक रूप का ही निरीक्षण करते हैं? यदि आप अपने लोभ, अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपने हर्ष और अपने मनोरंजन को देखते हैं और उन्हें समझना आरम्भ कर देते हैं, तब आप यह महसूस करेंगे कि उस समय का ही अन्त हो गया है,

जिसे आप प्रगति का साधन और आदर्श तक पहुँचने का मार्ग समझे बैठे हैं। आप देखते हैं कि हमारा मन सफलता तक पहुँचने के लिए समय का आविष्कार करता है और इसीलिए वह कभी शांत, स्तब्ध नहीं हो पाता है। एक शांत मन ही सरल और नूतन मन है, भले ही यह सहस्रों वर्षों के अनुभवों का बोझ लिए हुए हो, और इसीलिए वह सम्बन्धों से निर्मित जीवन की समस्याओं को हल करने में समर्थ हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : मानव अपनी ही इच्छाओं का, जो कितनी ही समस्याओं का निर्माण करती हैं, शिकार हो जाता है। वह किस प्रकार एक ऐसी अवस्था को प्राप्त करे जिसमें इच्छा ही न हो ?

कृष्णमूर्ति : इच्छारहित अवस्था की इच्छा करना मन का केवल एक षड्यंत्र है। यह देखकर कि इच्छा पीड़ा उत्पन्न करती है, हमारा मन इससे भागने के लिए इच्छारहित अवस्था के आदर्श की कल्पना करता है। तब वह स्वंय से पूछता है–'मैं उस आदर्श को किस प्रकार प्राप्त करूँ' ? और तब वहाँ क्या घटित होता है ? तब आप इच्छारहित बनने के लिए इच्छा का दमन करते हैं, क्या नहीं करते ? आप इच्छा का गला घोंटते हैं, उसे नष्ट करने के लिए पूरे-पूरे प्रयत्न करते हैं और तब आप सोचने लगते हैं कि आपने वह इच्छारहित अवस्था प्राप्त कर ली है, जो सर्वथा भ्रांति है।

यह इच्छा क्या है ? यह एक शक्ति है; क्या नहीं है ? और आप ज्यों ही अपनी शक्ति को कुचलते हैं, त्यों ही आप अपने आपको मंद और निष्प्राण बना लेते हैं। भारत में यही तो घटित होता रहा है ? समस्त तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों ने अपनी इच्छाओं को कुचल डाला था। लेकिन ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम हैं जो स्वयम् सोचते हैं और मुक्त हो जाते हैं। अतः इच्छा का हनन करना महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण विषय तो इस शक्ति को समझना और इसे सही दिशा में प्रवाहित करना है।

आप देखते हैं कि जब आप छोटे होते हैं तब आपमें अतिशय शक्ति होती है—पहाड़ों को लाँघने की, तारों तक पहुँचने की। तब समाज आगे आता है और आपसे कहता है—आप अपनी शक्ति को प्रतिष्ठा की चारदीवारी के अन्दर ही सीमित रक्खें। शिक्षा के माध्यम से हर प्रकार की मान्यता और नियन्त्रण के माध्यम से आपकी वह शक्ति क्रमशः कुंठित कर दी जाती है। लेकिन आपको अधिक शक्ति की आवश्यकता है, कम की नहीं; क्योंकि महान् शक्ति की अनुपस्थिति में आप कभी भी सत्य की खोज नहीं कर सकते। अतः समस्या इस शक्ति को कम करने की नहीं है अपितु यह है कि किस प्रकार यह शक्ति कायम रक्खी जा सके, बढ़ाई जा सके, कैसे यह सदैव स्वतन्त्र

और सतत् जीवन्त रक्खी जा सके, ताकि यह सत्य या परमात्मा की ओर निरन्तर उन्मुख होती रहे। तब शक्ति का एक दूसरा ही अर्थ होगा। जिस प्रकार एक शान्त सरोवर में एक कंकड़ फेंकने से निरन्तर विस्तीर्ण होनेवाली परिधियाँ निर्मित होती हैं इसी प्रकार सत्य की दिशा में शक्ति का कोई भी कार्य नूतन संस्कृति की लहरों का निर्माण करता है, तब यही शक्ति अनन्त और असीम हो जाती है और यही शक्ति परमात्मा है।



प्रश्नों की सूची

अध्याय ८ :

अध्याय ९ :

अध्याय १० :

अध्याय ११ :

अध्याय १२ :

अध्याय १३ :

अध्याय १४ :

अध्याय १७ :

अध्याय १८ :

अध्याय १९ :

अध्याय २२ :

अध्याय २३ :